चीवर

●

रांगेय राघव

कि ता ब म ह ल

इ ला हा बा द

श्वेत पाषाणों की दीर्घ और विस्तृत [illegible] सोपानों पर एक मंदिम आलोक प्रतिध्वनित होता हुआ वापी के जल में उतर जा[illegible] और राज्यश्री के सुडौल सुन्दर शरीर पर उसके गौरवर्ण में केन्द्रित होकर नयनों का तुला पर टाग देता। जल को नीले और सुनहले कमल अपनी भीर से आक्रांत किये हुए थे। नीले मृणाल खाकर कभी-कभी श्वेतभव्य राज्यहंस मरकत की शिलाओं पर चल कर झन्कार करते, कभी अपनी लम्बी, श्वेत और कोमल ग्रीवा झुका कर उत्फुल्ल पुण्डरीक में से मकरंद खाने लगते। मंदिम समीरण दूर स्थित वातायनों में से भीतर प्रवेश करता और बहुत ही हल्के स्पर्शों से उन मांसल कमलों की सुरभि को मुग्ध-सा सूँघ लेता और फिर हट कर गोलाकार वलभियों के नीचे एक मनोहर गुञ्जार भर कर धीरे-धीरे बुझे हुए दीपाधारों पर पड़ते प्रकाश के अधमुदे होठों को धीरे से चूम कर प्रासाद की भीतों पर बने सुन्दर चित्रों को सुन्दरी युवती के पारदर्शी वस्त्रों की भाँति रगड़ कर बाहर लय हो जाता।

विशाल स्तंभों पर टिकी हुई छत पर सुदूर पारसीक देश की चित्र-कला सुशोभित थी। अगरु धूम की काँपती लहरियाँ उस प्रकोष्ठ के विस्तृत अंतराल में भीनी जर्जरता भर रही थीं। एक युवती वीणा के तारों पर कुछ धीमे-धीमे बजा रही थी। सोपानों पर बैठी दासियाँ कभी हँसती और कभी अपने अस्त-व्यस्त वस्त्रों को ठीक करने लगतीं।

राज्यश्री ने मंदस्मित के साथ कहा : मल्लिका! क्या कहती थी? कह न! रुक क्यों गई?

मल्लिका उस समय स्वर्णकमल से राज्यश्री की स्निग्ध पीठ को रगड़ रही थी। उसने धीमे से कहा : महादेवी! यह मराल कितना चमत्कृत हो गया है। आपने इस पर ध्यान नहीं दिया?

राज्यश्री नहीं समझी। उसने मस्तक पर से जल की बूंदों को पोछ कर कहा : क्यों सखी?

मल्लिका के कुछ कहने के पहले ही एक युवती दासी जो जल में खड़ी थी, बोल उठी : मैं बताऊँ महादेवी! वह चिंता कर रहा है कि जब वापी मे चन्द्रमा उतर आया है तो अभी तक सरसिज क्यों नहीं मुरझाये?

दासियाँ खिलखिला कर हँस दीं। जल तीर पर जैसे असंख्य मोती बिखर गये। राज्यश्री ने विशाल नयनों को बंकिम करके कहा : चल हट! तू सदा ठिठोली ही किया करती है!

मदनिका अब तक सुस्थिर हो गई थी। उसने सम्मान से शीश अवनत करके कहा : देवी अपराध क्षमा हो।

अभी वह अपनी बात समाप्त भी न कर पाई थी कि मल्लिका ने कहा : मदनिका! देवी के लिये पुष्प चयन कर ला। आराधना की बेला निकट आती जा रही है।

मदनिका जाना नहीं चाहती थी, किन्तु उसे जाना पड़ा। उसने मल्लिका को एक बार शंकित दृष्टि से देखा। मल्लिका उस समय राज्यश्री के साथ जल में थी और उसके समस्त वस्त्र भींग गये थे। गीले वस्त्र पहन कर वह बाह्य उद्यान में जा भी नहीं सकती थी।

मदनिका के चले जाने पर राज्यश्री ने कहा : मल्लिका! तू ऐसी चुप क्यों हो गई?

मल्लिका के होठों पर एक रहस्यमयी कुटिल स्मित दिखाई पड़ी। उसने नयन नचा कर कहा : देवी! मैं सोचती हूँ यदि देवी की यह शोभा महाराज देख पाते......

राज्यश्री के कपोलों पर आकर्ण एक रक्ताभा काँप उठी और उसकी स्वर्ण की सी देह यष्टि नीलम से जल पर ऐसी प्रतीत हुई जैसे रात्रि के नीरव और गंधित अंधकार में दीपशिखा ऊपर की ओर लाल होकर चंचलता से काँप उठी हो। राज्यश्री ने विभोर मन से कहा : मल्लिका! अभी तो मदनिका यही कहती थी, किन्तु तू उससे भी आगे बढ़ गई।

उसने दोनों हाथों से जल को सामने से ढकेल दिया और तीर की ओर चलने लगी। एकदम ही चारों ओर बैठी हुई दासियाँ उठ खड़ी हुईं। उनके आभूषणों की झंकृति उस स्निग्ध पाषाण भूमि पर फिस-लते अंधकार पर झूमने लगी। महासुन्दरी राज्यश्री नील वन के बीच में स्थिर हो गई सौदामिनी-सी, जिस समय शरीर पोंछती दासियों के बीच खड़ी हुई तब चीनांशुक के स्पर्श से सुस्थिर अंग लिए वह ऐसी प्रतीत हुई जैसे सूर्य के मंदिम स्पर्श में हिमावृत्त पुण्डरीक कमल के पत्तों के बीच एक अवर्णनीय कंप से व्याप्त होकर अपनी शोभा से स्वयं विभोर हो जाता है।

उसने धीरे से अपने चिकुर जाल को पीछे हटाकर पूछा : महाराज अहेर से आ गये फेनिला?

फेनिला चपल तरुणी थी। वह गाधार की दासी थी। उसके नील नेत्र बहुत बड़े न होकर भी लम्बे-लम्बे थे। उसने झुककर निवेदन किया : दंडधर से पूछा था। अभी तक महाराज नहीं लौटे।

वीणा अब और भी मधुर स्वरों से अकुला रही थी। वापी का जल ऐसा हतप्रभ दिखाई दे रहा था जैसे मणिविहीन सर्प अपने विष के बुद्बुद् उगल कर फिर निष्चेष्ट हो गया हो।

इंद्रधनुषी छाया संमुख लगे दर्पण पर अब थिरकने लगी थी। राज्यश्री उसके संमुख खड़ी हो गई। दासियों ने उसके जानु तक लहरते काले केशों को खोल दिया और दो दासियाँ प्रचुर कालागुरु का

धूप जला कर उन केशों को सुखाने लगीं। उस मादक गंध से राज्यश्री का अंग-अंग तरुणाई के आलस से अतृप्त हो उठा।

ताम्बूल करङ्कवाहिनी आतुर होकर ताम्बूलों पर ताम्बूल अपने सामने सजाने लगी। स्वर्ण का ढक्कन धीरे-धीरे हरे पत्तों के नीचे छिप गया।

रक्त कौशेय पहना कर अंगसंधियों के नीचे से लेकर दासी ने जब अंतिम वस्त्र महादेवी को पहना दिया, तब मल्लिका ने चंपक के वर्ण से भी कमनीय दुकूल पर स्वर्ण की रत्नजटित मेखला पहना दी जिसकी दीप्ति से एकबारगी दासियों के नित्य देखने वाले नेत्र भी चकाचौंध में आ गये। महादेवी के कान पर अब कर्णिकार झूलने लगा। कुसुम और मुक्ता के हारों से उसका वक्षस्थल ढँक गया। जिस समय राज्यश्री ने अपनी कञ्चन से भी उज्ज्वल बाहु वलयअङ्गद पहनने के लिये उठाई, मालती ने झुक कर स्वर्ण के नूपुर बाँध दिये और अपने आप रशना का मञ्जुक्वणन हुआ।

दासियाँ पत्रलेखन के लिये रक्त कुंकुम, श्वेत चंदन, कालीयक, प्रियङ्गु और कस्तूरिका का लेप तत्पर हाथों से बनाने लगीं। वीणावादिनी का हाथ भी अपने आप शीघ्रता से चल रहा था।

अनंतराल में एक क्षीण अस्फुट शब्द लगता था कहीं कोई मृदंग बजा रहा है। झंकारते वलयों की ध्वनि सुन कर कभी-कभी स्वर्ण के चक्र पर बैठा श्वेत काकातूआ चकित हो उठता, कभी संगमर्मर की फलका से उड़ कर सारिका निकट की स्फटिक चौकी पर जा बैठती और अपने बँधे पाँव की ओर देख कर पर फरफराने लगती।

राज्यश्री हँस उठी। वासंती चीनांशुक उसके स्कंधमूल से पीछे लहराता हुआ पृथ्वी पर गिर रहा था। मल्लिका ने दोनों हाथों को अपने कानों पर रख कर कहा : देवी! हेरुक कल्याण' करें। आज तो मेरा मन काँप रहा है।

राज्यश्री ने गर्व से कहा : हेरुक तेरा कल्याण करेंगे मल्लिका ! तथागत का ध्यान कर । तेरा भय दूर हो जायेगा ।

मल्लिका इतनी सरल नहीं थी । जानती थी यह स्वामिनी का स्वभाव है । वे ऐसा ही उत्तर देती हैं, जब चाहती हैं कि कोई उनका विरोध करे । उस विरोध में उनकी अहम्मन्यता और रूप के गर्व की तृष्णा को तृप्ति मिलती है ।

चामरवाहिनी पीछे हट गई थी । मल्लिका ने कहा : देवी ! शरद ज्योत्स्ना में जब कभी इन्द्रधनुष का मादक विलास उतर आये तो उसे क्या कहना चाहिये ?

राज्यश्री ने झंकारते स्वर में हँस कर कहा : मूर्ख की कल्पना !

दासियाँ हँस पड़ीं । मल्लिका लज्जित हो गई । इस समय वह दुर्भाग्य से जो वस्त्र बदल कर आई थी, उसने पीले अधोवस्त्र पर रंगबिरंगी कुंचुकी धारण कर रखी थी । हाथों में दो स्वर्ण वलय और कानों में दो स्वर्ण कुंडल पहन कर वह सचमुच शरदरात्रि सी विरलतारा श्यामा दिखाई दे रही थी । राज्यश्री का व्यंग्य उस पर सफल हो गया ।

फेनिला राज्यश्री के चरणों में आलक्तक लगा रही थी । इस समय हँसते समय जो उसने शीश उठाया और फिर पुलकाकुल हो मुख नीचे किया उसके गाल पर उसका वह लाल हाथ लगा और फिर एक बार गन्ध से भारालस प्रकोष्ठ उनके हास्य से झंकार उठा जैसे भीतों पर लटकते मुक्ताहार अब प्रतिध्वनित होकर झूलते हुए स्वयं बोल उठे हों ।

प्रसाधन समाप्त करके दासियाँ सादर पीछे हट गईं । केवल मल्लिका ने राज्यश्री के सीमन्त पर कुरुबक के ग्रथित पुष्प लगा दिये और वह भी हट गई । उस समय राज्यश्री ने एक बार अपने रूप और यौवन को दर्पण मे देखा । ईर्ष्या और विभ्रम ने उसके चंचल चित्त को एक गर्व की शक्ति दी और एक बार उसने उस अहंकार से देखा

जो स्त्री की सबसे बड़ी निर्बलता है, किंतु जिसे वह अपनी सबसे बड़ी शक्ति समझती है।

२

बुद्ध प्रतिमा पर दीपाधरों की शिखाओं का चंचल आलोक स्थिर होकर उनकी मुद्रा की गंभीरता को और भी गम्भीर दिखाने लगा। दोनों भिक्षु अपने पीले वस्त्र पहने शीर्णकाय अत्यंत गम्भीर थे। धूपगंध से समस्त प्रकोष्ठ सुरभित हो रहा था।

'तथागत', राज्यश्री ने विनत होकर कहा—'मैं जानती हूँ मनुष्य का सुख सदैव ही नहीं रहता, किंतु भगवान्! क्या जो आनंद आपने मुझे दिया है उसे मै अस्वीकार कर दूँ?'

उसके स्वर में एक विह्वल अनुराग था। त्याग और तपस्या की सुनी हुई गरिमा जैसे मन से यह समझौता करना चाहती थी कि जो गृहस्थ जीवन आज चल रहा है, वह एक पाप नहीं है, वह स्वयं स्वाभाविक है।

वृद्ध भिक्षु ने शांत स्वर में कहा : देवी! मन को साधो। आनंद बुरा नहीं है, क्योंकि तुम अभी गृहस्थ हो। तुम्हारे लिये यही अच्छा है। सुन्दरी नंदा भगवान् के प्रभाव में राजवंश में जन्म लेने पर भी प्रव्रजित हुई थी, किंतु वह अपने हृदय को बहुत समय तक वश में नहीं रख सकी। राज्यश्री, शास्ता सब पर दृष्टि रखते हैं। समय आने पर वे उचित को ही प्रचलित करते हैं। तू उपासिका है, तेरे लिये यही धर्म श्रेष्ठ है।

राज्यश्री ने दंडवत करके कहा : तथागत! मुझे यही शक्ति दो कि मैं कभी भी अपने सत्य से विमुख नहीं होऊँ। पाप मुझे कभी भी डिगाये नहीं। मेरे मन में अशुभ विचार कभी न आयें और तुम्हारी जीवमात्र

पर दया करने की क्षमता मेरे मन में सदैव बनी रहे। मेरे सौभाग्य की सदैव ही रक्षा करो, उन पर पड़ने वाले दुःख मेरे भाग्य में लिख दो भगवान !

और फिर वहाँ बौद्ध भिक्षु उपासना में लग गये। राज्यश्री चली आई। विशाल स्तंभों पर टिके आलिंदों में से चल कर जब मौखरिकुल की महारानी अपने विलासकक्ष में आ गई, मल्लिका ने श्वेतमर्मर और सुवर्ण की बनी फलका पर पारसीक कालीन बिछा दिया, जिस पर बैठ कर राज्यश्री वीणा बजाने लगी। नृत्य और संगीत मे उसकी अत्यन्त रुचि थी। वीणा के तार झनझनाने लगे, स्वरों की उठती झंकार, अपनी गतिलय पर झूमती अनंतराल में विलीन होने लगी। और फिर वे समस्त स्वर जैसे नृत्य करने लगे और विभोर उल्लास में काँपने लगे।

मदनिका ने जिस समय प्रवेश किया उसे लगा जैसे महाश्वेता वीणापाणि सरस्वती स्वयं ही संमुख उपस्थित थीं। वह क्षण भर कुछ भी नहीं सोच सकी। दासी दुविधा में पड़ गई। व्याघात डालने का अर्थ यह भी हो सकता है कि स्वामिनी क्रुद्ध हो जायँ और उसे अपनी सेवा से च्युत कर दें, जिसका अर्थ होगा अन्य प्रभुओं की सेवा और वह तो कोई सरल काम नहीं था ?

निदान मदनिका कुछ भी नहीं कह सकी। स्तंभों के पीछे से दंडधारिणी का स्वर सुनाई दिया—मौखरि कुल भूषण.........

फिर शंखनाद प्रतिध्वनित हुआ। राज्यश्री की उंगलियाँ हठात् रुक गई। वह उठ कर खड़ी हो गई। उसने कहा : अरे! महाराज आ गये।

मदनिका लज्जित हो गई। उसने कहा : देवी! मैं यही शुभ समाचार देने आई थी।

तो फिर कहा क्यों नहीं ?

देवी, मुझे साहस नहीं हुआ।

क्यों?

राज्यश्री का यह सुहासित प्रश्न सुन कर मदनिका फिर चक्कर में पड़ गई। उसकी समझ मे नहीं आया कि वह उत्तर क्या दे। राज्यश्री ने देखा मदनिका के मुख पर विषाद की एक रेखा खिची और फिर उसके नेत्र झुक गये। उसने सिर झुका कर कहा : देवी। स्वामिनी हैं न? मैं दासी ठहरी।

नितांत सत्य होने पर भी राज्यश्री को जाने यह क्यों अच्छा नही लगा। जैसे यह वैभव, यह सत्ता एक क्षण के लिये व्यंग्य बन गई। जीवमात्र पर दया!

किंतु विचार अधिक टिका नहीं। निकट ही कामकंदला की झंकारती हुई हँसी सुनाई दी। फिर एक पुरुष स्वर सुनाई दिया : क्यों कामकन्दला! महरानी को संगीत बहुत प्रिय है न?

कामकन्दला का स्वर आया : देवी तो नृत्य संगीत में स्वयं ही प्रवीण हैं देव!

'जानता हूँ कामकन्दला', पुरुष के निकट आते शब्द सुनाई दिये—'इस बार वसंतोत्सव का प्रबंध मैंने पहले से भी बहुत अच्छा कराया है। देख तो देवी के लिये मैं कैसा सुन्दर छौना लाया हूँ?'

'देव', कामकन्दला का स्वर सुनाई दिया, 'इसके नयन तो बिल्कुल देवी के से हैं।'

पुरुष का हास्य और निकट आ गया। राज्यश्री ने झुक कर प्रणाम किया। पति को देख कर वह सब कुछ भूल गई। दासियाँ एक-एक करके चली गईं। केवल मदनिका एक स्तंभ की आड़ में हो गई। दासी का उपस्थित रहना प्रत्येक समय ही प्रायः आवश्यक था।

ग्रहवर्मा ने छौना उसकी गोदी में धर दिया। अबोध बालक की भाँति छौने ने अपनी निर्दोष बड़ी-बड़ी आँखों से राज्यश्री की ओर देखा।

'इसे पाना बहुत कठिन हो गया था', ग्रहवर्मा ने कटिबन्ध को खोलते हुए कहा—'मृग की चंचलता प्रसिद्ध है महारानी। अंत में मुझे हरिणी को मार ही देना पड़ा।'

राज्यश्री के हृदय पर आघात सा हुआ। हरिणी के मृत्यु के समय वेदना से आर्त्त नेत्र उसकी आँखों के सामने घूम गये। ग्रहवर्मा आतुर सा शैया पर बैठ गया। उसे मृगी के नेत्रों की भय विस्फारित प्रतिछाया एक क्षण को राज्यश्री के नेत्रों में दिखाई दी। वह निस्तब्ध बैठा रहा।

राज्यश्री ने ही कहा : छिः छिः कितने कठोर हैं आप स्वामी! इसके नयन कितने निर्मल और पवित्र हैं।

ग्रहवर्मा ने शैया पर लेटते हुए कहा : देवी! यह पवित्र और निर्मल नयन इतने सीधे नहीं होते, जितना तुम कहती हो। यह भोले भाले प्राणी भी दूसरों के खेत को चर जाते हैं।

और वह हँस पड़ा। क्षण भर पहले जो निर्बलता उसमें आ गई थी, मानो उसने उसको इस हास्य द्वारा बहा दिया। राज्यश्री ने धीरे से कहा : किन्तु देव! यह तो उसका स्वभाव है। क्या हम एक दूसरे की वस्तु का अपहरण नहीं करते? क्या राजा एक दूसरे से राज्य के लिये युद्ध नहीं करते!

ग्रहवर्मा ने सुना और जैसे नहीं सुना। वह कहता गया : मुझे एक बात का आश्चर्य होता है राज्यश्री। आज तुम्हारे भगवान बुद्ध को हुए अनेक शताब्दियाँ बीत गईं। उदयन से आज तक अनेक संवत्सर व्यतीत हो गये। आज से लगभग सहस्र वर्ष पूर्व सम्राट अशोक देवानां-प्रियदर्शी ने विश्व में शांति फैलाने के लिये अपनी पुत्री संघमित्रा को भिक्षुणी बना दिया था। और सहस्रों स्त्री-पुरुष, सहस्रों नहीं, लाखों, तब से अपने जीवन के समस्त सुखों का बलिदान करके संसार में शांति फैलाने में लग चुके हैं। किंतु संसार में तो शांति नहीं आई। लोग जैसे तब एक दूसरे से लड़ते थे, अब भी वैसे ही परस्पर युद्ध करते हैं।

राज्यश्री क्षण भर चुप रही। फिर उसने अटक-अटक कर कहा: देव! यदि मनुष्य राज्य, धन और यश का लाभ न करे, यह वासना का मूल मिट जाये; तो संसार में कभी युद्ध नहीं होगा।

गृहवर्मा हँसा। उसने कदंब के पत्तों को एक ओर फेंक कर कहा: देवी! महाभारत में सत्ययुग के वर्णन में कहा है कि हिमालय के पार उत्तर कुरु में मनुष्यों को कोई दुख नहीं, वहाँ कोई राजा नहीं, कोई अत्याचार नहीं, युद्ध नहीं। किन्तु यह तो कल्पना है। बिना राज्य के मनुष्य समुदाय नहीं रह सकता। बिना दंड के भय नहीं रहता और जब राज्य रहता है तो समर्थ अपने को बाँधकर नहीं रह सकता। जाने दो देवी! मुझे तनिक अपने मुख की रूपसुधा का पान करने दो।

बात को एकदम दूसरी दिशा में मुड़ जाते देखकर राज्यश्री लज्जा से लाल हो उठी। उसने मुस्करा कर कहा: चलिये भी!

मदनिका उस समय और पीछे हट गई थी। गृहवर्मा ठठा कर हँस पड़ा। मदनिका ने अपने नयन मूँद लिये।

२

मालवराज देवगुप्त अपने को गुप्त साम्राज्य का वंशज कहा करता था। उसके हृदय में अदम्य तृष्णा थी। यदि गौड का शशांक नरेन्द्र-गुप्त अपने को गुप्तों का उत्तराधिकारी कहता था, तो देवगुप्त को उस पर हँसना अच्छा लगता था। उस समय कान्यकुब्ज महानगर हो चला था। आज के दो सौ वर्ष पूर्व जो गौरव पाटलिपुत्र को प्राप्त था, वह अब धीरे-धीरे यहीं एकत्रित होता जा रहा था। चीन तक से व्यापारी यहाँ आते थे। महानगर में ब्राह्मणधर्म तथा बौद्धधर्म दोनों के ही अनुयायी यहाँ प्रचुर रूप में पाये जाते थे। ढाई कोस लम्बे और आधे कोस से भी अधिक चौड़े नगर में सौ बौद्धमठ थे जिनमें दस सहस्र से

भी अधिक महायान तथा हीनयान सम्प्रदायों के भिक्षु थे और दो सौ देव मन्दिरों में कितने सहस्र साधु वास करते थे, यह कहना कठिन था। कान्यकुब्ज के स्वच्छ जलकुण्डों, सुन्दर उपवनों, सुरम्य गृहों तथा आनन्दप्रद उत्सवों ने काश्मीर से कन्याकुमारी तथा गौड़, सुवर्णभूमि से पश्चिम में अरब तक के व्यापारियों को आकर्षित कर लिया था। उस समय अरब में इस्लाम का प्रादुर्भाव ही हुआ था। धर्म फैल नहीं पाया था। अरबवासी भी भारतीयों, यूनानियों की भाँति देवी देवताओं के उपासक थे। और कान्यकुब्ज में जैन तीर्थंकर ऋषभदेव, राम, कृष्ण तथा बुद्ध के अतिरिक्त, महावराह, सूर्य, शिव की उपासना करने वाले भी थे। मौखरियों की यह राजधानी देवगुप्त पर अपना इन्द्रजाल बिछा चुकी थी।

इस समय प्रयाग और वाराणसी ब्राह्मण धर्म के केन्द्र बन चुके थे कपिल, कणाद तथा जैमिनि के अनुयायियों के विवादों की धूम थी। लोकमतों की महत्ता नष्ट नहीं हुई थी। केशलुञ्चक, पाशुपत तथा भागवतों की विभिन्न धाराएँ आकर फलफूल रही थीं। नगरवासी भी कापालिक, अघोर, चीनाचार, जूतिक आदि के विषय पर विवाद किया करते थे।

अपार धन के केन्द्र बौद्धमठों का प्रभुत्व यहाँ समृद्धि पर था। इस समय कौशाम्बी, श्रावस्ती तथा वैशाली में बौद्ध पताका झुक चली थी। बौद्धधर्म की अठारह शाखाएँ हो चुकीं थीं और वज्रयानी अपनी साधना को पहले की भाँति गुह्य नहीं रखते थे। जैनधर्म पुन्द्रवर्धन और समरत की भाँति कान्यकुब्ज में शक्तिशाली नहीं होते हुए भी, दिगम्बर साधुओं की कमी नहीं थी।

पाठशालाओं में गुर, यवन, पारसीक, बर्बर, खस, दरद इत्यादि के आक्रमणों की कथा सुनाते, स्कंदगुप्त, नहपान तथा कनिष्क और खारवेल से लेकर उदयन तथा अजातशत्रु की कहानियाँ दुहराते। रात्रि

के समय जब कापालिक दिगम्बरा शक्ति की उपासना करते, नगर के चतुष्पथों पर या चैत्यों के निकट ब्राह्मण पुराणों की कथाएँ सुनाया करते। वल्लभी तथा नालन्द विश्वविद्यालयों को जाने वाले स्नातक जब लौटकर आते तब नगर के कवि और दार्शनिक उन्हें सम्मान प्रदान करते थे।

देवगुप्त को मौखरियों का यह वैभव अखरता था। ईश्वरवर्मन् तक जो गुप्तों की अधीनता स्वीकार करते थे, ईशानवर्मन् के काल में वे मौखरी स्वतंत्र हो गये थे। उसने गौड़, आन्ध्र तथा सुलीकवंशों और हूणों को पराजित किया था। ईशान के बाद, शर्व, अवन्ति ने उसी शक्ति को अक्षुण्ण रखा। इस समय के शासक ग्रहवर्मन् ने स्थाण्वीश्वर के वर्धनों की राजकन्या राज्यश्री से विवाह करके अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। स्थाण्वीश्वर के यह वर्धन पुष्यभूतिवंश के थे। नरवर्धन शैव था जिसने हूणों के आक्रमण के समय गुप्त साम्राज्य के खंडहरों में से सिर उठा दिया था। नरवर्धन के पौत्र आदित्यवर्धन ने गुप्तवंश की राजकन्या महासेनगुप्ता से विवाह किया था। उसी का वंशज प्रभाकर-वर्धन एक सशक्त राजा था। उसने स्वयं अपने को महाराजाधिराज तथा परम भट्टारक की उपाधि दे दी थी और गुर्जरों को पराजित करके वह मालव तथा गुर्जरभूमि का बहुत-सा भाग दबा बैठा था जो शीघ्र ही उसके हाथ से निकल गया। उसके बन्दियों ने उसे लगभग चक्रवर्ती सम्राट् ही कह दिया था, किन्तु सत्य इतना ही था कि उत्तर में उसका राज्य हिमालय तक था। पश्चिम में पञ्चनद प्रदेश में हूण शक्ति थी, पूर्व में कान्यकुब्ज के मौखरी थे, दक्षिण-पश्चिम में राजपूताने की मरु-भूमि थी। मौखरिवंश से पुष्यभूतिवंश की मित्रता ही गुप्तों के लिये विक्षोभ का कारण बन गई थी।

एक ओर राज्यवंशों में यह प्रतिस्पर्धा थी, दूसरी ओर अनेक आक्रमणकारी जातियों के भारत में घुस आने से उनके मतांतरों का

यहाँ के निवासियों पर जो प्रभाव पड़ा था, उससे अनेक नये मतों का प्रादुर्भाव हो गया था। प्रजा पर धीरे-धीरे अन्धविश्वासों की छाया का प्रगाढ अन्धकार व्याप्त हो चला था। वज्रयानी सिद्धों की वाम-मार्गी उपासना का तंत्रवाद अब ब्राह्मणों, शैवों पर भी पड़ने लगा था यहाँ तक कि भागवत संप्रदाय के अनुयायी भी उससे अछूते नही थे। कहीं-कहीं तो जैन संप्रदायों तक उसकी आग ने झुलस पहुँचा दी थी।

सामंतों और प्रजा के पारस्परिक सम्बन्धों म मिठास नहीं थी। अभी तक सामंत जो विदेशियों से रक्षा करते थे, अब विदेशियों की शक्ति के क्षीण होने पर परस्पर स्त्री, धन और भूमि के लिये लड़ने लगे थे, जिसके फलस्वरूप प्रजा को अत्यंत कष्ट होता था। किन्तु सामन्तों की दुर्दमनीयता घटने के स्थान पर बढ़ती जा रही थी। हूणों की अंतिम शक्ति कभी-कभी प्रजा के असंतोष को ढँक देती थी। मिहिर-गुल के उपरात शक्ति क्षीण हो चुकी थी, वह इस समय उत्तर-पश्चिम से कुछ नये हूणों के आ जाने से फिर सिर उठाने लगी थी। प्रभाकर-वर्धन ने अपने पुत्र राज्यवर्धन को उनसे युद्ध करने को भेज दिया था।

दक्षिण के राष्ट्रकूट सन्नद्ध थे। वातापि मे पुलकेशिन द्वितीय अब दक्षिणात्य मे अपना हाथ फैलाने लगा था। उसके भाई विष्णुवर्धन ने जो पूर्वी चालुक्य वंश स्थापित किया उसने सुदूर दक्षिण के चोल राजाओं तक को दबा दिया, जो पुलकेशिन स्वयं नहीं कर सका था। पूर्व और पश्चिम समुद्र के बीच वह पुलकशिन अपनी विध्य जैसी सेना लिए अड़ा हुआ था। ईरान के शाह खुसरू द्वितीय के पास उसने अपने दूत भेजे और समुद्री राह से उसके यहाँ पारसीक दूत आकर रहते थे। उसके स्वागत का चित्र तत्कालीन चित्रकारों ने अजन्ता की गुफाओं में अंकित किया था।

वर्धनों की मित्रता चीन से बढ़ रही थी। वर्धनों के विरोधी देवगुप्त के मुख से कभी वर्धनों के लिए क्षत्रिय शब्द नहीं निकला। वह उन्हें

वैश्य ही कहता था। पार्यात्र वैरात का राजा उन दिनों वैश्य तथा सिंधु देश का शासक शूद्र था।

सेनाओं पर व्यय बहुत होता था। नगर के प्राकार सुदृढ़ थे, और श्रेणियों में शिल्प व्यवसाय विभक्त था; यदि शिल्पी प्रतिज्ञा करके कार्य पूर्ण नहीं कर पाता था तो उसे दास बना लेना संभव था, और वह अपने दासत्व से धन चुका कर ही छूटता था।

देवगुप्त की वासना दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही थी।

४

रात्रि के अंधकार में किसी ने धीरे से द्वार थपथपाया। नगर के निम्न श्रेणी के लोग इस भाग में रहते थे। थोड़ी देर तक कोई उत्तर नहीं आया। तब वह थपथपाने वाला कुछ देर खड़ा रहा और फिर ऊब कर बुरबुराने लगा : अच्छा काम है। सो गई होगी।

इसी समय वातायन में से किसी ने झाँक कर कहा : कौन है?

फिर स्त्री का हास्य सुनाई दिया : भण्ड!

द्वार खुल गया। एक बौना हाथ में मशाल लिए चलने लगा। आगन्तुक पीछे-पीछे चल पड़ा। द्वार फिर बन्द हो गया।

घर छोटा था। सामने एक अलिंद था। उसके दोनों ओर दो कोठरियाँ थीं, जिनमें केवल द्वार थे और फिर दूसरी मंजिल थी। आगन्तुक ऊपर चला गया। उसने देखा एक स्त्री शैय्या पर पड़ी थी। बौना जाकर उसके सिर को दबाने लगा। दूसरी स्त्री भीतर चली गई। भण्ड बैठ गया। भीतर जाने वाली स्त्री हँसती हुई लौट आई और उसने उसके सामने एक रोटी, कुछ मास रख दिया। वह पीले नेत्रों की स्त्री हूण थी। भण्ड एक स्त्री के रहते दूसरी स्त्री को ले आया था।

'क्या संवाद है?' वामन ने अपने कूबड़ को और उचका कर पूछा।

भण्ड ने कुछ नहीं कहा। चुपचाप खाता रहा। दीपशिखा काँपने लगी। जब वह खा चुका उसने उठ कर कहा : साका !

दूसरी स्त्री उसके निकट आ गई। भण्ड क्षण भर मुग्ध-सा देखता रहा। शैय्या पर पड़ी स्त्री ने देखा और मुंह फेर लिया।

भण्ड ने कहा : मुझे इसी समय जाना पड़ेगा।

बौना चुप था। उसने कहा : क्यों ? इस समय तुम कहाँ से आये हो ? जानते हो पद्मा घर से गायब है।

भण्ड ने हँस कर कहा : कार्य गुप्त है। फिर जैसे चौंक उठा : पद्मा ! कौन ले गया ?

साका ने आँखें बचा कर कहा : ऐसा गुप्त तो क्या होगा ? उसे पद्मा से कोई मतलब न था। पद्मा पड़ोसिन थी।

'हाँ,' भण्ड ने कहा—'स्थाण्वीश्वर से आ रहा हूँ।' फिर वह हँसा। वामन चौंक उठा। भण्ड कहता रहा : अब पुरस्कार मिलेगा मधु ! समझी ! साका और तू स्वर्ण से लद जाओगी। प्रभाकरवर्धन मृत्यु शैया पर पड़ा है। मदनिका का कोई समाचार आया ? वह पद्मा के संवाद को भुला देना चाहता था।

मदनिका भण्ड की बहन थी। भण्ड एक वेश्या का पुत्र था। मद-निका एक गृहस्थ की पुत्री थी। किंतु वह उससे पड़ोस में बचपन में खेला था। उसे बहिन ही मानना था। अभी उसमें मनुष्यता बाकी थी। पद्मा को उसने उसकी बाल्यावस्था से देखा था। दारिद्रय में अटूट सौन्दर्य देखकर वह उससे बहुत स्नेह करता था।

'मदनिका', वामन ने कहा—'राज्यश्री के पास आराम से है। कहती थी उसके दुख बीत गये। पद्मा की माँ उसे ढूँढ-ढूँढ कर हार गई, कोई पता नहीं चला।'

'सच कहती थी', भण्ड ने कहा—'अब राज्यश्री का अंत निकट आ गया है।' वह हँसा, फिर कहा : पद्मा। फिर उसने एक लंबी

साँस ली और कहा : मदनिका ! जैसे वह अब अपने मन में मदनिका और पद्मा की तुलना कर रहा था।

'क्यों ?' वामन ने पूछा। वह मदनिका के विषय में जानना चाहता था।

'क्यों ?' भण्ड हँसा, 'मालवराज बड़ा लोलुप है। वह मदनिका को भूला नहीं है। अब इस समय मदनिका चाहे तो अपना भविष्य बना सकती है।'

साका जौ की मदिरा निकाल लाई थी। उसने चमड़े के चषक में भर कर भण्ड को दी। भण्ड के पीने पर वह जूंठे पात्र में पीने लगी।

'मै जाता हूँ', भण्ड ने कहा। और वह उठ खड़ा हुआ।

उसके चले जाने के बाद दीपक बुझा कर तीनों सो गये।

महानगर की अगनित वीथियों को पार करके जब भण्ड प्रासाद के द्वार पर पहुँचा, द्वारपालों ने उसे रोक दिया। भण्ड ने मुस्करा कर राज-मुद्रा निकाल कर दिखाई।

द्वारपालों ने सम्मानपूर्वक पथ छोड़ दिया। भण्ड भीतर चला गया।

इस समय मालवराज देवगुप्त अपनी विलासिनी नर्तकियों के साथ मदिरापान में रत था। सामने ही एक युवती बन्धी पड़ी थी, जिसे नर्तकियाँ बलपूर्वक मदिरा पिला चुकी थीं और वह युवती नशे में झूम रही थी जिसे देख कर वे लोग खिलखिला कर हँस रहे थे। युवती निस्संदेह सुन्दरी थी। उसका नाम पद्मा था। आज ही अरुणोदय से पूर्व देवगुप्त के सैनिक चुपचाप उसे पकड़ लाये थे।

नर्तकियों ने उसे झूमते देख कर देवगुप्त की ओर हँस कर देखा और हाथ फैला दिये। देवगुप्त ने उनके खुले हाथों पर एक-एक स्वर्ण दीनार धर दिया। नर्तकियाँ आनन्द से पुलक उठीं। उन्होंने पद्मा के बन्धन खोल दिये और वे चली गईं।

देवगुप्त मदविह्वल-सा उठ कर उसके समीप चला गया। स्त्री भय से काँपने लगी किंतु उसकी चेतना धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही थी। देवगुप्त ने उसे अपने हाथों में भर कर कहा : देवगुप्त की तृष्णा एक लपट है। वह सतीत्व की आग की ऊष्मा से भयभीत नहीं होती। मेरा कहना जो स्वयं स्वीकार करने में हिचकिचाता है, उसे बलपूर्वक मैं अपनी स्वेच्छा से सब कुछ स्वीकार करा सकता हूँ।

स्त्री एकबारगी उठी और फिर लड़खड़ा कर गिर गई। और बेहोशी ने उसकी चेतना को छीन लिया, देवगुप्त ने क्षण भर देखा और अत्यन्त आतुरता से उसने उसे उठाकर शैया पर डाल दिया।

ठीक इसी समय द्वार पर की किसी थपथपाहट सुनाई दी।

देवगुप्त क्रुद्ध हो उठा। स्वभाव से ही वह क्रूर था। अपने अक्षुण्ण विलास में बाधा स्वीकार करना उसके स्वभाव के विरुद्ध था। उसके परम हितैषी भी उसके क्रोध का निवारण करने में उस समय असमर्थ होते थे, जब उसके सामने स्त्री और मदिरा का इन्द्रजाल होता था। अपने राज्य की किसी भी स्त्री को बलात् या गुप्त रूप से उठा लाना सामंतों के बांये हाथ का खेल हो चला था। किसी किसी कामुक सामंत का तो यह नियम-सा बन गया था कि कोई नववधू अपने पति के पहले सामंत की दासी बनती थी, और दासी के अपने ऊपर कोई भी अधिकार नहीं थे। ऐसी अत्युक्ति सब पर तो लागू नहीं थी, किंतु तत्कालीन कवियों की शृङ्गारिक रचनाएँ जो सामंतों के कौतुक के लिये लिखी जाती थीं, उनके हृदयों की वह्नि पर घी बनकर गिरती थीं। देवगुप्त किसी भी अपराध को क्षमा करने की शक्ति रखता था, किन्तु ऐसे समय किसी का तनिक भी व्याघात उसे असह्य था।

उसने कठोर स्वर से कहा : कौन है?

उत्तर आया : देव का निजी गुप्तचर भण्ड!

'भण्ड!' देवगुप्त हठात् चौंक गया। उसके मस्तिष्क में अनेक बातें

दौड़ गईं। भण्ड यदि पद्मा को यहाँ देखेगा तो क्या कहेगा ? और भण्ड क्या समाचार लाया है जो उसे रात्रि में इसी समय आना पड़ा ? बाहर द्वारपालों ने उसे रोका होगा, फिर अनेक व्यक्तियों ने उसे रोक रोककर उसे महामुद्रा प्रदर्शित करने को विवश किया होगा, किन्तु वह अबाध निर्भय होकर जो चला आया है, उसका कारण ? और फिर देवगुप्त की दृष्टि पद्मा की ओर गई, जो इस समय नशे मे सो गई थी। और उसका रक्त आवेग से खौलने लगा। क्या आज की शक्ति व्यर्थ जायेगी ? क्या वह अपनी दुर्दमनीय वासना को राज्य कार्य की भेंट चढ़ा देगा ? यह तुलना इतनी कठोर थी कि देवगुप्त क्षण भर ऐसे गंभीर चितन में लग गया कि वह भण्ड की उपस्थिति को भूल ही गया।

'देव !' भण्ड का स्वर सुनाई दिया, 'प्राचीरों में भी शत्रु होते हैं, अन्यथा मैं संवाद सुना चुका होता।'

देवगुप्त अधीर हो उठा। उसने द्वार खोल दिया। इस समय साधारण वेश में था। अधोवासक, उष्णीश और कंचुक पहने था। उसके पैरों में शकों के से ऊँचे जूते थे। बांये हाथ में चांदी का वलय था। कटिबन्ध में खड्ग लटक रहा था। उसके बाल पहलवी ढंग के कटे हुए थे। द्वार खुलते ही भीतर से सुगन्धित वायु का एक झोंका आया। बहुमूल्य वस्तुओं से सज्जित प्रकोष्ठ बीच में स्तंभों पर टिका हुआ था। चीन के रेशमी दुकूलों से दीपों का आलोक प्रतिध्वनित होता हुआ देवगुप्त की वासनामय आकृति को एक रक्तिम उन्माद देता हुआ जब भण्ड के नयनों में सुस्थिर हो गया उसने देखा एक सुन्दरी युवती बहु-मूल्य आच्छादनों के बीच सो रही थी और फलका पर मदिरापात्र रखे थे।

'क्या संवाद लाये हो ?' देवगुप्त ने अधीर होकर पूछा।

'बहुत अच्छा समय है देव।'

'क्या हुआ है ? शीघ्र कहो।'

'देव ! कुमार हर्षवर्द्धन इस समय वनों में आखेट कर रहे हैं, युवराज राज्यवर्द्धन इस समय हूण युद्ध में रत हैं । स्थाण्वीश्वर के राजा प्रभाकर-वर्धन मृत्यु शैया पर पड़े हैं ।'

'अंतिम घड़ियाँ गिन रहा है वह बूढ़ा !' देवगुप्त ने उपहास से कहा ।

'देव ! रसायन और सुषेण जैसे वैद्य हार चुके हैं । हर्ष और राज्य-वर्धन को राजधानी बुलाया गया है ।'

'साधु भण्ड साधु ! मैं तुम्हें स्थानपाल बनाऊँगा ।' देवगुप्त ने सोचते हुए कहा । इसी समय स्त्री ने करवट ली । भण्ड को उसका मुख दिख गया । उसके मुख से निकला : पद्मा !

और भण्ड भूल गया कि वह कहाँ था । उसने पद्मा का सिर अपनी गोद में लेकर कहा : पद्मा ! पद्मा !

स्त्री में जैसे चेतना की हिलोर आई । उसने दोनों हाथ फैला कर कहा : मुझे बचाओ, मुझे बचाओ...

और वह फिर मूर्छित हो गई ।

देवगुप्त अब निकट आ गया था । उसने क्रोध से भण्ड की गर्दन पकड़ कर कहा : मूर्ख ! मैं तुझे मृत्यु दंड दूंगा ।

उसने दोनों हाथों से ताली बजाई । तीनों द्वारों पर बर्बर सैनिक दिखाई दिये । उन्होंने भण्ड को पकड़ लिया ।

रात के अंधकार में ही नगर की उस गली में वह छोटा सा घर सैनिकों ने घेर लिया । वामन, साका और मधु पकड़ कर बाँध लिये गये ।

प्रात:काल भण्ड ने देखा वामन, साका, मधु और पद्मा उसी के पास थे और सामने ही बधिक उपस्थित थे । उसने पद्मा की ओर देखा तो उसने सिर झुका लिया । वह अपवित्र थी ।

महासामंत देवगुप्त की तृष्णा का दीप जल उठा था। भण्ड को पुरस्कार मिल गया था।

५

उपगुप्त उपरिक था। स्वभाव से भीरु किंतु अत्यंत महत्वाकांक्षी। प्रभात के आलोक में वह शीघ्रता से बाहर जाने की तैयारियाँ कर रहा था। बाहर दासियाँ और दास काम में लगे हुए थे। यह घरेलू दासों की प्रथा अभी अवशिष्ट थी। कहा जाता था कि प्राचीन लिच्छविगण के समय में क्रय-विक्रय के योग्य दास थे जिन पर स्वामी का पूर्ण अधिकार था। वे ही खेती करते थे। परंतु मौर्य साम्राज्य के समय में चाणक्य ने जो नियम बनाये थे उस समय दास प्रथा का अंत हो गया था। भूमि के जोता दास नहीं रहे थे। अर्द्धदासों की-सी अवस्था में वे अभी तक चल रहे थे।

उपरिक उपगुप्त को जल्दी थी। उसे देवगुप्त ने बुलवाया था। दंडधर अभी आकर सूचना दे गया था। अभी एक गया नहीं था, तब तक दूसरा आ पहुँचा था। उपरिक को स्वयं जल्दी थी। कल रात दूत ने आकर जो गोपनीय समाचार दिया था, वह रात होने के कारण पहुँचा नहीं सका था। मागंधी नामक दासी ने लाकर जब उसे स्वर्ण किरीट दे दिया, उसने उसे पहन लिया और सीधे, हिनहिनाते घोड़े के पास पहुँच कर उसने वल्गा पकड़ ली और प्रासाद की ओर चल पड़ा।

देवगुप्त अधीर था। उपरिक उपगुप्त ने उसे झुक कर अभिवादन किया। देवगुप्त को अवकाश नहीं था। उसने कहा : यह सब छोड़ दो उपरिक उपगुप्त। अपनी बात कहो।

किंतु उपरिक के कहने के पहले ही देवगुप्त अपनी वही बात कह गया जो रात उसे भण्ड ने सुनाई थी। उपरिक सुनता रहा और फिर

वह मुस्कराया। उसने कहा : देव! कल कर्णसुवर्ण नरेश का दूत आया है।

"हाँ!' देवगुप्त के नयन विस्फारित हो गये। 'क्यों?'

'दूत पत्र लाया है। कर्णसुवर्ण के राजा हमारी मित्रता के प्रार्थी हैं।'

'यह सत्य है?'

उपरिक उपगुप्त ने कहा : प्रमाणहीन मैं कोई बात नहीं कहता। उसने एक लपेटा हुआ कपड़ा अपने वस्त्रों के भीतर से निकाला और देवगुप्त ने उसे एक व्याकुलता से पढ़ा। और फिर कहा : अबकी बार विजय निश्चित है उपगुप्त।

'देव।'

'यही समय है जब वर्धनों और मौखरियों का नाश किया जा सकता है।' देवगुप्त के कठोर मुख पर एक भयानकता काँपने लगी। नीरव प्रकोष्ठ में उसके फुसफुसाते शब्द धीरे-धीरे साँप के बच्चों की भाँति कुलबुलाने लगे। उपरिक उपगुप्त को लगा जैसे साँपिन अभी-अभी जो अनेक अंडे धर गई थी, उनमें से अब छोटे-छोटे बच्चे निकल रहे थे। देवगुप्त की भौं सिकुड़ गई। एक दृढ़ता उसके नीचे के होंठ पर जम गई। उसके कर्कश हाथ जो खड्ग चलाते-चलाते कठोर हो गये थे, कुछ फैल गये। वह कहता रहा : ग्रहवर्मा राज्यश्री के सुपने में पागल हो रहा है। मालव के गुप्तवंश को इस समय उठना ही होगा। उपरिक उपगुप्त! क्या सोच रहे हो?

'देव! मैं आपकी आज्ञा सुन रहा था।'

देवगुप्त प्रसन्न हुआ। उसने कहा : सेना को चुपचाप नागरिक वेश में कान्यकुब्ज में घुसा दो। मैं स्वयं वेश बदल कर जाऊँगा। उपरिक समय बड़ा अमूल्य है! चूक न जाये।'

'देव! देखिये तो।' उपरिक ने खड्ग पर हाथ रख कर कहा—

'इस पुल पर चलते समय किसी का पाँव लहूलुहान न हुआ हो, ऐसा तो कभी नहीं सुना।'

'सुनना होगा उपरिक', देवगुप्त ने कादम्बिनि ढालते हुए कहा— 'दक्षिणापथ के नट खड्ग पर भी चल लेते हैं।'

'कौन पुलकेशिन्?' उपरिक ने उपेक्षा दिखाई।

देवगुप्त ने कंधा हिला कर कहा : पहले मौखरि। पीछे वर्धन!

उपरिक ने उसके नयनों में अदम्य तृष्णा देखी। वह मन ही मन काँप उठा।

६

आकाश में दो चार बादल उड़ रहे थे। राज्यश्री के विशाल उद्यान के पश्चिमी भाग में सघन वृक्ष थे। जामुन, खिरनी, पीपल, वट तथा मौलश्री की सुखद छाया वहाँ परिव्याप्त थी। संध्या अभी दूर थी। वट वृक्ष के नीचे एक वेदी-सी बनी थी और पीपल के नीचे चैत्य था। नागपूजा भी वहीं होती थी। एक विश्वास यह भी था कि श्रीमां यक्षिणी का उसमें निवास था। पास ही बताया जाता था कि गंधर्व रहते थे। मदनिका घूमती हुई उधर ही आ गई। वह एकांत में बैठ कर कुछ सोचना चाहती थी। अब वह कुछ थक गई थी। दासियों की प्रतिस्पर्धा से उसका हृदय बहुत खिन्न हो गया था। राज्यश्री उसे बहुत स्नेह से रखती थी, यह अन्य दासियों को प्रिय नहीं था।

हिमालय का अशोक वृक्ष अपने चलदल लहराता हुआ शोभित था। वह उसके नीचे जाकर लेट गई। प्राकार की निकटता से वहाँ कुछ अधिक छाया हो गई थी। उस शीतलता में पड़ते ही उसे नींद आ गई। कब तक वह सोती रही इसका उसे ज्ञान नहीं रहा। उसे एक

व्यक्ति ने धीरे से जगा दिया। एक नये मनुष्य को देख कर उसके मुख से एक भय की हल्की चीख निकल गई।

नवागंतुक ने उसको भीत देख कर कहा : डरो नहीं। मुझे भण्ड ने भेजा है।

'भण्ड !' मदनिका ने आँखें फाड़ कर देखा। अभी वह कुछ समझ नहीं पाई थी।

नवागंतुक ने उसका हाथ पकड़ कर कहा : उधर चलो, एकात में।

मदनिका उसके साथ यूथिकामण्डप में चली गई। नवागंतुक बैठ गया। मदनिका के बैठ जाने पर उसने कहा : भण्ड मर गया। साका, मधु, वामन और पद्मा भी मारे गये।

मदनिका ने सुना। उसकी इच्छा हुई रो पड़े किंतु उसकी आँखों में एक भी आँसू नहीं आया। उसने सूनी-दृष्टि से देख कर कहा : उनकी हत्या किसने की ?

'मौखरियों ने,' आगन्तुक ने धीमे से कहा। 'भण्ड देवगुप्त का चर था, यह तो तुम जानती हो ?'

मदनिका ने सिर हिलाया।

'मुझे उसी ने कहा था कि तुम राज्यश्री की दासी हो। चर को मृत्युदण्ड दिया जाता है।'

'किन्तु उसके साथ मधु, साका और पद्मा तथा वामन भी यहीं आये थे ?'

'आये थे। मूर्ख थे न ? मेरा कहना नहीं माना। मौखरि सैनिकों ने स्त्रियों को पकड़ लिया।'

'सैनिकों ने !' वह काँप उठी। 'फिर ?'

'फिर मृत्यु' आगन्तुक की घुटी हुई आवाज़ डंक मारने लगी।

मदनिका अब सुस्थिर हो गई थी। उसने भूमि पर उँगली से रेखाएँ बनाते हुए कहा : और तुम कौन हो ?

'तुम्हारा प्रेमी !' आगन्तुक ने मदनिका का हाथ पकड़ लिया।

मदनिका हँस दी। उसने कहा : सच कहो। उपहास के लिये काफ़ी समय है।

'सच ही कहता हूँ', नवागन्तुक ने कहा, 'मेरा विश्वास करो। मैं तुम्हें गृहवर्मा से बचाने आया हूँ।'

'गृहवर्मा से ? उन्हें राज्यश्री से अवकाश ही कहाँ है ? क्या मैं राज्यश्री से भी सुन्दरी हूँ ?'

'मौखरियो की लिप्सा को कौन नहीं जानता ? इस समय हर्म्य में कितनी स्त्रियाँ हैं ?'

'वह न पूछो। पर यह बताओ अंतःपुर में स्त्रियाँ किसके पास नहीं हैं ?'

आगन्तुक इस बार चुप रहा। उसने कहा : इस बात को जाने दो। मैं तो तुम्हारा भविष्य सोचता हूँ।

'मेरा भविष्य !' मदनिका हँस दी। 'मेरे जीवन में बाकी क्या रह गया है ? मेरी नहीं अपनी चिंता करो। मैं यहाँ बहुत सुखी हूँ।'

'सुखी हो !' आगन्तुक ने उसका हाथ दबा कर कहा—'यह सौंदर्य लेकर तुम दासी होने के योग्य हो ? बिंदुवर्मा की पुत्री की यह परिस्थिति मालव का अपमान है।'

इस बार मदनिका सचमुच रो दी। वह घाव छू दिया गया था, जिसमें अत्यधिक पीड़ा थी।

'मैं जानता हूँ', आगन्तुक ने कहा, 'तुम्हारे सर्वनाश का कारण उपरिक उपगुप्त था। किन्तु वह भी अधिक दिन जीवित नहीं रहेगा।'

'क्यों ?' मदनिका की प्रतिहिंसा जागने लगी।

'क्योंकि देवगुप्त उससे मन-ही-मन असंतुष्ट है।'

'परन्तु देवगुप्त क्या साधारण व्यक्ति है जिसके पास हमारी तुम्हारी पहुँच हो सके ? वह क्या राजवंशीय नहीं है ?'

'है', नवागन्तुक ने मद भरे नयनों से कहा—'जब से उसने तुम्हें देखा है वह अपने अतीत से घृणा करने लगा है।'

'तुम कैसे जानते हो?'

आगन्तुक ने मदनिका के मुँह को अपने एक हाथ से दाब कर दूसरे से उसके एक हाथ को और भी दबाकर कहा : क्योंकि मै स्वयं देवगुप्त हूँ।

वह मुस्कुराया। मदनिका को लगा उसके पाँवों के नीचे धरती नहीं थी। उसके नयन फट गये। यदि देवगुप्त ने उसका मुँह बन्द नहीं किया होता तो वह निस्संदेह चिल्ला उठी होती। इस समय उसने उसे छोड़ दिया और धीरे से कहा : मदनिका! तू विस्मय करती होगी कि राजोद्यान मे देवगुप्त कैसे आ गया। मेरा अश्व बाहर खड़ा है। चाहूँ तो तुझे अभी ले जाऊँ और मालव की अधीश्वरी बना दूँ। परन्तु पुरुष का जीवन इतना ही तो नहीं है? मैं चाहता हूँ मौखरियों और पुष्यभूतियों को हराकर फिर पाटलिपुत्र में गुप्तों की राजधानी बसाऊँ, जिसमें परम भट्टारिका मदनिका ध्रुवस्वामिनी की भाँति शासन करे।

'छिः छिः', मदनिका ने लजा कर कहा, 'क्या कहते हैं आप? मेरा जीवन क्या अब ऐसा पवित्र रहा है? मदनिका नाम भी क्या कुलवधुओं का होता है? और अभी तो आपका मोह है। इसके उतर जाने पर क्या होगा? ब्राह्मण और क्षत्रियकुल विरोध करेंगे?'

'करेंगे तो मरेंगे', देवगुप्त ने लेटकर कहा, 'राजा को पूर्ण अधिकार है। वह किसी से भी विवाह कर सकता है। जिस दिन मौखरियों को पराजित करके राज्यश्री को तुम्हारी दासी बना दूँगा, उस दिन तुम्हें अपनी वावाता बना दूँगा, जिस दिन वर्धनों को हरा कर हर्ष और राज्यवर्धन का शीश भालों पर दुर्गद्वार पर टाँग दूँगा, उस दिन तुम मेरी महिषी हो जाओगी।'

मदनिका को लगा वह पागल हो जायेगी। वह कितने भयानक पुरुष

के पास थी। किन्तु कितना मादक था यह स्वप्न! क्या यह हो सकता था!

'लेकिन तुम्हें एक काम करना होगा', देवगुप्त ने कहा। मदनिका सुनने लगी। 'राज्यश्री को दासी बनाना कठिन नहीं है। तुम मेरा कहा कर सकोगी?'

'क्यों नहीं?' मदनिका ने कहा।

'मैं इसी उद्यान में इसी स्थल पर तुमसे आकर मिला करूँगा। तुम मुझे प्रासाद का समस्त संवाद सूचित किया करोगी।'

मदनिका ने आनंद से विह्वल होकर आगन्तुक के दोनों चरणों पर अपना सिर रख दिया। देवगुप्त ने कहा: हाँ, हाँ, क्या करती हो महादेवी!

देवगुप्त चला गया, परन्तु मदनिका के कानों में अंतिम शब्द गूँजने लगा।

७

राज्यश्री वातायन में से बाहर देख रही थी। ग्रहवर्मा उसके समीप खड़ा था। राज्यश्री कह रही थी: मुझ जैसा सुखी इस संसार में कोई नहीं। जहाँ देखती हूँ मुझे आनंद दिखाई देता है। जानते हो क्यों?

ग्रहवर्मा ने कहा: जानने के पहले यदि मैं कहूँ कि मुझ जैसा भाग्य किसी का नहीं तो?

राज्यश्री हँस दी।

'तुम राज्यश्री नहीं,' ग्रहवर्मा कहने लगा, 'मेरी मनश्री हो। एक-एक पल में मुझे प्रतीत होता है जैसे युग बीत रहे हैं। मैं नहीं समझता प्रेम का यह स्वर्ग त्याग कर लोग राज्य की लिप्सा में क्यों इतना हत्याकांड किया करते हैं! तुम्हारे इन नयनों को देखता हूँ तो मेरे हृदय की

अतृप्ति मिट जाती है। देखता हूँ, फिर देखता हूँ, किन्तु मन नहीं भरता।'

'कल ही तो वसंतोत्सव है, मेरा अशोक कल झूलेगा। कल काम-पूजा होगी। मेरे आम्र पर प्रवाल झूल रहे हैं.........

वह हँस दी। उसकी झंकार राजोद्यान के पश्चिमी कोण में बिखर गई। मदनिका ने देवगुप्त का हाथ दबा कर कहा : वह देखिये।

देवगुप्त ने देखा। देख कर वह ऐसा अवरुद्ध सा रह गया जैसे विक्षुब्ध महासागर को किसी ने एकदम स्थिर कर दिया हो। मदनिका ने देखा देवगुप्त के नेत्रों में एक वीभत्सता सी छा गई। राज्यश्री के मुख पर गृहवर्मा की झूमती पलकें झूलने लगीं। आनंद की यह तृप्ति देव-गुप्त के हृदय में कटार की तरह घुस गई।

मदनिका ने धीमे से कहा : क्या सोच रहे हैं?

'कुछ नहीं,' देवगुप्त ने चैतन्य होकर कहा।

मदनिका हँस दी। उसने कहा : झूठ।

'क्यों?' देवगुप्त चकित हो गया।

'अप्रतिभ हो गये न वह अपरूप सौंदर्य देखकर। अब राज्यश्री महिषी बनेगी कि मदनिका?'

देवगुप्त लज्जित हो गया। उसने कहा : मदनिका, राज्यश्री इतनी दुखी क्यों है?

'क्योंकि वह दार्शनिकों की छाया में है। असंग, वसुबंधु, अश्वघोष दिङ्नाग आदि की कृतियाँ सुनती रहती है।'

'तुम दासी होकर इन सबके नाम कैसे जानती हो?'

'क्योंकि यह दासी बिंदुवर्मा की पुत्री है। बिंदुवर्मा स्थापत्य के आचार्य थे। उसकी श्रेणी उपरिक उपगुप्त के यहाँ विलास सामग्री बनाने जाती थी। वहीं दुर्भाग्य से मदनिका भी गई थी। अन्यथा आज मदनिका भी प्रसिद्ध चित्रकर्त्री होती।'

'ओह, हाँ, हाँ,' देवगुप्त ने कहा, 'ठीक है।'

उस समय ग्रहवर्मा का स्वर सुनाई दिया, 'कल जब वसंत से लताएँ झूमेंगी, जब पुष्पों पर भ्रमरावलियाँ गुनगुन करती हुई झूमेंगी, जब समीरण पर गंध अंगड़ाइयाँ लेंगी, तब मेरे जीवन का सबसे सुन्दर दिन होगा।'

राज्यश्री ने कहा : देव! मेरे पितृगृह में कुमार हर्ष के पास एक कवि आता था। उसका नाम बाणभट्ट था। ऐसा ही वर्णन तो वह भी किया करता था?

मदनिका ने उस समय देवगुप्त की पसली में उँगली दबा कर कहा : क्या देख रहे हो?

देवगुप्त ने चौंक कर कहा : कुछ नहीं।

मदनिका हँस दी।

वातायन सूना हो गया था। राज्यश्री और ग्रहवर्मा हट गये थे। देवगुप्त ने धीरे से कहा : मदनिका! सत्य कहूँ?

'कहो।'

'राज्यश्री सुन्दर है।'

'और मैं?' मदनिका ने हठात् पूछा।

'तुम?' देवगुप्त अब संभल गया था। उसने उसके दोनों हाथ पकड़ कर कहा : तुम सचमुच का कमल हो, वह पत्थर का कमल है। तुम्हारी उससे कोई तुलना नहीं।

'तो फिर एक परस्त्री को देखकर तुममें इतनी आतुरता क्यों?'

देवगुप्त ने बंकिम नेत्रों से देखा। कुछ कहा नहीं।

'राजनीति है न?' मदनिका ने व्यंग्य किया।

देवगुप्त हँस दिया। उसने धीरे-धीरे मदनिका से कहना प्रारंभ किया। मदनिका ने सुना और उसके नेत्र फैल गये।

८

गहन कान्तार की एक पाषाणशिला पर बैठते हुए रात्रि के झीने अंधकार में देवगुप्त ने कहा : उपरिक उपगुप्त ! तुम्हारा भविष्य अंधकार-मय होता जा रहा है।

'देव !' उपगुप्त ने कठोर स्वर से कहा—'कारण पूछने की अवज्ञा के लिये क्षमा करेंगे।'

'कारण ?' देवगुप्त ने हँस कर कहा, 'मदनिका पट्टमहादेवी होने वाली है।'

'मदनिका !' उपगुप्त ने आश्चर्य से पूछा, 'वह तो मर गई थी न ?'

'तुम्हारे लिये अवश्य मर गई है। किन्तु वह अभी भी जीवित है। राज्यश्री की अंतःपुर सेविका है। उसी को मैंने प्रलोभन दिया है। वह मालव की अधिराज्ञी होना चाहती है और चाहती है उपगुप्त का रक्त।'

दोनों ठठा कर हँसे। निविड़ कान्तार में वह स्वर दूर तक गूञ्ज गया।

'दण्ड स्वीकार है ?' देवगुप्त ने पूछा।

'शिरोधार्य है देव ! उसका प्रबन्ध मैं कर लूँगा। प्रभाकरवर्द्धन मरने ही वाला है। हमारी सेना कान्यकुब्ज में घुस आई है। कर्णसुवर्ण की सेना गहन विपिन में छिपी खड़ी प्रतीक्षा कर रही है। कल वसंतोत्सव को हमारा कार्य हो सकता है।'

'ठीक है। कल ही आक्रमण हो जाना चाहिये। मेरे विचार में प्रभाकरवर्द्धन अबकी निश्चय ही मृत्यु को प्राप्त होगा। तो उपरिक उप-गुप्त ! ग्रहवर्मा का वध कल मैं ही करूँगा। हाँ परन्तु एक समस्या तो हल ही नहीं हुई ?'

'देव ! यह तो कोई नवीनतम है, आपने मुझे जो आज्ञा दी थी, वह सब कार्य तो मैं पूर्ण कर चुका हूँ।'

'कान्यकुब्ज नगर जीत कर मुझे क्या मिलेगा उपरिक ?'

'देव !' उपगुप्त ने धीरे से कहा, 'महाराज से सम्राट् जो जायेंगे !'

देवगुप्त उठ खड़ा हुआ। उसने चिन्तामग्न स्वर से कहा : वह तो ठीक है, परन्तु राज्यश्री तो प्राप्त नहीं होगी !

'राज्यश्री !!' उपगुप्त के मुख से ऐसे निकल गया जैसे उसने कोई अत्यन्त अद्भुत बात सुनी हो। वह निस्सन्देह इसके लिये तत्पर नहीं था। उसके जी में आया वह एक बार अट्टहास कर उठे और देवगुप्त पर अपने अवरुद्ध आक्रोश को एक बार पूरी तरह से बहा दे। किन्तु वह सँभल गया। वह कुमारामात्य से भी अधिक प्रतिष्ठित था। वह एक प्रांत का शासक था। फिर भी वह मालवराजदेव गुप्त की अधीनता में था।

'क्यों ?' देवगुप्त ने कुण्ठित होकर पूछा, 'इतने भयभीत क्यों हो गये ? क्या मैं उसे नहीं पा सकता ?'

उपगुप्त के मन में आया कहे कि नहीं, नहीं, यह असंभव है। उसने नीति के ग्रन्थ पढ़े थे। देवगुप्त के स्वर में वह अभाव की कचोट थी जिसे सुनकर उपगुप्त के हृदय में एक शांति उत्पन्न हुई। उसने कहा : देव ! मधुमाखी का छत्ता देखा है ?

'तो उपरिक ! मैं मधु निकालने वाला हूँ। उसके सौंदर्य ने मुझे पागल कर दिया है। मैं उसे पाकर रहूँगा'।'

'देव ! वह विवाहित स्त्री है। उसे दासी बना कर रखा जा सकता है। यह कार्य अत्यन्त दुष्कर है। केवल चन्द्रगुप्त ने रामगुप्त की पत्नी को अपनी महिषी बनाया था, किंतु उसके भी अन्य कारण थे।'

'उपरिक !' देवगुप्त ने गम्भीर स्वर में कहा, 'मैं उसे महिषी नहीं बनाना चाहता। केवल मौखरियों और पुष्यभूतियों का अपमान करना चाहता हूँ। इसलिये उससे विवाह करना ही होगा।'

'विवाह !' आश्चर्य से उपगुप्त ने कहा—'किन्तु यह असम्भव है।'

'कुछ असंभव नहीं है', देवगुप्त ने धृष्टता से कहा, 'राज्यश्री का हृदय मेरे सामने याचना करता होगा। कल बसंतोत्सव में स्वयं उपस्थित रहूँगा। तुम दुर्ग के बाहर अश्व लेकर मेरी प्रतीक्षा करना।'

'जो आज्ञा देव!' उपगुप्त ने सिर झुकाकर कहा किन्तु उसके हृदय ने कहा : यह असंभव है, यह असंभव है। उसे लगा कि उसके सामने एक भयानक मनुष्य खड़ा था। क्या यह उसकी अपनी ही निर्बलता नहीं थी? क्यों सोच रहा है वह ऐसा? क्या पुरुष विजय होने पर यही सब नहीं करता जो वह चाह रहा है। उपगुप्त की लिप्सा जागी। उसने सिर उठाकर कहा : देव! मै तत्पर हूँ।

६

बाह्य उद्यान में वसंत का मादक समीरण हरहराने लगा था। उसकी शोभा में गन्ध का उड़ता परिमल कुंकुम के उड़ते कणों में मिलकर अब क्यारियों में बिछलने लगा था। कभी-कभी पुंस्कोकिल बोल उठता और युवतियाँ केशर और आम्र की छाया में नृत्य करतीं, श्रमश्लथ हाथों से कालीयक और कस्तूरिका के पत्रलेखनों पर आये स्वेद बिंदुओं को पोछ देतीं और फिर कभी-कभी गौड़ीय मदिरा के चषक ढाल-ढाल कर पीने लगतीं। उनके रेशमी वस्त्रों पर चौड़ी स्वर्ण रशना मे जड़े मरकत और हीरक चमकते, फिर स्वर्ण वलयों की रगड़ से मनोहर स्वर निकलता और फिर अंगराग पलाश के कुसुमों से पुँछ जाता। अशोक मे बौर नहीं आई थी। जब वह फूलता है तो उसमें गुच्छे के गुच्छे फूल आते हैं और समस्त वृक्ष नम्र होकर झुक जाता है, मनोहर लगता है। बल्लरियों ने जैसे मधु का आगम सुनकर मन की बात धीरे से कही, फूलों जैसे दांत एक मुस्कान में धीरे के चमक उठे।

आज बसंतोत्सव मनाया जा रहा था। कान्यकुब्ज में आनन्द की

हिलोर काँप रही थी। दरिद्रों में भी उल्लास था। अपनी कम सामर्थ्य के अनुसार उन्होंने भी अपने वस्त्रों को रंग लिया था। लोकायतों की विह्वलता देखने योग्य थी। वह किसी ईश्वर और सत्ता को नहीं मानते। आज वे स्वतंत्र होकर पथों पर मदिरा पी रहे थे। वसंतोत्सव को नये जौ की बालें जलाकर लोग खाते और रात्रि में अग्नि जलाकर उसके चारों ओर मत्त होकर नृत्य करते, दूसरे दिन समस्त महानगर और नगरहार के ग्रामों में उत्सव होते। स्त्री और पुरुषों की टोलियाँ समवेत गीत नृत्य करतीं पथों पर निकलतीं। विलासी नागरिकों के आपानक एक दो दिन नहीं, पूरे एक मास चलते, वारवनिताएँ अपने प्रसाधन में नवऋतु के पत्रपुष्पों का जितना प्रयोग करतीं उतना स्वर्ण का नहीं।

'कामकन्दला! तनिक इस अशोक के शरीर पर अपने चरण का आघात कर न सखी!' मल्लिका पुकार उठी।

'अब वह रूप और यौवन मुझमें कहाँ बावरी, जो यह अभागा मेरे पाँव छूकर फूल उठे!' कामकन्दला ने बंकिम नेत्रों से देख कर कहा। 'मुझे तो मेरा आम ही प्रिय है। बेचारा गीत से ही तृप्त हो जाता है।'

फेनिला कहीं से आ रही थी। उसके कंठ में एक कुरुवक की माला थी।

'यह लो,' मल्लिका ने कहा, 'कुरुवक! कामकन्दला! फेनिला तो कुरुवक ले आई।'

सब सखियाँ हँस पड़ीं। फेनिला लज्जित हो गई। कवि परंपरा में मे कुरुवक के लिये प्रसिद्ध था वह स्त्री के आलिंगन से फूलता था।

उन्होंने देखा एक ओर से मदनिका आ रही थी। उसने आज बड़ा शृङ्गार किया था।

मल्लिका ने फेनिला की ओर देख कर इंगित किया और कहा : देवी ! अभिसार करने जा रही है ?

मदनिका निकट आ गई थी। उसने कहा : यहाँ क्रीड़ा ही करती रहोगी ? मदनोत्सव का प्रारंभ करना है। दीपावलि का प्रबंध करना है।

'अरे हाँ !' मल्लिका ने कहा। 'मै तो भूल ही गई थी।'

मदनिका पलाश के फूलों पर लेट गई। उसने कहा : हाय ! कितना थक गई हूँ !

'हेरुक कल्याण करे !' मल्लिका ने हँस कर कहा, 'आज कहीं विश्राम कर लो न ?'

मदनिका हँस दी। दासियाँ चली गईं। मदनिका उठकर राजोद्यान के पश्चिम भाग में जाकर यूथिका मण्डप में लेट गई। उद्यान में आज अन्तरङ्गों की भीड़ थी। अन्तर्वंशिक बात बात पर अभित्वरमाणकों को भेजते थे। अयपुत्र, गूढ़पुरुष, गमागमिक जब इस ओर से उस ओर जाते दौवारिक और दण्डधर उन्हें टोकते।

नगर में नागरक और नागरिक आज महादानिक के साथ व्यस्त थे। आज मालव के अन्य सामंत तथा मण्डलेश भी नगर में महाराज के दरबार में उपस्थित होकर भेंट देने आये थे। आज सौवर्णिक उदात्त का घर आमोद मे गूंज रहा था। चतुष्पथों पर सावत्सरिकों के चारों ओर भीड़ थी। और स्थपति अपनी श्रेणियों को इस समय अवकाश प्रदान करके विषयपति के यहाँ सम्मान प्रदर्शित करने चले गये थे।

विविध वाद्यध्वनि से कान्यकुब्ज गूंज रहा था। देवमंदिरों, मठों, और विहारों से नाना प्रकार की ध्वनियाँ उठतीं और विलीन हो जातीं। पथों पर विलासी फूलों के गजरे फेंक देते। किंतु मदनिका मण्डप में लेटी प्रतीक्षा कर रही थी। देवगुप्त ने प्रवेश किया।

'आ गये ?' मदनिका ने लेटे लेटे आलस से पूछा।

देवगुप्त ठिठक गया। उसने कहा : कोई कह सकता है तुम दासी

हो ! विधाता यदि मिल जाये तो उसकी हत्या कर दूँ। कैसा कुन्द-सा वर्ण है ! उपवन क्या है ? आज तो यहाँ स्वर्ग की अप्सरायें घूम रही हैं।"

'किस राह से आये हो ?' मदनिका ने तनिक मुस्करा कर कहा।

'सिंहद्वार से आया हूँ देवी !' देवगुप्त ने हँसकर कहा।

'तुम्हें भय नहीं लगा ? कोई पहचान लेता तो ?'

'कोई नहीं पहचानता मुझे। सारा नगर दुर्ग और प्रासाद में उमड़ रहा है। दुर्ग का द्वार खुला था।'

'खुला नहीं था, खोल दिया गया है। अबकी बार ग्रहवर्मा ने राज्यश्री के आनन्द के लिये द्वार खुलवा दिया है, जिससे सब नगर-वासी आनंद उठा सकें। दक्षिण के नर्त्तक आये हैं न ? कामरूप की नर्त्तकियाँ आई हैं।'

'और,' देवगुप्त ने कहा, 'शक्ति की आराधना करने वाला देवगुप्त भी श्रीपर्वत से आ गया है। वह तांत्रिक है। आज अपनी सिद्धि करेगा। और तुम मेरी शक्ति बनोगी !'

वह मदनिका के समीप आ गया। मदनिका उठ खड़ी हुई। उसने कहा : ठहरो तुम प्यासे होगे। कुछ ले आऊँ।

वह चली गई।

दूर कहीं कोई बाँसुरी बजाने लगा। फिर सम पर ताल देते हुये कहीं नृत्य होने लगा, चक्रबद्ध नृत्य और बीच बीच में पुरुषों के भारी स्वर को भेद कर जब स्त्रियों का कलकण्ठ प्रतिध्वनित होता, तब ऐसा लगता जैसे पहले स्वर हिमगिरि की भाँति उठता चला जा रहा हो, उठता चला जा रहा हो और फिर एक कलकलनिनादिनी निर्झरिणी उस पर लौट कर गिरने लगती हो।

फिर वीणा के तारों ने कुछ कहा। कहा कि दूर दूर तक पवन ने अंग नर्त्तित किये, झकर जंग, झकर जंग करके वाद्यों पर थाप पड़ी और

रजनीगंधा की-सी मादक अलसाहट तांबे के फूलों से ढँके आमों से टकराई, प्राण तृप्त हो गया और पवन फिर ऐसे चलने लगा जैसे रूप के महासागर पर अगणित बहुमूल्य रत्नों से लदे पोत का काञ्ची से होते हुये सुदूर यवद्वीप तक गीत की सी धारा पर झूमते चले जाते थे। वह कलियों और फूलों को ऐसे झकझोर देता था जैसे सिंहल के निवासियों को दास बनाकर पकड़ते समय चोल उन पर जहाजों मे कशाघात किया करते थे।

देवगुप्त ने देखा उद्यान में एकाएक आलोक-सा छा गया। राज्यश्री और गृहवर्मा थे। गृहवर्मा कह रहा था: देवी! मैंने दुर्ग द्वार खोल दिया है। समस्त प्रजा आज उत्सव के लिये लालायित हो रही थी।

देवगुप्त देखता रहा। फिर उसने बढ़ कर प्रणाम करके कहा: महाराजाधिराज की जय!

राज्यश्री ने पूछा: तुम कौन हो?

देवगुप्त के नयन राज्यश्री के मुख पर जम गये। उसने कहा: महादेवी! एक भाग्यहीन हूँ। जीवनपर्यंत महादेवी के चरणों की सेवा करने का इच्छुक हूँ।

'अभी तुम्हें मर्यादा नहीं आती युवक,' राज्यश्री ने रोक कर कहा, 'स्त्रियों से बात करते समय अपने नेत्र इस भाँति नहीं उठाने चाहिये। नम्र दृष्टि ही पुरुष मर्यादा है।'

देवगुप्त घबरा गया। उसने हाथ जोड़ कर कहा: देवी...भूल हो गई...क्षमा करें।

गृहवर्मा हँसा। उसने कहा: नहीं देवी! क्रोध न करो। तुम्हारी प्रजा के पुरुष तुम्हारे पुत्र हैं।

देवगुप्त ने सिर झुका लिया। राज्यश्री का विक्षोभ हट गया। उसने कहा: युवक! मृदंगवादक प्रतीत होते हो?

'हाँ, महादेवी', देवगुप्त ने उसी भाँति सिर झुकाये हुये कहा।

गृहवर्मा ने काटा : देवी नहीं बादक, माता कहो माता।

देवगुप्त का कण्ठ जैसे सूख गया। उसने सिर झुका कर अत्यन्त कष्ट से कहा : माता।

'उत्सव में आओ,' राज्यश्री ने कहा, 'पुरस्कार प्राप्त करोगे।'

देवगुप्त ने झुक कर कर कहा : जो आज्ञा महादेवी!

मदनिका जब मदिरा पात्र लेकर लौटी उसने देखा देवगुप्त अकेला खड़ा है और क्रोध से दाँत पीस रहा है। उसने अपने हाथों से वहाँ पड़े अनेक फूल भी मसल दिये हैं।

'क्या हुआ?' मदनिका ने कहा, 'बाप रे! मुझे तो राह में गृह-वर्मा और राज्यश्री दिखाई दिये, तुरंत पारिजात की आड़ में हो गई।'

वह बात कहती जा रही थी और मदिरा उड़ेलने लगी थी। देवगुप्त चौंक उठा। उसे ध्यान आया। उसने मुस्करा कर कहा : अच्छा। फिर?

'फिर क्या',—मदनिका ने कटाक्ष किया—'क्यों क्या हुआ?'

'राज्यश्री तो यहाँ भी आई थी।'

'आई थी! उसने तुम्हें देख लिया!'

'क्यों, देखेगी क्यों नहीं? मैं क्या सिद्ध नागार्जुन था जो तुरंत अदृश्य हो जाता?'

'तुम किसके उपासक हो?'

'विष्णु के।'

'देवी के नहीं हो?'

'नहीं।'

'फिर मदिरा कैसे पीते हो?' मदनिका ने चषक को अपने मुख से लगाकर कहा।

'राजा हूँ, मदनिका, क्षत्रिय हूँ। मदिरा के मंत्रों से देवगुप्त स्त्री में अपना मोक्ष प्राप्त करता है।'

मदनिका मदविह्वल थी । उसने हँसकर कहा : धत् ! बड़े धूर्त हो !

१०

धीरे-धीरे रात्रि हो गई ।

दीपमालिका जगमगाने लगी । शुभ्र पाषाणों पर दीपशिखाएँ ऐसी चमक उठीं जैसे बहुमूल्य रेशमी वस्त्र पर स्वर्णाभरण अवशोभित हो उठे । उजाला-सा छा गया ।

दो बार दासी आकर बुला चुकी थी किंतु राज्यश्री का प्रसाधन ही अभी समाप्त नहीं हुआ था । आज जैसे उसे तपस्या का फल मिल गया था । आज उसकी प्रजा आनन्द से पागल हो रही थी । पुराणकार लोमश्रवा के शब्दों में कान्यकुब्ज आज देवताओं को ऐसा लग रहा होगा जैसे स्फटिक खंडों में इन्द्रधनुषी छाया काँप रही हो । जिसे देखो उसी के कान पर कर्णिकार झूल रहा है । जिसे देखो उसी के नयनों में गुलाबी झाँक रही है ।

गृहवर्मा ने उसके चूड़ापाश में नये पुष्प लगा कर कहा : देवी, मुझे भय हो रहा है ।

'क्यों स्वामी ?' राज्यश्री ने उत्कंठा से पूछा ।

गृहवर्मा ने गंभीरता से कहा : एक बार भगवान शिव ने काम को जला कर भस्म कर दिया था, तब उस अनङ्ग की मूर्ति बना कर पूजा होने लगी । अब कहीं फिर रति को देख कर वह जीवित न हो उठे ।

राज्यश्री का उल्लास रोम-रोम में लहराने लगा । अन्तराल में कहीं शङ्ख बजा । मदनिका बुलाने आई थी । देख कर ठिठकी रह गई । नारी के रूप पर नारी मोहित हो गई । उसने राज्यश्री को देखा और उसका अपना रूपगर्व तिल के फूल की भाँति झड़ गया । वह क्षण भर ऐसी दिखाई दी जैसे दीपक के पास पतंगा दिखता है ।

'कौन ?' राज्यश्री ने हट कर पूछा।

'देवी, मैं हूँ दासी मदनिका। नृत्य प्रारम्भ होने की प्रतीक्षा है।'

'आते हैं मदनिका, आते हैं।'

मदनिका बुझे हुए दीप की भाँति लुप्त हो गई। राज्यश्री ने कहा : भगवान ! मेरी आज की रात का आनन्द सदा मेरे नयनों में बसा करे।

'और मैं चाहता हूँ,' गृहवर्मा ने कहा, 'मेरे नेत्र तुम्हें आज ही के रूप में देखते रहें।'

मृदंग की थाप सुनाई दी।

गृहवर्मा ने कहा : चलो देवी !

कामपूजा का आयोजन पूर्ण हो चुका था। कामदेव की अत्यंत सुन्दर मूर्ति के संमुख युवतियाँ नृत्य करने लगी थीं। उस भरी सभा में गृहवर्मा और राज्यश्री स्वर्ण सिंहासन पर जाकर बैठ गये।

देवगुप्त मृदंग बजा रहा था। राज्यश्री उसे नहीं देख सकी, किन्तु उसके नेत्र उस पर गड़ गये। आनन्द का उच्छ्वरित प्रवाह प्रासाद के विराट प्रांगण पर झूमता, कामपूजा के गंधित समीरण पर थिरकता वाद्यों में प्रतिध्वनित होता हुआ, असंख्य प्रजा के नेत्रों में विस्मय से फैलता, यौवन की मादकता से हृदयों को एक टीस देता हुआ आकाश की ओर उठने लगा। उद्यान के वृक्षों की स्तब्धता ने सबका ध्यान लाकर केन्द्रित कर दिया।

दक्षिण के नर्तक ने अनुपम नृत्य किया। स्वस्तिवाचन के उपरांत जब उसके ताल पर होते नृत्य की अंगभंगियों ने सबको मोहित कर लिया, कामरूप की सुन्दरियाँ नृत्य करने लगीं। आज जैसे नृत्य के रूप में बसंत साकार तो उठा था।

भट्ट ने बीच में उठ कर गाया कि समस्त दृश्य स्वर्ग का-सा है जिसमें गृहवर्मा और राज्यश्री इन्द्र और शची पौलोमी जैसे हैं। तरुण कवि

मराल ने कुछ श्लोक सुनाये जिनमें विलास की गन्ध थी। सभासदों ने उन्हें अत्यन्त रुचिपूर्वक सुना। शृङ्गार की ये स्फुट उक्तियाँ इन दिनों अत्यन्त प्रिय थीं और फिर नृत्य होने लगा।

मदनिका राज्यश्री पर चँवर डुला रही थी। हठात् उसके हाथ से रत्नजटित चँवर छूट कर गिर पड़ा। राज्यश्री चौंक उठी। उसने कहा : क्या हुआ मदनिका?

मदनिका के उत्तर देने के पूर्व ही लगा कुछ लोग उद्यान के वृक्षों के अंधकार में भाग रहे हैं और फिर कुछ करुण चीत्कार सुनाई दिये।

हाय! हत्या! मार डाला! चोर! चोर! पकड़ो! पकडो!

स्त्रियों के नेत्र आतंक से फैल गये। ग्रहवर्मा उठ खड़ा हुआ। राज्यश्री भी उठ गई। समस्त सभा उठ खड़ी हुई। नृत्य रुक गया, किन्तु वादक का मृदंग अभी नहीं रुका। उस नीरवता में वह मृदंग निनाद अत्यन्त वीभत्स-सा लगा।

'वादक!' अंतःपुर महामात्र ने चिल्ला कर कहा और वह अंधकार की ओर चल पड़ा।

वादक का हाथ रुक गया। उसने मुड़ कर पूछा : प्रभु!

इसी समय एक व्यक्ति भागता हुआ आया और ग्रहवर्मा के चरणों पर आकर गिरा। उसने कहा : देव......देव......

'क्या हुआ?' ग्रहवर्मा ने गम्भीरता से पूछा।

'देव......सर्वनाश हो गया, स्थाण्वीश्वर में......'

राज्यश्री अधीर हो गई। उसने आतुरता से कहा : क्या हुआ चर, शीघ्र कहो।

चर कुछ स्वस्थ हुआ। उसने कहा : देव! स्थाण्वीश्वर के महाराज प्रभाकरवर्द्धन का स्वर्गवास हो गया......

राज्यश्री ने सुना। उसे लगा वह कुछ नहीं सुन रही है। प्रिय पिता

का मुख उसके नयनों में काँपा... ..और राज्यश्री को लगा सारा संसार घूम रहा है. घूम रही है यह निखिल सत्ता......

गृहवर्मा ने उसकी मूर्छित देह को सँभाल कर स्वर्ण के सिंहासन पर लिटा दिया। मदनिका ने राज्यश्री का सिर अपनी जंघा पर रख लिया और वह व्यजन करने लगी। दासियों ने पट्ट को घेर लिया।

और अकस्मात ही उद्यान के गहनांधकार में प्रचण्ड स्वर से शंख बजने लगा। लगा कुछ शस्त्र खड़खड़ा रहे हैं। और फिर मारो, मारो का भयानक नाद सुनाई दिया।

गृहवर्मा ने आकाश की ओर देखा। आज तो मंगल बेला थी।

'कामकंदला,' उसने पुकार कर कहा, 'कंचुक कहाँ है?'

'कंचुक !' कामकंदला का गला भय से रुँध गया।

वृद्ध कञ्चुक ने वेग से प्रवेश किया। उसके शरीर पर अनेक घाव थे जिनसे रक्त बह रहा था। उसने कठिनाई से कहा : महाराजाधिराज! किसी शत्रु ने हमें घेर लिया है। अंतःपुर महामात्र की हत्या......

उसने रक्त उगला और वह वहीं कटे वृक्ष की भाँति गिर गया।

गृहवर्मा आतुर होकर बढ़ा।

'देव !' कामकंदला चिल्लाई, 'अंधकार में निःशस्त्र न जाइये......'

किन्तु चीत्कार बढ़ रहे थे। दासियाँ भागने लगीं। मदनिका राज्यश्री के पास अकेली रह गई। इसी समय गृहवर्मा का शब्द सुनाई दिया : आह ! नीच तू.........

वाक्य पूरा नहीं हुआ। किसी के धड़ाम से गिरने का शब्द हुआ और मृदंगवादक ने रक्त से चुचाते खड्ग को लेकर प्रवेश किया। उसने मुस्करा कर मदनिका से कहा : एक शत्रु तो मारा गया। अब इसका अभिमान और देखना है। 'ला तेरे पति का रक्त......' उसने राज्यश्री के मूर्छित शरीर से कहा- 'तेरे भी लगादूँ।'

देवगुप्त ने राज्यश्री के वस्त्र से अपने खड्ग को पोंछ दिया।

मदनिका हँस दी। उसने कहा : आइये स्वामी ! मैंने प्रबन्ध कर रखा है।

भयानक कोलाहल हो रहा था। सैनिक दासियों को पकड़ने लगे थे जिनके चीत्कार से दिगन्त थर्राने लगा था। हत्याओं से उद्यान लाल हो चला।

देवगुप्त ने राज्यश्री को उठा लिया और मदनिका के पीछे-पीछे चलने लगा। दुर्ग की प्राचीर में एक स्थान पर एक रस्सी बँधी थी। देवगुप्त ने राज्यश्री को बाँयें हाथ से पकड़ लिया और मुख में खड्ग दबा कर वह दाँयें हाथ से रस्सी पकड़ कर झूल गया। फिर धीरे-धीरे उतरने लगा।

उसके उतर जाने पर मदनिका भी उतरने लगी।

बाहर उपरिक उपगुप्त दो घोड़े लिये खड़ा था। देवगुप्त एक अश्व पर राज्यश्री को लेकर सवार हो गया। उसने खड्ग मुँह से निकाल कर दाँये हाथ में लेकर कहा : उपरिक ! मैं मालव जा रहा हूँ। कान्यकुब्ज से मौखरियों का प्रातःकाल तक नाम भी मिटा देना।' फिर हँस कर कहा : 'महादेवी मदनिका उतर रही हैं। उन्हें सिंहासन पर बिठा देना।'

ऍड़ लगते ही तुरंग उछला और फिर वेग से भाग चला। मदनिका जब उमग से भरी हुई अश्व के समीप आई उसने देखा देवगुप्त के स्थान पर उपरिक उपगुप्त खड़ा था और उसके हाथ में खड्ग चमक रहा था। मदनिका भय से पीछे हट गई। उपरिक ने मदनिका को बलपूर्वक पकड़ लिया और कहा : उपरिक उपगुप्त की हत्या चाहती थीं महादेवी !

मदनिका की जीभ सूख गई। उसने कुछ कहने का यत्न किया किंतु वह कह कुछ भी नहीं सकी। उसने भयातुर नेत्रों से देखा। वह काँप रही थी। उपरिक ने उसे स्नेह से अपने आलिङ्गन में बाँध लिया। वह कुछ स्वस्थ हुई।

उसने कहा : नहीं तो, किसने कहा ?

'देवगुप्त को जानती हो ?'

मदनिका की आँखों के सामने फिर तितलियाँ नाचने लगीं। धोखा ! भयानक धोखा !

उपगुप्त कठोरता से हँसा। उसने कहा : सुनती हो। दुर्ग विजय हो गई। अब तुम्हें पट्टमहादेवी बनाना रह गया है।

मदनिका थर्रा उठी। उपगुप्त ने आलिंगन को दृढ़ करते हुये कहा : 'उपरिक नहीं चाहिये, सीधे महाराजाधिराज चाहिये न ! अनगिनत पुरुषों की अंकशायिनी दासी ! ले.........

और उसका वह खड्ग मदनिका के पेट में झुक से घुस गया। मदनिका चिल्ला कर गिर गई और मूर्छित हो गई। उपगुप्त ने उसी के वस्त्रों से अपने खड्ग को पोछा और अश्व पर चढ़ गया। उस समय मालव के रणोन्मत्त विजयी सैनिक पटहनिनाद से दुर्ग के पाषाणों को कँपा रहे थे।

उपरिक उपगुप्त के चले जाने पर शृगालों ने मदनिका को घेर लिया और उसकी साँस छूटने की प्रतीक्षा करने लगे।

११

स्थाण्वीश्वर में हलचल मच रही थी। युवराज राज्यवर्द्धन रणयुद्ध से लौट आये थे। आखेट में समय व्यतीत करने वाले कुमार हर्षवर्द्धन चिंता में मग्न थे। मौखरि वंश का यह प्रतारणा भरा अंत महाराज प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु की अग्नि में आहुति की भाँति भड़क उठा। राज्य पर घोर विपत्ति आई थी। राज्यश्री के विषय में कोई सूचना नहीं मिल रही थी। कुछ लोगों में उड़ती हुई बात थी कि मालव देवगुप्त ही राज्यश्री को उठा ले गया है। इस संवाद से हर्षवर्द्धन उन्मत्त दिखाई

दे रहा था। उस तरुण के नयन क्रोध और शोक से लाल हो रहे थे। अन्तपाल की सूचना थी कि रात्रि के समय उसके चरों ने कुछ लोगों को मालव की ओर कान्यकुब्ज से भागते देखा था। आटविकों के पास भी सवाद भेजा जा चुका था। द्राङ्गेशों के पास दूत जा चुके थे।

कम्पनोद्ग्राहक सेना में संगठन कर रहे थे।

'अयपुत्र !'

कुमार हर्षवर्द्धन ने सिर मोड़ कर देखा। भ्रातृजाया चयनिका !

कुमार सादर खड़ा हो गया। उसने धीरे से कहा : देवी !

चयनिका राज्यवर्द्धन की पत्नी थी। उसके पीछे इस समय छत्र-छायिक खड़ा था। दौवारिक ने आकर अभिवादन करके कहा : कुमार ! कुमारपादीय भट्टारक सेनापति भाण्डी दर्शनाभिलाषी हैं।

एक दंडधर को इंगित करके चयनिका ने कहा : सेनापति ! महा-बलाधिकृत आ गये कुमार ! अभ्यर्थना को चलो। सभा का समय हो गया।

कुमार चुपचाप उसके पीछे-पीछे चल पड़ा।

राजप्रासाद में अभी रोना धोना कम नहीं हुआ था। महाराज प्रभाकरवर्द्धन की मृत्यु से पुष्यभूमि वंश एकबारगी हिल गया था। पताकाएँ झुक गई थीं। ब्राह्मण श्राद्ध मे लगे थे, भिखारी भीख और दान प्राप्त करने में। बौद्ध मठों में भिक्षु शाति के लिये प्रार्थना कर रहे थे।

सबसे बड़ी समस्या थी राज्यवर्द्धन की। वह पिता के सिंहासन पर बैठने को तत्पर नहीं था। कुछ लोगों का कहना था कि वह संन्यास लेना चाहता था परन्तु चयनिका इस बात पर विश्वास नहीं करती थी। वह इसीलिये पति से मिल कर आई थी। राज्यवर्द्धन सन्यास नहीं लेना चाहता था। वह राज्य के प्रति विरक्त अवश्य था। निरंतर हूणयुद्ध करते-करते वह थक गया था। हूण बर्बर थे जो यहाँ बस चुके थे। उनमें

दो सौ वर्षों के पारस्परिक आदान-प्रदान तथा विवाहादि से काफी नम्रता आ गई थी। किन्तु नये हूण अपने पूर्वजों से कम नहीं थे। अधिकाश गुर्जर, जाट, हूण, आभीर तथा ऐसी ही जातियाँ यमुना के पश्चिम में वज्रभूमि के उत्तर-पश्चिम में फैली हुई मरुभूमि तथा पहाड़ियों में जाकर बस गई थीं। उन्होंने धीरे-धीरे ब्राह्मणों को अपना पूज्य बना लिया था। लगभग ४०० वर्ष पूर्व कनकसेन ने अपने को राजपुत्र घोषित कर दिया था। वह सूर्य वंशी बनता था। किंतु वह इतना छोटा शासक था कि उस पर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। देवी चयनिका यही संवाद कुमार हर्षवर्द्धन को सुनाने आई थीं कि राज्यवर्द्धन संन्यासी बनना नहीं चाहता।

कुमार हर्षवर्द्धन की माता का पहले ही देहान्त हो चुका था।

चयनिका ने कहा : कुमार! तुम अब बालक नहीं हो।

हर्ष ने कहा : बालक! सिंह का आखेट करने वाला तो बालक नहीं होता?

'फिर राज्य की गतिविधि पर दृष्टि नहीं रखते?'

'भैय्या के रहते मुझे आवश्यकता?'

देवी चयनिका प्रसन्न हो गई। उसने स्नेह से कहा : देवर! तुम्हारे भैय्या विचलित हो गये हैं।

'क्यों?'

'एक दिन गुप्तों का अंतिम वीर स्कंदगुप्त जैसे हूणों से युद्ध करते समय विरक्त हो गया था, वैसे ही।'

'यह कैसे भाभी? स्कंदगुप्त के समय में उसके यहाँ गृहकलह था। यहाँ तो वह नहीं।'

'तो तुम जाकर समझाते क्यों नहीं?'

'मै जाऊँगा,' कुमार हर्ष ने कहा।

सेनापति भाण्डी अभी तक चुप था। अब उसने कहा : इस

समय हूणयुद्ध से भी अधिक आवश्यक है मालव की शक्ति को कुचलना। देवगुप्त का दुस्साहस निरंतर बढ़ता जा रहा है। यह अपने को गुप्त समझता है, और फिर से गुप्त साम्राज्य स्थापित करना चाहता है।

कुमार हर्षवर्द्धन ने अचानक ही खड्ग पर हाथ रख कर कहा : पुष्यभूति वंश की पताका उठा दो। प्रजा में घोषणा करवा दो, कल प्रातःकाल महाराज राज्यवर्द्धन का पट्टाभिषेक होगा। कर्मसचिव को सूचना दो आवश्यक प्रबंध करे। करणिक को आज्ञा दो कि महामुद्रा कल तक परिवर्त्तित हो जाये।

एक दासी सुन रही थी। उसने दंडधर से कहा। दंडधर ने क्षत्तृ से। क्षत्तृ ने प्रतिनर्त्तक से। और फिर संवाद कोट्टपाल के पास पहुँचा। उसने नगर में घोषणा करा दी। दल के दल सुनते और विवाद करते।

प्रदेष्टृ ने नगर के प्रबंध में हाथ लगा दिया। पट्टकिलों से संवाद नायकों तक पहुँचा फिर दूरस्थ निहेलपतियों ने सुना। और सायंकाल तक प्रासाद में महादानपति, महाधर्माधिकरणिक, महापाश्वकुलिक, महाप्रतीहार, महाप्रमत्तवार, महामुद्राधिकृत, महाश्वसाधनिक, महाराणक, तथा अनेक सामंत आ आकर एकत्र होने लगे।

सूपकारपति की तो कठिनाई बढ़ गई। इतने लोगों का भोजन उसे ही बनवाना था। दास दासियों की चहल-पहल से एक बार वह उदासीनता मिट गई। रात्रि होते-होते सैनिकों ने जय जयकार करना प्रारंभ कर दिया। उसके बाद रणवाद्य बजने लगे।

दूसरे दिन जब राज्यवर्द्धन सिंहासन पर बैठा उसके चरणों पर लाट सुराष्ट्र, सौवीर, कुन्तल, पुलिन्द, शबर, मूतिब, आभीर तथा कुलिन्द जातियों ने अपने उपहार रख दिये। दिगंत कंपाने वाले पटह, भेरी तथा तूर्य्यनाद को हिलाते हुए ब्राह्मणों का गंभीर पाठ उठा और स्थाण्वीश्वर की वीथियों में मदिरा के पात्र उलटने लगे। वेश्याओं और नर्त्तकियों के मौन मंजीर फिर बजने लगे।

लोगों में विशेष बात इसकी थी कि राज्यवर्द्धन जब सिंहासन पर आरूढ़ हुआ उसने पिता की रत्नजटित कटवाल लेकर शपथ ग्रहण की कि वह मालव देवगुप्त को जीवित जला देगा।

१२

महाराजाधिराज राज्यवर्द्धन स्थाण्वीश्वर के वीरों को लेकर मालव पर आक्रमण करने चल दिया। सेनापति भाण्डी एक लक्ष की सेना लेकर उनके साथ गया। सेनापति स्कंदगुप्त और सेनापति सिंहनाद कुमार हर्षवर्द्धन के साथ स्थाण्वीश्वर की रक्षा करने को रह गये। परममाहेश्वर परम वैष्णव भट्टारक नरेन्द्रगुप्त शशांक गौड़नरेश ने इसी समय राज्यवर्द्धन के पास मैत्री प्रगट करने को अपना दूत भेजा। राज्यवर्द्धन ने स्वीकार कर लिया। नरेन्द्रगुप्त ने मालव पर आक्रमण करने के लिये प्रस्थान कर दिया। गौड़नरेश ने देवगुप्त को छल से पराजित करने का प्रस्ताव रखा। दुर्गपाल और दिविरपति ने संवाद राज्यवर्द्धन के जाने के बाद अत्यंत गुप्त रखा।

यह संवाद कि मालव पर राज्यवर्द्धन एक लक्ष सैनिकों को लेकर चढ़ा आ रहा है, देवगुप्त से छिपा नहीं रहा। उसने अपना कार्य निर्धारित करने का विचार किया।

राज्यश्री जिस प्रासाद में रखी गई थी वह गांधारशैली का बना हुआ था। आज उसे यहाँ पहुँचे कई दिन हो गये थे। प्रासाद चारों ओर से सैनिकों से सुरक्षित रहता था। वैभव और विलास के वहाँ प्रचुर साधन उपलब्ध थे, किंतु राज्यश्री उदास ही बैठी रहती। वह अभी तक ठीक से सोच समझ नहीं पाई थी कि यह सब हो क्या गया ?' वह एकांत में बैठी-बैठी सोचती कि क्या जो हुआ है, वह सब उसी के साथ हुआ है। पहले दिन उसे यह भी ज्ञात नहीं हुआ कि वह कहाँ

थी ? उसकी सुश्रूषा-सेवा में कौन लगा है क्योंकि वहाँ सब गूँगे बहरे सेवक थे। परतु तीसरे दिन वहाँ एक दासी आई जिसने बताया कि ग्रहवर्मा मारा गया और वह अब मालव देवगुप्त की बंदिनी थी—उसकी, जो वसंतोत्सव के दिन मृदंगवादक बन कर उसे उसके प्रासाद से उठा लाया था। राज्यश्री ने आश्चर्य से सुना, फिर वह रोई। फूट-फूट कर रोई।

दासी का नाम मित्तकाली था। साँवली थी, किंतु थी युवती और उसके लंबे नयनों मे एक चमक थी। उसके बाल घुघराले थे और सुडौल शरीर था।

दिन का आलोक तिरोहित हो जाता, फिर रात्रि का अंधकार आता, और असंख्य दीपाधार जल उठते, फिर शलभों की मृतदेह पड़ी रह जाती। राज्यश्री को लगता, यह जीवन बस ऐसा ही था। इसके दिन में जब रात होती है तो कोई पथ नहीं सूझता। फिर मनुष्य अपनी वासना को जला कर अपने प्राणों को उस पर जला देता है। प्रातःकाल काल आकर समेट कर बाहर फेंक देता है।

मित्तकाली ने अनेक स्त्रियों के साथ सामंतों को इसी प्रकार बलात्कार करते देखा था किंतु राज्यश्री के अपरूप सौंदर्य और गाभीर्य ने उसके हृदय में एक टीस सी जगा दी थी। कुछ दिन तक वह उसे चुपचाप देखती रही किंतु फिर उसे कौतूहल हुआ।

उसने राज्यश्री के चरणों के पास बैठ कर कहा : देवी ! आपका दुख देख कर मुझे भी दुख होता है।

'जिसका भाग्य ही दुखमय हो', राज्यश्री ने उदासी से कहा, 'उसके लिये तू क्यों दुखी होती है ?'

'मुझे आपका मुख देख कर दया आती है।'

दया ! राज्यश्री का हृदय कचोट उठा। क्या वह इतनी दयनीय थी कि एक दासी को उस पर दया आ सकती थी ?

'देवी', मित्तकाली ने कहा, 'स्त्री का भाग्य ही इतना है। इसमें दुख करने से लाभ ही क्या है ? स्त्री तो पुरुष की वासना तृप्त करने के लिये ही पैदा हुई है।'

राज्यश्री ने देखा मित्तकाली के नयनों में एक गहरी वेदना अपनी काली छाया डालने लगी थी। उसने कुछ नहीं कहा। वह निर्निमेष दृष्टि से दासी के मुख को देखती रही।

'आप सुन्दरी हैं आर्ये,' मित्तकाली ने कहा, 'महाराज से विवाह कर लीजिये, आपके दुखों का अंत हो जायेगा।'

'दासी !' राज्यश्री ने फूत्कार किया।

मित्तकाली ने उसके पाँव पर हाथ रख कर कहा : इसलिये नहीं कहती कि उस लंपट से मुझे स्नेह है। परंतु घृणा करने से ही क्या समस्या का अंत हो जाता है ?'

राज्यश्री का क्रोध मिट गया।

मित्तकाली कहती गई : यह त्रेता नहीं है देवी, कलि है। अब रावणों का ही प्रकोप और बाहुल्य है। इस युग में अयोध्या के रामचंद्र जैसे राजा नहीं हैं।

राज्यश्री रोने लगी। उसका राम मर चुका था। मित्तकाली ने कहा : धैर्य धरो देवी। रोने से तो काम नहीं चलेगा !

राज्यश्री का रोना कठिनता से ही रुक सका। मित्तकाली ने एक गहरी साँस ली और वह धीरे-धीरे कहने लगी : जब से आँख खुली है, यही देखती आ रही हूँ। वृद्ध कञ्चुक के अतिरिक्त अंतःपुरों में स्त्रियों की यही दुर्गति है। और फिर दासी ! दासी तो मनुष्य ही नहीं होती। अनेक स्त्रियों को देखा है, सब ही अंत में पराजित हो जाती हैं, जीवन का मोह बड़ा भयानक होता है देवी।

मित्तकाली की चमकदार आँखों में पानी भर आया और वह स्वयं पोंछ कर कहने लगी : 'मुझे सामंत देवक ने विवाह के बाद पकड़वा

कर मेरी सुहागरात को बुलवा लिया था। मेरा पति बातें बनाता था। जब वह यह न देख सका तो विरक्त होकर भिक्षु हो गया। जब अंतःपुर से मैं निकाल दी गई तो एक वृद्धा मुझे मिल गई। उसके साथ मैं उसके घर चली गई। वृद्धा का पुत्र चीनाचार क्रम का उपासक था। वे लोग हाथ मुँह धोकर समझते हैं कि स्नान कर लिया और वामा उनकी शक्ति है देवी। उसकी याद आते ही लज्जा और जुगुप्सा से मेरा हृदय काँप उठता है।

मित्तकाली सिहर उठी। वह कहती गई: वहाँ से भाग कर मैं कुछ दिनों एक हूण के पास रही। था बर्बर, किंतु वहाँ मैं अधिक स्वतंत्र थी। उसके बाद मुझे पति का पता चला। उससे मिली तो मिल कर प्रसन्न हुआ। कुछ भी हो वह पति था। उसने मुझे भिक्षुणी बनवा दिया। बाद में जब रात हुई तो वह मुझे श्मशान ले गया। उफ़! देवी! कितनी जघन्य क्रिया थी वह···शव वहीं पड़ा था···हम ऊपर बैठे मदिरा पी रहे थे, वह वज्रयानी था···

मित्तकाली जैसे थर्रा उठी। 'मैंने उससे विहार छुड़वा दिया', वह कहती रही, 'फिर हम गृहस्थों की भाँति रहने लगे। यव द्वीप से ताम्रलिप्ति होता हुआ जो जहाजों से व्यापार चलता था, उसके लिये मेरा पति एक श्रेष्ठि का सेवक हो गया और माल पहुँचाने लगा। कुछ दिन सुख से व्यतीत हुए। परंतु मेरे पति की आदत बिगड़ चुकी थी। वह फिर वेश्याओं में फँस गया और एक दिन अपनी साधना के नाम पर एक उत्कल स्त्री को घर ले आया। वह स्त्री वशीकरण आदि सिद्धि किया करती थी। एक दिन मैंने देखा वह गधे पर बैठ कर आधीरात को अमावस्या के अंधकार में समस्त आभूषण पहने नग्न होकर श्मशान चल दी।' 'देवी', मित्तकाली का स्वर भर्रा गया, 'मैं डर कर वह घर छोड़ आई और फिर इस प्रासाद में दासी हो गई। यहाँ मैं सुखी हूँ। यहाँ मेरे एक पुत्र हुआ, मर गया, मर जाने दो, उसके

पिता का भी नाम मैं नहीं बता सकती।' मित्तकाली गम्भीर हो गई ऐसी गम्भीर जैसे पावस के बादल घुमड़ कर मौन हो जाते हैं। फिर उसने धीरे से कहा : 'सुना है मेरे पति आजकल एक डोम्बी से साधना कर रहे हैं, कहते हैं शून्य समाधि प्राप्त करने का यह श्रेष्ठतम पथ है, और गङ्गा स्नान से भी पवित्र है'''मित्तकाली हँस दी। उसका हास्य साकार घृणा बन कर घुट घुट कर छटपटाने लगा। उसके नेत्रों में आँसू ऐसे चमकने लगे जैसे मथुरा के देव मंदिरों के घाट पर से देखते समय आधीरात को दूर दूसरे तीर पर यमुना के जल में नौकाओं के दीप ऊपर जलते हैं, नीचे जल में प्रतिबिंबित होते हैं और फिर सिकता, दूर दूर तक सिकता फैल जाती है, शांत नीरव अर्द्धरात्रि की सनसनाहट में, व्याप्ति में'''।

राज्यश्री सुन रही थी। इतना विचित्र है यह संसार!

मित्तकाली उठ कर चली गई। राज्यश्री अकेली सोचती रही। एकाएक एक कर्कश हास्य से उसका ध्यान टूट गया। उसने देखा एक वामन कह रहा था : देवी की जय! मैं विष्णु का अवतार हूँ, परंतु यह विदूषक मुझे देख कर हँसता है।

एक नपुंसक स्त्री वेष में आगे बढ़ आया। उसने हाथ नचा कर कहा : महादेवी का प्रताप दिगंतों में फैले। मैं अर्जुन का अवतार हूँ। तब अर्जुन ऊर्वशि के शाप से नपुंसक हो गये थे, मैं अपनी प्रिया के शाप से ऐसा हो गया हूँ। देवी, मैं नृत्य बहुत सुन्दर करता हूँ।

उछल कर एक व्यक्ति आगे आया और उसने अत्यंत उपहासास्पद ढंग से हाथ-पाँव चलाकर कहा : देवी! दोनों ने 'झूठ कहा। वास्तव में यह गणेश का मूषक है और यह सुन्दरी मेरी पत्नी है''''।

कह कर उसने नपुंसक का हाथ पकड़ लिया और एक टाँग पर नाचने लगा। वह विदूषक था।

राज्यश्री का मन घृणा से मिचलाने लगा। क्या यही है राज-

प्रासादों का वैभव! वह क्रोध से उठी और उसने चिल्ला कर कहा : निकल जाओ। यहाँ से निकल जाओ। नीच! जघन्य प्राणी!

तीनों ने अवाक् दृष्टि से देखा। विदूषक बैठ कर रोने लगा।

नपुंसक ने आँखें नचा कर कहा : क्यों रोते हो मेरे प्राण?

'देवी', विदूषक ने हिचकियाँ लेकर कहा, हँसती नहीं। प्रभुवर्ग यदि हँसेगा नहीं तो मैं खाऊँगा क्या?' उसका रोना बढ़ गया। राज्यश्री का क्रोध बढ़ गया। उसने पट्टिका पर रखी वीणा को उठा कर उन पर वेग से फेंका। वीणा वामन के सिर पर लगी। वह लुढ़क कर चिल्लाया। और फिर तीनों वहाँ से भाग चले।

राज्यश्री उनके जाने के बाद फूट-फूटकर रोने लगी। मित्तकाली लौट आई। उसने देखा और उसके अस्त-व्यस्त केशों पर हाथ फेर कर कहा : देवी!

राज्यश्री ने सिर उठा कर देखा। मित्तकाली प्रसन्न थी। वह उसकी प्रसन्नता का कारण नहीं समझ सकी।

मित्तकाली ने कहा : देवी! प्रासाद के विलास और कौतुक को देख कर रोना तो अच्छा नहीं होता?

'यह कौतुक है?' राज्यश्री ने फूत्कार किया।

'और क्या?' मित्तकाली हँसी। 'पुरुष का आनंद इसी में तो है।'

राज्यश्री ने समझा। मित्तकाली का हास्य उपेक्षा की चरम अभिव्यक्ति थी। मित्तकाली ने धीरे से कहा : देवी! सब झूठ है, सब ढोंग है। मै तो मारिष चारवाक से बढ़ कर किसी को नहीं समझती। लोकायतों की साधना सबसे सहज है।

'लोकायत!' राज्यश्री ने कहा, 'वे क्या भोगी नहीं हैं?'

'भोग तो आनंद है देवी', मित्तकाली ने कहा, 'किंतु भोग भोग के रूप में ही तो आनंद है, अन्यथा उसे ठेलने का प्रयत्न कितना जघन्य है?'

मित्तकाली हँस दी। राज्यश्री ने सिर उठा कर कहा : यह भी झूठ है, भोग ही मनुष्य के दुख का प्रारंभ है।

किंतु मित्तकाली हँसती रही। उसने कहा : दासी का धर्म यह नहीं कहता।

राज्यश्री ने देखा मित्तकाली के मुख पर चमक नहीं थी। उसका सांवला मुख इस समय अत्यन्त करुण था, जैसे वैद्य का कोई कड़ुआ कषाय पीकर रोगी स्वास्थ्य लाभ की आशा से अपने मन को कड़ा करके भविष्य के सुख की आशा में अपने को भुला रहा हो।

बहुमूल्य कालीन पूरे प्रकोष्ठ में बिछा हुआ था। अस्त-व्यस्त रेशमी वस्त्र पहने राज्यश्री उसमें घूमने लगी। वह पिंजरे में फँसे पक्षी की भाँति छटपटा रही थी। अभी उसके शरीर पर आभूषण शेष थे। बड़ी कठिनता से उसने कई दिन बाद थोड़ा सा कुछ अन्न ग्रहण किया था। इस समय उसे घर की याद आई। वह अपने अतीत को ज्यों-ज्यों याद करती उसके भीतर वेदना की भाफ खलबलाने लगती। सब कुछ दुखदायी था, जैसे कमल सो गये थे, अब पङ्क का समुद्र उमड़ने लगा था। फिर उस पङ्क पर कोई प्राणी उड़ा। वह चमक रहा था। उसके शरीर पर अस्थियों का सत् लग रहा था। क्या वह केवल पटबीजना था।

राज्यश्री सोचने लगी। किसी प्रकार इस बंदी जीवन का अंत करना होगा। इस यातना से मुक्ति प्राप्त करनी होगी। कहाँ जाना होगा? क्या करना होगा। यही सब उसके भीतर चक्कर लगाने लगा।

मित्तकाली ने पाँव फैला दिये और राज्यश्री के पलंग के नीचे कालीन पर ही सो गई। राज्यश्री का घूमना बंद नहीं हुआ।

१३

देवगुप्त ने शैय्या पर अध लेटे ही कहा : हाँ तो फिर क्या हुआ?

वामन अधीर स्वर से रोने लगा। नपुंसक देवगुप्त के चरण दबाने लगा और विदूषक मूर्ख मुद्रा में खड़ा हो गया।

'रोता क्यों है ?' देवगुप्त ने कहा। सारिका और हलाहला नामक दासियाँ आश्चर्य से देखने लगीं।

विदूषक ने कहा : देव वह तो डाकिनी है। उसने वामन के सिर पर वीणा फेंक कर मारी।

देवगुप्त बैठ गया।

'अच्छा !' उसके मुख से निकला।

नपुंसक ने हाथ से सांपिन बना कर कहा : ऐसे फुफकारती है, ऐसे......

उपरिक उपगुप्त राज्यवर्द्धन का सामना करने चला गया था। नगर में जीवन भय से आक्रांत था। श्रेष्ठि अब पुष्यभूतियों की विजय की कामना करने लगे थे। कुछ दिन जब एक राजकुल शासन कर लेता था तो लोगों को उसमें बुराइयाँ दिखना प्रारंभ हो जाती थीं। कारण होता था शासक की निरंकुशता। शासक के साथ अनेक कथाएँ जुड़ जाती थीं। फिर लोग उस राजकुल से भाग प्राप्त करने को दूसरे किसी राजकुल की चाहना करते थे। और फिर वही चक्र चलता था। जब कोई अच्छा राजा होता था, तो उसके गुण प्रजा पीढ़ियों तक याद रखती थी। देवगुप्त से बहुत से लोग असंतुष्ट थे। देवगुप्त इस समय क्षण भर अपनी चिंता को स्त्रियों के स्पर्श से भुलाने अंतःपुर आया था। उसे वामन की अवस्था देखकर हँसी आ गई। वह हँसा और जी खोल कर हँसा। फिर उसे राज्यश्री की याद आई। उसकी अभिमान भरी छवि उसके नेत्रों में घूमी। फिर उसे क्रोध आया और उसकी इच्छा हुई उसका दर्प चूर्ण करने की। और यह विचार आते ही उसके मस्तिष्क में उसके रूप की बिजली कौंधने लगी। देवगुप्त आहत सा उठ खड़ा हुआ। सामंतों और राजाओं में स्त्री और भूमि के लिए ही तो युद्ध होते थे। स्त्रियाँ अधिकांश उन्हीं पुरुषों को पसंद करती थीं, जो

उन्हें दिन दहाड़े तलवार के बल पर लूट ले जाने की शक्ति रखते थे। फिर यह कौन मूर्खा है जो पातिव्रत का ढोंग रच रही है।

देवगुप्त ने वातायन से देखा दूर परिखा, नगर, उद्यान और ग्राम पथ के पार स्कंधावार की पताकाएँ पवनोद्धत थीं। वह अलिंद, फिर प्रकोष्ठ, फिर प्रांगण और फिर सिंहद्वार पार करके घोड़े पर भाग चला और बांई ओर के प्रासाद में जिस समय राज्यश्री के द्वार पर उतर कर दंडधरों और दौवारिकों का अभिवादन स्वीकार करता हुआ भीतर के प्रकोष्ठ मे पहुँचा उसने देखा राज्यश्री रो रही थी।

उसके घुसते ही राज्यश्री आहत सर्पिणी की भाँति उठ खड़ी हुई। उसकी आँखों में भय नहीं था, वैभव की सी दमक थी। देवगुप्त का कामुक हृदय एक बार भीतर ही भीतर थर्रा गया। वह अप्रतिभ-सा देखता रहा।

द्वार पर श्वेत केशा बड्ढेसी दिखाई दी। उसके पीछे तीन पहलव दासियाँ। उनके पीछे चार यवन दासियाँ थीं। पहलव दासियों के हाथ में खड्ग थे। यवन दासियाँ केवल छोटी अंगिया और ऊँचे लँहगे पहने थीं। उनके सुडौल गौर मांसल कंधों पर उनके कत्थई केश फहरा रहे थे। पश्चिम द्वार पर इस समय तीन काली दमिल स्त्रियाँ खड़ी दिखाई दीं।

देवगुप्त मुस्कराया।

श्वेतकेशा बड्ढसी ने मृदुल स्वर के कहा : देवी! महाराज को प्रणाम करो।

राज्यश्री खड़ी रही।

पहलव दासी ने आकर राज्यश्री के बांई ओर स्थान ग्रहण किया।

राज्यश्री ने चकित हरिणी की भाँति देखा और झपट कर पहलव स्त्री के हाथ से खड्ग छीन लिया। देवगुप्त ठठा कर हँसा।

इसी समय बाहर कहीं गम्भीर निनाद करता हुआ घंटा बजने

लगा। मित्तकाली ने घबरा कर प्रवेश किया। वह एक दम बोल पड़ी: 'आर्य्य बाभ्रव्य कह रहे थे.....' फिर देवगुप्त को देख कर वह घुटनों पर बैठ गई जैसे वह सम्मान कर रही थी और फिर उसने कहा: 'समय अत्यन्त विकट है प्रभु। एक चर आया है।'

'चर!' देवगुप्त संकटसूचक घंटे की आवाज सुनकर दहल गया था। चर का आगमन सुनते ही फिर डर गया। वह बाहर चल पड़ा। चलते समय उसने एक युवती यवनी के सिर में लगे दो फूल निकाले और सूँघ कर बड़ुढ़ेसी का कुछ इंगित किया। यवनी प्रसन्न हो गई। देवगुप्त के जाते ही दासियों ने मित्तकाली और राज्यश्री को चारों से घेर लिया।

१४

वृद्ध दिवाकर मित्र हर्षवर्द्धन और राज्यश्री के गुरु थे। उनके भव्य मुख पर अटूट महिमा गौरवान्वित थी। वे शान्त प्रकृति के मनस्वी व्यक्ति थे। उनके सिर पर सिंघाड़े जैसे श्वेत केश थे और आँखों के चारों ओर काली कुण्डलछाया पड़ जाने पर भी उनकी दृष्टि में एक शक्ति थी। वे स्थाण्वीश्वर नगर के बाहर अपना एक सुरम्य आश्रम वन प्रांतर में बना अपने शिष्यों के साथ रहते थे। आश्रम के समीप ही एक छोटा सा मठ था, जहाँ यात्रा करते हुए साधु आकर ठहरते थे और अपना पथ लेते थे। दिवाकर मित्र हीनयानी बौद्ध भिक्षु थे। पवित्र जीवन व्यतीत करते थे। उनके भीतर अंधविश्वास नहीं था। तर्क के आधार पर वह प्रत्येक तथ्य को निर्णित करते थे। दिवाकर मित्र का व्यावहारिक ज्ञान बहुत था। सहिष्णुता उनमें अत्यधिक थी। हाल में जब स्थाण्वीश्वर में हीनयानियों ने महायानियों की वज्रश्रीतारा की मूर्त्ति को झगड़े में तोड़ फोड़ दिया, तब दिवाकर मित्र ने ही दोनों पक्षों में

शान्ति कराई थी। कई ब्राह्मण भी उनके मित्र थे। वैष्णवों से भी जान पहचान थी। यहाँ तक कि एक अघोर पाशुपत भी उनका अतिथि बन कर रहा था, जो बाद मे अपने उत्तर के मन्दिरों की यात्रा करने ईरान चला गया था।

भिक्षु में शास्ता की बताई सौम्यता और क्षमा जो होनी चाहिए थी, वह दिवाकर मित्र में पर्याप्त थी। बिना नगर के बाहर बसी एक बूढ़ी कोढ़िन को अन्न दिये, वे अपनी भिक्षा भी ग्रहण नहीं करते थे। दिन के बारह बजे के बाद उन्होंने आज चालीस वर्ष से कभी नहीं खाया था। चीवर के सौम्यवर्ण ने उन्हें एक अनुपम मूर्तिमती सौम्यता प्रदान की थी।

उस छोटे से आश्रम की स्थिति सघन वृक्षों की शीतल छाया में थी और ऊपर फूस का छप्पर पड़ा हुआ था। जब दिवाकर मित्र बाहर जाकर शाल्मली वृक्ष के नीचे बैठते तो गिलहरियाँ उनके कंधों पर दौड़ने लगतीं। वन के बहेलिये जनपदों से आकर उनके दर्शन करते और उनके आश्रम मे भिक्षा के तौर पर कभी-कभी मांस डाल जाते। बकहारवासिनी चापा भी बहेलिया-सर्दार की पुत्री थी, जिसने आजीवक उपक से विवाह किया था, और बाद में शास्ता ने दोनों को विमुक्ति की दुन्दुभि बजा कर मुक्ति दी थी, अंधी प्रजा को जगाया था। व्याधों, नागों और शबरों से जब कि ब्राह्मण और नगरवासी घृणा करते थे, दिवाकर मित्र समान भाव से उनसे मिलते-जुलते थे। कभी-कभी उनके यहाँ गोंड और भिल्ल भी आते थे। दिवाकर मित्र इस बात पर हँसते थे कि गोंड जाति जो सतपुरा की श्रेणियों तक फैल गई थी, ब्राह्मण के हाथ का छुआ भोजन उसमें घृणित समझा जाता था।

और इस मित्रता के फलस्वरूप दिवाकर मित्र बहुत दूर-दूर की बातें जानते थे, क्योंकि यह जङ्गली घूमते ही रहते थे और इन लोगों से दिवाकर मित्र निःशुल्क ही काफी सेवा ले सकते थे। भिल्ल बड़े सरल स्वभाव के थे और शबरों की सी क्रूर प्रकृति भी उनमें नहीं थी।

आधकोस दूर पर बसी चंडाल बस्ती में लोहे का घन्टा बजने लगा था, कुत्ते भौंकने लगे थे, तभी वन प्रांतर में किसी अश्व के दौड़ने का शब्द सुनाई दिया और कुछ ही देर में एक युवक स्वेश्लथ अश्व से उतर कर दिवाकर मित्र के चरणों पर कुटीर में लोट गया।

'कौन ?' वृद्ध ने पलकें उठाकर कहा, 'हर्ष !'

'गुरुदेव !' हर्ष ने भूमि पर पड़े-पड़े ही कहा, 'मेरा हृदय कांप रहा है।'

'ऐसा क्यों वत्स !' वृद्ध ने उसे उठाकर पूछा।

कुमार हर्ष बैठे नहीं। खड़े रहे।

'गुरुदेव', हर्ष ने काँपते स्वर से कहा, 'पिता के स्वर्गवासोपरान्त चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई देता है। महाराज राज्यवर्द्धन हूणयुद्ध से लौटे भी नहीं थे कि राज्यश्री पर विपत्ति आ गई। मालव देवगुप्त ने मौखरिकुल भूषण ग्रहवर्मा की कान्यकुब्ज पर आक्रमण करके छल से हत्या कर दी।

'जानता हूँ वत्स !' वृद्ध ने अविचलित स्वर से कहा।

'भन्ते ! राज्यश्री विधवा हो गई।' हर्ष का गला रुँध गया। वृद्ध ने धरती पर पड़े तिनके को उठा कर तोड़ दिया और फिर चुप हो गया।

हर्ष ने फिर कहा : गुरुदेव ! मालवराज राज्यश्री को हर ले गया है।

वृद्ध एकदम चौंक उठे।

'क्या कहा वत्स ? राज्यश्री अपहृत की गई है ?'

'भन्ते !' हर्ष ने झुककर कहा।

'बड़ा कठोर और दारुण संवाद है वत्स,' वृद्ध ने कहा। अब की बार तिनका धरती से उठाया, तोड़ा नहीं, उसे कच्ची मिट्टी में गाड़ कर खड़ा कर दिया। फिर सोच कर कहा : कोई बात नहीं कुमार। कोई बात नहीं। इस अंधकार को फाड़ कर सूर्य निकलेगा।

वृद्ध उठ खड़ा हुआ। उसने एक बार कुटीर की ओर देखा और फिर उस मठ की ओर पुकारा : जीवक !

एक तरुण आया। वह साधारण कृषक के-से वस्त्र पहने था।

'भन्ते !' जीवक ने अत्यन्त कोमल स्वर से कहा।

'वत्स, कुटीर में रहना। मैं राज्यश्री को लाने जाता हूँ।'

जीवक ने सिर झुका कर स्वीकार कर लिया। हर्ष ने आश्चर्य से देखा और कहा : किन्तु भन्ते। मालव दूर है। उज्जयिनी जाना होगा। फिर आप पैदल ?

'वत्स,' वृद्ध ने हँसकर कहा, 'शास्ता का अनुयायी हूँ, मेरे लिये यान पर चढ़ना निषिद्ध है। प्रयत्न करने में क्या दोष है ?'

जीवक ने कहा : अतिथि ! गुरुदेव की शक्ति अपार है। आश्चर्य मत करो।

हर्ष को अच्छा नहीं लगा। कहा : मैं गुरुदेव से परिचित हूँ।

'होते तो यह नहीं कहते अतिथि', वृद्ध ने हँसकर कहा, 'अतिथि कुमार हर्ष हैं, जीवक।'

जीवक ने हर्ष के पाँव पकड़ लिये। वह भय से कुछ भी नहीं कह सका।

१५

उदयन की उज्जयिनी गुप्त काल तक अपनी उपमा में तीन या चार ही नगर बता सकती थी। किंतु बहुत समय तक पाटलिपुत्र ने अपने गौरव को स्थापित रखा था और इस प्रकार उज्जियिनी अब मंदश्री हो गई थी।

महाराजाधिराज राज्यवर्द्धन ने महानगर को जाकर घेर लिया। शशांक नरेन्द्रगुप्त अत्यंत विश्वसनीय मित्र बन गया था। राज्यवर्द्धन

गौड की सहायता को प्राप्त करके अत्यंत प्रसन्न था। देवगुप्त का उपरिक उग्रगुप्त युद्ध में मारा जा चुका था।

संध्या हो गई थी। बंदीगृह में राज्यश्री और मित्तकाली बैठी थीं। बाहर प्रांगण में प्रहरी सो रहे थे। एक प्रहरी घूम-घूम कर पहरा दे रहा था। मित्तकाली ने संकट का संवाद जो राज्यश्री के संमुख सुनाया था उसे देवगुप्त ने पुरस्कार दे दिया। दूसरे इस समय मालवराज को बंदीगृह से अधिक सुरक्षित स्थान कोई भी दिखाई नहीं दिया। इसलिये उसने राज्यश्री को यहीं भिजवा दिया। आज तीसरा दिन था। धरती कच्ची थी और उसमें सीलन थी। दीवारें पत्थर की बनी थीं। छोटे-छोटे द्वार थे, छत बहुत नीची थी, एक प्रकार की घुटन उस बंदीगृह मे सर्वत्र ही थी। राज्यश्री लेटी थी। उसके पैरों में बेड़ी डाल दी गई थी।

राज्यश्री ने दो दिन से कुछ खाया नहीं था। मित्तकाली ने दुपहर के प्रहरी को अपना स्वर्ण कंकण उतार कर दिया और उससे कुछ फल मँगवा लिये थे। उसके बार-बार अनुनय करने पर राज्यश्री ने वे फल खा लिये।

मित्तकाली द्वार के लोहे सींखचों के पास खड़ी हो गई और राज्यश्री ने देखा वह प्रहरी से कुछ इंगित करने लगी।

प्रहरी निकट आ गया। लंबा चौड़ा अत्यंत काला प्रहरी एक स्त्री को अपनी ओर इस प्रकार कटाक्ष करते देख कर प्रायः मर गया।

उसने अत्यंत नम्र बन कर बोलने की चेष्टा की किंतु फिर भी ऐसा लगा जैसे किसी ने गले तक डुबा कर पानी में कलसा भरना प्रारंभ किया हो।

'क्या देख रही है?'

'कुछ नहीं', मित्तकाली ने सफ़ेद-सफ़ेद दाँत चमका कर कहा, 'देखती थी, तुम भी अद्भुत व्यक्ति हो।'

'क्यों?' प्रहरी का भयानक दंड और स्वर दोनों एक साथ बजे।

मित्तकाली मे यह परिवर्तन देख कर राज्यश्री को आश्चर्य हुआ। वह अत्यंत चपल, अंगभंगिमा निपुणा और चतुर थी।

मित्तकाली ने हँस कर कहा : आये दारिश्रा! दिन भर व्याघ्र की भाँति घूमते रहते हो?

प्रहरी विक्षुब्ध हुआ। किंतु तब ही मित्तकाली ने दूसरा कटाक्ष करके कहा : तुम्हारी स्त्री तो तुम्हारे पाँव दबाते-दबाते ही जीवन बिता देगी।

प्रहरी निकट आ गया।

'मेरी कोई स्त्री नहीं है।'

'तब तो बिल्कुल मुझ जैसे हो, मेरा भी विवाह नहीं हुआ।'

प्रहरी ने टेढ़ी आँख से देखा। उसका रूप देख कर कोने में छिपी बैठी राज्यश्री को भी एक बार मुस्कराहट आ गई। कैसा मोहित प्रतीत होता था।

'तुमने विवाह क्यों नहीं किया?' मित्तकाली ने कहा : 'भगवान ने पुरुष को अधिकार दिया है, शक्ति और रूप दिया है, वह क्यों एक स्त्री को अपने साथ नहीं तार देता?'

'तुम्हारी जाति क्या है?' प्रहरी ने पूछा।

'क्यों?' मित्तकाली ने कहा, 'धीरे बोलो। मेरी भाभी भी यहीं बंद है।'

'क्या अपराध किया था तुमने?'

'कुछ नहीं', मित्तकाली ने कहा, 'कोट्टपाल मुझ पर कुदृष्टि डाल रहा था।'

प्रहरी उद्भ्रांत सा दिखाई दिया।

मित्तकाली ने कहा : वैश्य हो?

'नहीं। क्षत्रिय हूँ।' जैसे मित्तकाली ने पहले उसे गाली दे दी।

'मैं भी क्षत्रिया हूँ।'

प्रहरी के मुख से एक आनंद की ध्वनि निकली। लगा जैसे भेड़िया गुर्रा रहा था।

इसके बाद राज्यश्री नहीं सुन सकी। मित्तकाली और प्रहरी बहुत धीरे-धीरे बातें करने लगे।

और साँझ ढलने लगी। अंधकार उतरने लगा।

पत्थर का बना वह बंदीगृह भयानक लगने लगा। कहीं कोई बंदी पिट रहा था, उसका आर्त्तनाद गूँज उठता था। सभवतः किसी को दारुण यातना दी जा रही थी। या तो बिच्छुओं से कटाया जा रहा था, या चक्र पर बाँध कर हाथ पाँव खींचे जा रहे थे, या पत्थर का बड़ा पहिया घुमवा कर गेहूँ पिसवाया जा रहा था।

बाहर की ओर के वातायन से नीला आकाश दिखाई दे रहा था। उसके नीचे खाई थी, जिसकी सीलन बूंद-बूंद करके बंदीगृह की प्राचीर भेद करके धीरे-धीरे चुआ करती थी। फिर वृक्षों का गहरा अंधकार था। दूर तारे टिमटिमा रहे थे।

मित्तकाली ने राज्यश्री को जगा दिया। दोनों सतर्कता से उठ खड़ी हुईं। प्रहरी ने द्वार खोल कर भीतर रस्सी फेंक दी। मित्तकाली ने राज्यश्री के कंधों पर चढ़ कर वातायन में से उस रस्सी का भीतर बाँध कर लटका दिया। फिर मित्तकाली लोहे की बेड़ी खोलने लगी। चाभी लगाते ही वह खुल गई।

आधीरात के समय खाई की ओर से कोई क्रौञ्च पक्षी के स्वर में बोला, किंतु वह क्रौञ्चस्वर इतना विकृत था कि वह क्रौञ्चमाता और उलूक पिता का पुत्र प्रतीत होता था। मित्तकाली ने रस्सी बाहर फेंक दी।

उसने कहा : शीघ्र बाहर उतर जाओ।

जिस समय दोनों नौका में बैठ गईं, प्रहरी डाँड़ चलाने लगा। राज्यश्री ने अपने समस्त आभूषण उतार कर उसे दे दिये। प्रहरी

विस्मय से पागल की भाँति देखने लगा। मित्तकाली ने उसे चाभी का गुच्छा लौटा दिया।

तीर पर उतर कर मित्तकाली ने कहा : स्वामी! क्यों भाभो! स्वामी ही तो हुए? फिर कहा प्रहरी से मुड़ कर : यह आभूषण दो एक बेच कर कुछ अश्व नहीं ला सकते?

'इस आधीरात के समय?'

'क्यों? धर्मशाला के पास जहाँ सार्थ ठहरते हैं, वहाँ मिल जायेंगे।'

प्रहरी चुप रहा।

'तुम डरते हो?' मित्तकाली ने कहा।

'डरता हूँ?' प्रहरी ने तमक कर कहा, "मैं डरता हूँ। अच्छा लो अभी लाता हूँ। पर तुम कहाँ रहोगी?'

'यहीं और कहाँ?'

'हाँ यहीं ठीक है।' प्रहरी ने कहा।

जब वह चला गया मित्तकाली ने हर्ष से राज्यश्री को अपने अंक में भर लिया और हँस दी। किन्तु इसी समय भीषण कोलाहल होने लगा जैसे निकट ही भयानक युद्ध हो रहा था। दुर्ग जलने लगा। बंदीगृह के चारों ओर घोड़े दौड़ने लगे। और भीषण संग्राम के अत्यन्त विकट निनाद से दिगंत थर्राने लगे।

मित्तकाली ने राज्यश्री का हाथ भय से पकड़ कर कहा : भाग चलो देवी! भागो!

'यह कोलाहल क्यों हो रहा है?'

'कौन जाने? इतना तो मैंने सुना था कि गौड राजा ने मालव पर आक्रमण करने का विचार किया है।'

'तो क्या यह सब गौड ही हैं?'

'यह तो अंधकार में क्या मालूम होगा? मैं तो पूछ आती, किन्तु

फिर देवी, आपका क्या होगा ? हमारी बात और है, आपकी और बात है।'

'क्यों', राज्यश्री ने कहा, 'तुम्हें भय नहीं होता ?'

'पुरुष से क्या भय ? देवी !' मित्तकाली हँस दी। बोली : यह लोग मूर्ख होते हैं। परन्तु तुम तो अपनी शत्रु स्वयं हो।

'मैं ? कैसे ?' राज्यश्री ने पूछा।

'सुन्दरी हो न ?'

मित्तकाली फिर हँस दी। राज्यश्री समझी नहीं। कुछ सैनिक घोड़ों पर उल्का लिए निकट से दौड़ते हुए निकल गये। रणनाद उग्रतम होता जा रहा था। कई जगह आग की लपटें उठ रही थीं।

मित्तकाली ने राज्यश्री का हाथ पकड़ कर कहा : सब आभूषण उस पशु को दे दिये ! भूल हो गई।

'परन्तु वह विश्वास फिर कैसे करता ?'

'ठीक है ! चलो।'

दोनों घने कांतार में चल पड़ीं।

जिस समय प्रहरी लौट कर आया उसने देखा दोनों स्त्रियाँ चली गई थीं और अंधकार चारों ओर सांय-सांय कर रहा था। एक घोड़ा वहीं छोड़ कर, दूसरे पर वह स्वयं ही एक ओर भाग चला।

महानगर में भयानक कोलाहल हो रहा था।

१६

कुमार हर्षवर्द्धन संध्या समय अश्वारूढ होकर जब प्रासाद से निकले उनके पीछे उनके अंगरक्षकों का दल चलने लगा। सुसज्जित शस्त्रों की झंकार सुन कर नागरिक ससम्मान पथ छोड़ने लगे। स्थाण्वीश्वर के पण्य पथ विस्तृत थे। शिव मंदिरों में शंखनाद होने लगा था। उतरते

अंधकार मे विभिन्न मतांतरा के उपासनागृहो से विभिन्नता को त्याग कर वाद्यध्वनि उन सबकी महती साधना का एक्य गुञ्जा रही थी कि वस्तुतः यह सब मार्ग धर्म का पथ पहचानने के लिये हैं, जिसे कोई भी नहीं पहचानता। दास दासियों की हाट मे इस समय शांति थी। अब वैसे दास नहीं बिकते थे और जैसे यूनान में प्रथा थी। यहाँ वे घरेलू दास थे जो अधिकांश शिल्पश्रेणियों के शिल्पी या अर्द्धदास कृषकगण थे। शिल्पी अनेक-अनेक किसी एक श्रेणी में सम्मिलित हो जाते और सामंतों के अनेक प्रसाधन तत्पर हाथों से बनाते। उनकी चतुरता आज डेढ़ सहस्र वर्ष से दजलाफ़रात की भूमि से लेकर सुदूर रोम तक विख्यात थी। भारत का जल व्यापार उस समय तक अरबों के हाथ में नहीं गया था।

सायंकाल के समय वेश्याओं के गृहों से आमोद और विलास की प्रतिध्वनियां गूंजने लगी थी। स्थाण्वीश्वर की सर्वश्रेष्ठ वेश्या सुमंगला जिसका शुल्क एक रात्रि से लिये पाच सहस्र दीनार था, अपने स्वर्ण के रथ पर जा रही थी। जब राजमार्ग पर कुमार हर्षवर्द्धन का अश्व निकला उसके सारथि ने रथ रोक कर एक ओर कर दिया।

'किस लिये रोका?' सुमंगला ने आतुर होकर पूछा।

'कुमार हर्षवर्द्धन भट्टारक पादीय'......

इसके बाद भीड़ के कोलाहल में उसकी ध्वनि डूब गई। सुमंगला ने वह शांत और सुन्दर मुख देखा। उस मुख में कोई आतुरता नहीं थी, जैसे सुमंगला के मुखचंद्र ने उस समुद्र में कोई तरंग नहीं उठाई थी। नवीन उत्साह अर्ज्जस्वित यौवन से थपेड़े लेकर भुजदण्डों में हुमक रहा था। सुमंगला ने अपने सिर से पुष्पमाला निकाल कर कुमार हर्षवर्द्धन के घोड़े पर फेंक दी।

नागरिकों ने जय जयकार किया। मदिरा की दूकान में से नर्त्तकियाँ निकल आईं और उन्होंने फूल वालों की दूकानों से फूल उठा लिये

और कुमार तथा उनके अंगरक्षकों पर बिखेर दिये। आनन्द के कारण अगर बेचने वाले वृद्ध कंकण ने दोनों हाथ उठा कर जय जयकार करना प्रारंभ कर दिया।

कुमार हर्षवर्द्धन इस उद्वेग को देखता रहा। फिर उसने इंगित किया। अंगरक्षकों ने मदिरा, पुष्प, अगर तथा मिष्ठान्नों की दुकानों से उनके मालिकों को उतर जाने की आज्ञा दी और कहा कि वे मूल्य प्राप्त करने प्रासाद में उपस्थित हों। दूकानदार उतर गये। एक सैनिक ने चमड़े की एक थैली हर्षवर्द्धन के संमुख कर दी। कुमार ने मुट्ठी भर कर स्वर्ण दीनार निकाले और दूकानों की ओर फेंक दिये। इसके बाद सैनिक ने सोने की थैली को खनखना कर पथ पर खाली कर दिया।

कुमार ने मुस्करा कर कहा : अभय!

प्रजा ने उन दूकानों और स्वर्ण दीनारों को लूटना प्रारंभ किया। मदिरा के बड़े-बड़े कांच के पात्र खाली होने लगे। सुमंगला ने देखा और कुमार पर कटाक्ष किया। कुमार हँस दिये।

देर तक जय जयकार होता। कुमार के दान की प्रशंसा होती रही। सांध्यभ्रमण का समय समाप्त हो रहा था। जिस समय कुमार हर्षवर्द्धन बौद्धसंघाराम के पास से निकल रहे थे, हठात् किसी ने पुकारा : कुमार! कुमार!

घोड़े पर से उतर कर कुन्तल ने कुमार के चरण थाम लिये। अंगरक्षकों के हाथों मे नग्न खड्ग चमकने लगे।

'कौन?' कुमार ने पहचान कर कहा, 'पर! कुन्तल? तू इतना घबराया हुआ क्यों है?'

'देव! एकात!' जैसे उसका स्वर घुट गया।

कुमार ने पीछे देखा। अंगरक्षक पीछे हट गये। कुन्तल ने हकला कर कहा : देव...मैं...मैं...

'अभय कुन्तल, अभय।' कुमार ने आश्वासन दिया।

'देव!' कुन्तल ने कहा, 'जिस समय महाराजाधिराज राज्यवर्द्धन ने मालवराज देवगुप्त का वध किया, नितांत क्रूरता से गौडराज शशांक नरेंद्रगुप्त ने छल से महाराजाधिराज की हत्या कर दी।'

कुमार गंभीर, घोड़े पर बैठे रहे। एकदम स्तब्ध!

फिर कहा: 'भगिनी राज्यश्री?'

'देव,' कुन्तल ने फिर कहा, 'देवी के विषय में कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई। कहा जाता है देवगुप्त ने उन्हें उनके अडिग पातिव्रत से चिढ़ कर कारा में डाल दिया था, जहाँ से वे निकल गईं, ज्ञात नहीं कहाँ।'

कुमार हर्षवर्द्धन ने एक दीर्घ श्वास छोड़ा। उसकी बहिन पवित्र थी। गर्व से ललाट उठ गया। पुण्यभूतिवंश की कन्या का गौरव!

और कुमार ने अत्यन्त धैर्य से पूछा: कुन्तल, जो तूने कहा, वह सत्य है?

'देव!' कुन्तल ने रोते हुए कहा, 'मैं तीन पीढ़ियों से पुण्यभूति वंश के अन्न पर चलने वाली परंपरा में जन्मा हूँ। मेरे लिये महाराजाधिराज नहीं मरे, मेरे अग्रज की मृत्यु हुई है, क्योंकि बाल्यावस्था में मैं उनके साथ खेला था।'

'और सेनापति भाण्डी?'

'देव! सेनापति ने मालव पर अधिकार कर लिया है। गौड़ सेना भाग गई। अब सेनापति कान्यकुब्ज की ओर बढ़ रहे हैं।'

'शशांक कहाँ है?' अबकी बार हर्षवर्द्धन के स्वर में कुछ तीखापन था।

'संभवतः भाग गया।'

'कायर!' हर्षवर्द्धन ने दाँत भींच कर कहा।

कुन्तल ने पाँव छोड़ दिये। घोड़े पर चढ़ गया। उसने कहा:

देव ! पहली बार राज्याभिषेक ठीक नहीं हुआ। इस बार वैसा ही नहीं होना चाहिये।

'कुन्तल !' कुमार ने पुकार कर कहा, 'हृदयहीन ! यह समय राज्य का है ?'

'भले ही नहीं हो,' कुंतल ने कहा, 'किंतु जिस अंत को देवगुप्त प्राप्त हुआ है, उसी अंत को नरेन्द्रगुप्त को भी प्राप्त होना है और इसके लिये स्थाण्वीश्वर की सेना को एक सेनापति चाहिये। पुष्य-भूतिवंश के कुमार हर्षवर्द्धन से उपयुक्त इस समय मुझे और कोई नहीं जँचता। यदि इस समय आप रोने बैठेंगे तो वसुधरा रसातल में डूब जायेगी।' और कुंतल ने एकाएक खड्ग उठा कर पुकारा : महाराजा-धिराज हर्षवर्द्धन की जय।

कोई नहीं समझा। अगरक्षक चौंक गये। नागरिकों ने सुना और वे अनसमझे से रुक गये। कुन्तल ने फिर कहा : महाराजधिराज हर्षवर्द्धन की जय। फिर सब चुप रहे। उस समय अवलोकितेश्वर के मंदिर की ओर से किसी ने पुकारा : सद्धर्म्म के रक्षक की जय।

एकत्रित जनसमूह ने देखा, कुमार हर्षवर्द्धन की आँखें भर आईं थीं। तब उनकी समझ में आया। और फिर स्थाण्वीश्वर की गलियों मे, राजमार्गों पर बिजली की तरह समाचार दौड़ गया।

जिस पथ से कुमार हर्षवर्द्धन लौटे प्रजा ने उनका महाराजाधिराज कह कर जय जयकार किया। और हर्ष के मुख पर वज्र सी दृढ़ता थी। उल्काओं के प्रकाश में वह गौरवमय उन्नत ललाट अपना उज्ज्वल भविष्य लिये चमक रहा था। श्वेत भव्य तुरंग अपनी गर्वीली चाल से चल रहा था। और धीरे-धीरे शोक से हाट बंद हो गये केवल पथों पर लोग निकल-निकल कर बातचीत करने लगे। स्थाण्वीश्वर जीत कर भी हार गया था।

१७

पट्टमहादेवी चयनिका ने अपना शृङ्गार उतार कर फेंक दिया। विशाल प्रकोष्ठ मे रुदनध्वनि गुञ्जने लगी। चयनिका युवती थी। राज्यवर्द्धन उस समय चौबीस वर्ष का युवक था। उसकी यौवन में मृत्यु हुई। चयनिका इस आघात से विचलित हो गई। छोटा होने पर भी बुद्धि में अत्यंत तीक्ष्ण हर्षवर्द्धन परिस्थिति को समझ गया। उसने घोड़े पर से उतर कर शीघ्रता से दीर्घ सोपानों को पार किया और चयनिका के संमुख उपस्थित हुआ।

'मैं लौट आया हूँ', महाराजधिराज हर्षवर्द्धन ने कहा, 'राज्यश्री नहीं रही, भैया भी नहीं रहे। किन्तु मैं लौट आया हूँ।'

'आये हो देवर', चयनिका ने उठते हुए कहा, 'किन्तु नंगे हाथों आये हो।'

चयनिका के बाल बिखरे हुए थे, खुले लहरा रहे थे। वह इस द्रौपदी की भाँति प्रतिशोध की प्यासी थी।

सेनापति सिंहनाद ने प्रवेश किया। वह अंतिम वाक्य सुन चुका था। उसने दूर ही से कहा : ठीक कहा महादेवी, ठीक कहा।

'नहीं, सेनापति', चयनिका ने आँसू पोंछ कर कहा, 'ठीक नहीं कहा। अबसे मैं महादेवी नहीं हूँ।'

सिंहनाद चौंक कर झुक गया, जैसे अपराध हो गया हो। उसने कहा : महाराजधिराज!

'नहीं, सेनापति यह आनंद का समय नहीं है', हर्ष ने मुख मोड़ कर उत्तर दिया।

'आनंद', सेनापति ने गम्भीर स्वर से कहा, 'वीर के लिये खड्ग उठाने का समय सबसे बड़े आनंद का समय है।

चयनिका हँसी। फिर रोई। दोनों अवाक् देखते रहे।

'भाभी !' हर्ष का स्वर काँप उठा।

'मुझे शत्रु का रक्त लाकर दो देवर', चयनिका ने आँखें उठा कर कहा। ठीक उसी समय बाहर सैनिकों के शस्त्र खड़खड़ाये और उन्होंने जयध्वनि की : महाराजधिराज हर्षवर्द्धन की जय !

उस समय ऐसा लगा जैसे हर्ष का मुख पत्थर का हो गया।

चयनिका ने आगे बढ़ कर कहा : जय ! हर्ष ! जय ! सेना पुकार रही है। राष्ट्र पुकार रहा है। शत्रुओं ने तुम्हारी कुल नारियों की माँग को धो दिया है। प्रतिज्ञा करो महाराज !

वह बिजली की भाँति कौंध कर ठहर गई।

हर्ष के हाथों ने स्वयमेव सिंहनाद का खड्ग निकाल लिया और गरज कर कहा : मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस खड्ग से मैं वसुधरा पर रक्त की ऐसी नदी बहाऊँगा कि हिमालय से कन्याकुमारी और सिंधु से कर्णसुवर्ण तक पृथ्वी लाल हो जायेगी और शत्रु की विधवाओं के चीत्कारों के हाहाकार मे सारा समुद्र-गर्जन भी डूब जायेगा।

हर्ष व्याघ्र की भाँति घूमने लगा। उसने फिर कहा : सिंहासन पर महाराजाधिराज राजवर्द्धन बैठे हैं, सेनापति सिंहनाद। मै रक्त भींगे सिंहासन पर नहीं बैठ सकता। जाकर सेना से कहो कि हर्ष का क्रोध शत्रु का रक्त चाहता है।

बाहर सैनिकों ने प्रचण्ड गर्जन प्रारंभ कर दिया था। उनके स्वर की रौद्रता को बढाने पटहध्वनि धक-धक करने लगी थी। सैनिक अब पंक्ति बना कर खड़े हो रहे थे। उनके शिरस्त्राण दिन की धूप में उनके भालों के फलकों से भी अधिक चमकने लगे थे। महाराजाधिराज हर्ष-वर्द्धन को सेनापति सिंहनाद और सेनापति स्कंदगुप्त के साथ आते देख कर सैनिकों में अपूर्व उत्साह छा गया।

महाराजाधिराज सेना का निरीक्षण करने लगे।

'महाराजाधिराज', स्कंदगुप्त ने कहा, 'वाहिनी सन्नद्ध है।'

हर्षवर्द्धन ने देखा, लहरों की भाँति शिरस्त्राण अत्र दीप्त हो रहे थे। उसने उन्नतललाट होकर कहा : सैनिकों! स्थाण्वीश्वर के वीरों! संकट छाया हुआ है। स्वर्गीय महाराजाधिराज रणयुद्ध में विजयी होकर लौटे थे, किन्तु वह विजय हूणों की पूर्ण पराजय नहीं हुई है। राष्ट्र का रक्षक आज कोई नहीं है। मौखरियों और पुष्यभूतियों के रक्त का प्रतिशोध लेने आज मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जिस दिन तक मैं मर्यादा को पुनः स्थापित नहीं कर लूँगा, महाराजाधिराज होकर भी सिंहासन पर नहीं बैठूँगा।

सैनिकों में स्फूर्ति छा-गई। उन्होंने जयध्वनि की। फिर सहस्रों खड्ग धूप में चमचमा उठे।

पीछे की पंक्तियों मे कुछ कोलाहल सा उठा। सेनापति स्कंदगुप्त वेग से महाराज के संमुख आ गया।

'महाराज सावधान रहें', स्कंदगुप्त ने आतुर होकर कहा।

'क्यों, बलाधिकृत?'

'देव! शत्रु कहाँ हैं, कहा नहीं जा सकता।' फिर उसने एक ओर देख कर पुकारा : गुल्माधिपति!

गुल्माधिपति अश्वारूढ़ था। उसने उतर कर अभिवादन किया।

'महाराज। घोड़ पर चढ़िये।'

'नहीं स्कंद! इसकी आवश्यकता नहीं। मै अपने लिये भयभीत नहीं हूँ।'

'ठीक है देव! किंतु इस समय स्थाण्वीश्वर के व्याकुल मंत्रियों ने जो निश्चय किया है, आप को उस का सम्मान करना चाहिये। वे सब आप के पिता के पुराने सेवक हैं।'

महाराज निरुत्तर हो गये। गुल्माधिपति के घोड़े पर उनके चढ़ते ही, सेनापति स्कंदगुप्त के इंगित पर उन्हें चारों ओर से गौल्मिकों ने घेर लिया।

नहीं भीगेगा तब तक धरित्री में से पुकार आती रहेगी—अभी और, अभी और...

सहस्त्रों पदातिकों ने मुक्त कण्ठ से वज्रघोष किया।

'देवी !' दासी ने आँखों मे आँसू भर कर अंतःपुर मे चयनिका से कहा, 'महाराजाधिराज ने भीषण प्रतिज्ञा की है।' उसके स्वर में एक प्रश्नवाचक भय था। 'क्या वह तरुण इतनी बड़ी प्रतिज्ञा पूर्ण कर सकेगा ?' चयनिका ने दृढता से कहा : वह बहुत दृढ़ है तरला, बहुत दृढ है। उस पर आश्चर्य मत कर। उसे दृष्टि दोप न दे।

'देवी ! अपनी आँखें फोड़ लूँगी।'

दासी ने कहा और चयनिका के शीश पर तेल लगाने बढ़ी। चयनिका ने कहा : रहने दे तरला। इन केशों को अब सुवासित तैल की आवश्यकता नहीं है।

दासी गम्भीर वेदना से देखती रही। फिर वह चली गई। सेना में नवीन स्फूर्ति फैलने लगी। नागरिकगणों में अबकी बार विक्षोभ सा था। किन्तु अधिकांश में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वे विश्वास ही नहीं करते थे कि यह छोटे से महाराजाधिराज.इतना कठिन कार्य कर सकेंगे। कुछ ने तो यह भी विचार प्रगट किया कि अब शशांक नरेन्द्रगुप्त विजय प्राप्त कर लेगा और गुप्त वंश सभवतः अब फिर से अपना साम्राज्य स्थापित करेगा।

कुमारामात्यों को महाराजाधिराज ने आज्ञा भिजवा दी थी कि कान्यकुब्ज पर महाबलाधिकृत भाण्डी को पहले अधिकार प्राप्त कर लेना चाहिये, फिर वहाँ भाण्डी की सहायता के लिए तीन कुमारामात्यों का एक कुल तब तक के लिए पहुँचना चाहिये जब तक राज्यश्री का पता नहीं चलता।

रात्रि की अन्धकारभरी निविड़ता में महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन जब अंतःप्रांगण के क्रेन्कार करते सारसों को देखकर भीतरी आलिंदो को पार

करके प्रकोष्ठ में पहुँचे, पार्वतीय प्रदेश के एक दास ने उसके चरणों पर अपना सिर रख दिया।

'क्या हुआ देवदारु ?' हर्ष ने अपना खड्ग टाँगते हुये कहा।

'स्वामी ! कुछ भी पता नहीं चला।'

'मालव गया था ?'

'देव वहीं से आ रहा हूँ।'

'किसी से भी पता नहीं चला ?'

'देव देवी बंदीगृह में थीं अवश्य, किन्तु वे भाग निकलीं। कहाँ गईं यह तो पता नहीं चला।'

महाराजाधिराज कुछ देर सोचते रहे। फिर कहा : देवदारु ! राज्यश्री ! सचमुच नहीं मिलेगी वह ?

'देव ! रात को ही फिर चला जाऊँगा।'

'अब कहाँ जायेगा ?'

'देव ! एक बार कान्यकुब्ज जाकर देखूँ ?'

'नहीं,' महाराजाधिराज बैठ गये। उन्होंने देर तक कुछ भी नहीं कहा। फिर देवदारु ने देखा। उनके नेत्रों में भयानक प्रतिहिंसा दिखने लगी। उसे लगा कि धरती पर व्याघ्रमुख के नेत्रों से वे नेत्र मिलने लगे। देवदारु, डर गया।

'तू जा।' महाराजाधिराज ने कहा।

देवदारु चला गया। हर्ष ने बाहर उठ कर देखा। आकाश स्तब्ध था। कहीं कोई कोलाहल नहीं था। केवल रात्रि प्रहरी कभी-कभी चिल्ला उठते थे। फिर उड़ते हुये चमगीदड़ों की फट-फट सुनाई दे जाती थी। हर्ष के हृदय में कुछ घुमड़ने लगा।

दासी तरला ने दूर से सुना। उसे आश्चर्य हुआ। आधी रात के बाद महाराजाधिराज के प्रकोष्ठ से वीणा बजने का शब्द आ रहा था।

कभी-कभी गीत की अत्यन्त करुण तान सुनाई देती थी। उसने चयनिका को जगाने का दुस्साहस किया। चयनिका ने सुना और वह रोने लगी।

हर्ष ने वेदना से आर्त्तहृदय होकर जो गीत रात्रि को गाया, वह प्रातःकाल लेखकों ने अनेक प्रतियाँ लिखकर राज कुलों में पहुँचाया। हर्ष कवि भी था।

१८

सघन वृक्षों की छाया में दो स्त्रियाँ बैठ गईं। एक बहुत थक गई थी। दूसरी इस समय भी विषण्या होने पर भी पराजित नहीं थी। उसने मुस्करा कर कहा : देवी! चलते-चलते कितने ही दिन और कितनी ही रातें बीत गईं। यह तो बतायें कि आपका कहाँ जाने का ध्येय है?

'मै क्या बताऊँ मित्तकाली,—भाग्य जहाँ ले चलेगा वहीं चलती जाऊँगी।'

'तो क्या भाग्य का पथ यों ही कट जायगा? देवी वह तो उतना ही लम्बा है जितना जीवन, और उतना ही जटिल भी है।' कह कर वह स्त्री धरती पर उँगली से मिट्टी कुरेदने लगी। राज्यश्री लेट गई। उसने आँखें बन्द कर लीं। दोनों के वस्त्र वन प्रांतों में घूमते हुये काँटों में उलझ कर जगह-जगह फट गये थे। राज्यश्री के सुन्दर शरीर को धूल ने मैला कर दिया था, किन्तु फिर भी कुहरे में छिपे अरुण की भाँति उसका सौंदर्य फूट पड़ता था। मित्तकाली ने कहा : 'देवी! यों तो काम नहीं चलेगा। मुझे तो अन्न खाने की इच्छा होती है। कंदमूल खाते-खाते प्राण कंठ में आकर अटक गये हैं।

राज्यश्री ने आँखें खोल दीं। उसके मुख पर घबराहट दिखाई देने लगी। उसने कहा : तो अन्न कहाँ मिलेगा?

'दूर कुत्ते भूँक रहे हैं। ग्राम कहीं निकट ही है। अवश्य वहाँ कुछ

खाने को मिल जायेगा ।' मित्तकाली के नयनों में उत्साह फिर झलकने लगा ।

'आम ! यदि वहाँ किसी ने पहचान लिया तो ?'

'यहाँ पहचानने वाला कौन बैठा है ।' परन्तु फिर वह सोचकर बोली : ठीक कहती हैं देवी ! आपका तो यों जाना उचित नहीं है ।

'क्यों ?'

'आपको देखकर यदि किसी ने संदेह किया तो ?'

'संदेह ? इस वेश मे मुझे देखकर कोई क्या संदेह करेगा ?' राज्यश्री ने करुण स्मित से कहा ।

'किन्तु देवी ! यह और भी अनर्थ है । इतनी सुन्दर का दरिद्र होना तो और भी भयानक है । पुरुष बड़ा लोलुप और स्वार्थी होता है ।'

'तो मै क्या करूँ,' राज्यश्री ने कहा । वह आहत-सी रोने लगी ।

मित्तकाली थोड़ी देर सोचती रही । फिर कहा : देवी, यह रूप यदि और गन्दा हो सके, ऐसा कि इस पर किसी की दृष्टि पड़ते में ठहरे नहीं ।

कहते कहते वह रुक गई । राज्यश्री ने रोना बन्द करके कहा : हो सकता है ।

जिस समय दोनों स्त्रियाँ चलीं राज्यश्री अब काफी गन्दी दीख रही थी । इतनी कि उसका गौरवर्ण अब मटीला हो गया था और मित्त-काली उसकी तुलना मे सुन्दरी दीख रही थी । दोनों धीरे-धीरे चलती रहीं । और जब वृक्षों की पक्तियाँ बिरल होने लगीं, वे खेतों के पास पहुँच गईं । आश्चर्य से राज्यश्री ने देखा, खेत जले हुये थे । धरती काली ही काली दिखाई देती थी । देख कर भयानक-सा लगता था । कुत्तों का भूकना अब पास आ गया था । उन्होंने देखा दूर ग्राम दिख रहा था । उनके हृदय सशंक हो गये ।

बाहर की ओर एक देवमंदिर था । राज्यश्री और मित्तकाली ने देखा, उसके भीतर तीन शव पड़े थे । दो स्त्रियाँ और एक बालक ।

स्त्रियों के गले कट गये थे। मंदिर की धरती पर रक्त से लेप लग गया था।

'यह क्या है ?' राज्यश्री ने भय से पूछा।

'या तो यहाँ डाकू आये होंगे,' मित्तकाली ने सोचते हुए कहा, 'या फिर यहाँ से कोई शत्रु सेना निकली होगी।'

'तो क्या आर्यावर्त्त के पथ असुरक्षित हैं ?'

'कई स्थानों पर।'

'यात्रियों का जीवन इस प्रकार संकट में पड़ा रहता है ?'

'हाँ देवी !'

दोनों आगे बढ़ीं। ऊजड़ ग्राम के उस कोने में एक छोटी सी नदी थी। उसके तट पर बैठा एक व्यक्ति अपने सिर के बालों को नोंच रहा था।

'यह कौन है ?' राज्यश्री ने पूछा।

'यह कोई केशलुञ्चक है।'

कोई इस प्रकार निर्दयता से केशों को उखाड़ सकता है, राज्यश्री इस बात को सोच कर सिहर उठी। केशलुञ्चक का ध्यान इनकी पग-ध्वनि से टूट गया। उसने अग्नेय नेत्रों से देखा और फिर वह चिल्लाया : सर्वनाश हो गया। माया ! माया ! सर्वत्र माया। जघन्य वासनामयी आकृतियों ! मैं साधना के लिये एकांत ढूँढ़ता-ढूँढ़ता इस ग्राम में आकर अपनी तपस्या में लगा कि यहाँ कम से कम कोई नहीं आयेगा क्योंकि वलभी के सैनिकों ने यहाँ अपना आतंक फैला रखा है।

दोनों की आँखें भय से फट गईं। तापस क्रोध से फूत्कार करता रहा : सैनिकों ने खेत, ग्राम, घर सब जला दिये। ग्रामवासी जंगलों में भाग गये। जो नहीं भागे उनके शवों को कुत्ते और गीदड़ खा रहे हैं। इसलिये मैं इस एकांत में आया था कि यहाँ कम से कम सर्वविकार ग्राहिणी स्त्री तो नहीं आयेगी। किन्तु तुम लोग यहाँ कहाँ से आ गईं।

तापस सिर पर हाथ मारने लगा। फिर क्रोध से उसने पत्थर मारना प्रारम्भ किया। दोनों स्त्रियाँ भाग चलीं।

जब वे दूर पहुँच गईं राज्यश्री ने हाँफना बन्द करके पूछा : क्या सेनाएँ सब ही ऐसी होती हैं जो प्रजा को इस प्रकार कष्ट देती हैं?'

'जब राजाओं का युद्ध होता है, तो सेना प्रजा के साथ यही व्यवहार करती है।' मित्तकाली ने साधारण स्वर से कहा।

'तो मित्तकाली!' राज्यश्री ने कहा, 'यही है गौरव का पथ? इसी प्रकार मनुष्य की हत्या और नाश करके विजय प्राप्त की जाती है?'

'देवी!' मित्तकाली ने झुककर उत्तर दिया। राज्यश्री रो दी। उसकी आँखों मे पानी भर आया। मित्तकाली ने देखा और पूछा : आपको यह नहीं मालूम था?

'नहीं तो,' राज्यश्री ने बालक की भाँति स्वच्छ नयनो से देखते हुए कहा। मैंने कभी दारिद्रय और दयनीयता नही देखी मित्तकाली, केवल वैभव और आनन्द देखा था। आज जब कि सब छिन गया है। वे अधिकार नष्ट हो गये है और मैं भी प्रजा म आ मिली हूँ, मुझे दुखों का आभास हो रहा है।'

मित्तकाली ने स्नेह से राज्यश्री के आँसू पोंछ दिये और उसे अपने हृदय से लगा कर कहा : वह बड़ा अत्याचारी है देवी! लोग उसे विधाता कहकर सिर नवाते हैं। उसने आप जैसे स्वच्छ और पवित्र फूल को उठाकर कैसी कीचड़ मे फेंक दिया है।

मित्तकाली स्वयं रोने लगी। राज्यश्री ने रोका : रोती क्यों है मित्ता?

मित्तकाली ने आँसू पोंछ लिये। कहा : देवी! अपने लिये नहीं रोती। हम लोग तो दुख सह लेते हैं। किन्तु आपने तो कोई अत्याचार, कोई पाप नहीं किया, फिर उस क्रूर विधाता ने इतना दारुण दुख क्यों दिया? पिता नहीं रहे, पति नहीं रहे, राज्य और घर नहीं रहा। देवी। स्थाण्वीश्वर क्यों नहीं चलतीं?

'क्या करूँगी वहाँ जाकर ?'

'आपके भाई तो वहाँ हैं ?'

'नहीं, मित्ता ! अब नहीं जाऊँगी ।'

'क्यो ?'

'भइया दोनों ही मुझे बहुत स्नेह करते थे । किन्तु यदि वे चाहते तो क्या मुझे खोजने को मनुष्य नहीं भेजते ?'

'और भेजे ही हों तो क्या आपको वे यहाँ बन में मिलेंगे ?'

राज्यश्री चिन्ता में पड़ गई । कुछ देर सोचती रही । फिर उसने सिर उठाकर कहा : मित्ता ?

'देवी !'

'देवी, न कह । तू मुझे कुछ और पुकारा कर । अब मैं देवी नहीं हूँ, तेरी सखी हूँ, तू मेरी रक्षिका है ।'

'देवी, मेरी जीभ काट लो और कुछ मैं आपको कैसे कह सकूँगी ?'

'तुझे मेरी शपथ है ।' राज्यश्री ने कहा ।

'तो क्या कहूँ ?'

'कुछ भी कहा कर । सिता ही सही ।'

मित्तकाली ने एक बार उसकी ओर देखा । लगा मित्तकाली फिर वेदना से रो देगी । किन्तु नहीं राज्यश्री हँस दी । मित्तकाली के होठों पर मुस्कान और आँखों में डबडबाते आँसू दिखाई दिये ।

'सिता !' मित्तकाली ने कहा । उसका स्वर काँप गया ।

'मित्ता !' राज्यश्री ने उसके कपोल पर लटकते रूखे बालों को पीछे करते हुए कहा : चलो ।

'कहाँ ?'

'कहीं भी ।'

'स्थाण्वीश्वर नहीं चलोगी ?'

'नहीं । किसी को बुरा नहीं कहती मित्ता किन्तु अपने भाग्य से ही

डरती हूँ। जिसका पतिगृह नष्ट हो जाता है मित्ता, उस स्त्री के लिये संसार में कोई स्थान अपना नहीं रहता। कान्यकुब्ज अब मेरे योग्य स्थान नहीं है। स्थाण्वीश्वर जाने में डर लगता है। कौन जानता है?'

मित्तकाली ने कुछ नहीं कहा। उसकी अपनी राय यह थी कि पुरुष तो असभ्य होता है, उच्चकुलीन पुरुष हिंस्रपशु होता है। वह फलों में छिपा कर मांस भक्षण करता है और मदिरा के नाम पर रक्त पिया करता है। और स्त्री, चाहे वह दरिद्र हो चाहे वह उच्चकुल की हो, वह दासी होती है, केवल मात्रा भेद होता है। उच्चकुल की स्त्री का पातिव्रत देख कर वह अवश्य डरती थी। हृदय में उसकी आग की गर्मी का अनुभव करती थी, वैसे वह उनके प्रसाधन को देख कर उनकी तुलना सोने के पिञ्जरे में बैठी सारिका से किया करती थी।

उसने राज्यश्री का हाथ पकड़ कर कहा: चलो सिता।

इसी समय निकट ही कुछ अश्वारोही सैनिक दिखाई दिये।

राज्यश्री ने भयाक्रांत हरिणी की भाँति देखा।

'भाग चलो।' राज्यश्री ने कहा।

एक सैनिक दूर से चिल्लाया: अरे वहाँ एक स्त्री है।

तीनों साथी हर्ष से पुकार उठे: पकड़ो, पकड़ो।

राज्यश्री मित्तकाली का हाथ पकड़ कर खींचने लगी। मित्तकाली ने हाथ छुड़ा लिया।

'क्यों मित्ता?'

'भाग नहीं सकते अब। वे अश्वारोही हैं। उन्होंने देख लिया है। तुम भाग जाओ देवी। वे तुम्हारी दुर्दशा करेंगे।'

'और तुझे छोड़ देंगे?'

'मेरी चिंता मत करो। मैं अपनी रक्षा कर लूँगी।' मित्तकाली का मुख और भी दृढ हो गया। उसने फिर कहा: घने वृक्षों में छिप जाओ। यदि मैं आ सकी, तो संध्या तक आ जाऊँगी अन्यथा चली जाना।

'कहाँ ?'

'जहाँ भाग्य ले जाए ?'

'और तू ?'

'मेरी चिंता छोड़ दो।'

राज्यश्री रो दी। मित्तकाली ने उसे पेड़ों की छाया में झाड़ियों के पीछे ढकेल दिया और एक ओर भाग चली। अश्वारोहियों ने देखा और एक ने हँस कर कहा : ठहर जा सुन्दरी, ठहर जा। पैदल क्यों थक रही है, आ मेरे अश्व पर बैठ जा।

और उन्होंने मित्तकाली को घेर लिया। एक सैनिक ने उसे बलपूर्वक उठा कर अपने घोड़े पर रख लिया। मित्तकाली ने उसे काट खाया। सैनिक ने अपने बलिष्ठ हाथों से उसे दो चाटे लगाये। मित्तकाली को चक्कर सा आ गया। वह घोड़े की ग्रीवा पर झुक गई।

'कुण्डल !' एक सैनिक ने कहा, 'मार मत। युवती है। बड़ी कठिनता से तो मिली है।'

'इस गाँव के लोग तो बड़े धूर्त्त हैं। जाने कहाँ छिप गये हैं।' दूसरे ने कहा।

'ले चलो।' तीसरे सैनिक ने कहा, 'गौल्मिक कुण्डल ! गुल्माधिपति तो ऐसी रसीली स्त्री देखकर पागल हो जायेगा।'

'कहाँ जायेगी ?' कुण्डल ने कहा, 'उसके पास से अपने ही पास तो आयेगी ?'

वे मित्तकाली को पकड़ कर बलपूर्वक ले गये। राज्यश्री ने देखा और उसे लगा वह विक्षोभ से पागल हो जायेगी। उसकी इच्छा हुई वह मित्तकाली के लिये प्राण दे दे। कितनी महान् थी वह। उसने मेरे लिये अपना बलिदान दे दिया। राज्यश्री झाड़ी में से निकलकर बाहर आई। उसने देखा अश्वारोही सामने ही टीलों पर चढ़ कर इस समय उतर रहे थे। काफी दूर थे। देखते ही देखते वे टीले के पार उतर गये

और फिर दूर घोड़ों के भागने की आवाज सुनाई दी। राज्यश्री सोचने लगी : क्या उसे जाना चाहिये?

जितना ही वह जाना चाहती थी उसे भय लगने लगा। वे सैनिक भयानक और बर्बर हैं। उनके बीच क्या वह अपनी रक्षा कर सकेगी? जिस समय बलनी के सैनिक धरित्री और स्त्री के सौंदर्य और पवित्रता को लूटते हुए दो राज्यों की डॉवाडोल परिस्थिति का लाभ उठा रहे थे। राज्यश्री फिर सघन वन में छिप गई।

अब उसका कोई सहायक नहीं था। वह अकेली रह गई थी। उसने देखा उसके पाँव लहूलुहान हो गये। चलना असंभव था। वह थक कर वहीं बैठ गई और रोने लगी।

१६

'कौन', दडधर ने पुकारा।

स्कंधावार में इस समय सैनिक विश्राम कर रहे थे। कहीं कहीं उल्काएं फरफरा रही थीं। अभी तक पूरा अंधकार नहीं हुआ था। अपने सुसज्जित शिविर में महाराजाधिराज अपने महाबलाधिकृत सिंहनाद तथा सेनापति स्कंदगुप्त के साथ मंत्रणा मे तल्लीन थे। आज कई दिन हो गये थे। सेना को बहुत समय बाद विश्राम करने का अवसर प्राप्त हुआ था। शशांक कान्यकुब्ज से भागा नहीं था। सेना सहित महाबलाधिकृत भाण्डी ने उसे घेर लिया था। उसकी रसद समाप्त हो गई थी। हर्ष उसे दंड देने जा रहा था।

दंडधर बढ़ा। एक व्यक्ति संमुख आया और उसने दंडधर को कुछ दिखाया। दंडधर ने मार्ग छोड़ दिया। वह कुन्तल था। उसने जाकर शिविर में प्रवेश किया और अभिवादन करके खड़ा रहा।

'कुंतल?' महाराजाधिराज ने कहा।

'देव ! शशांक अभी तक नहीं भागा । किंतु महाबलाधिकृत भाण्डी की शक्ति के सामने उसका ठहरना कठिन है । अब वह संभवतः भाग जायेगा ।'

'तब तो हमें शीघ्र ही कान्यकुब्ज जाना चाहिये ।'

'महाराजाधिराज,' कुंतल ने कहा, 'अपराध क्षमा हो ।'

'अभय', महाराजधिराज ने कहा ।

'देव ! स्वर्गीय महाराज जब मृत्युशैया पर थे तब स्वयं महाराजधिराज ने पिता का समाचार सुनकर तीन दिन तीन रात तक बिना अन्न ग्रहण किये यात्रा की थी । और उस समय तक आपने व्याघ्र और हिंस्रपशुओं से पूर्ण वन को रिक्त कर दिया था । किंतु इस समय उसकी आवश्यकता नहीं । सूचना मिली है कि महाराज शशाक भागने ही वाला है ।'

'किन्तु उसका भाग जाना ही तो हमारा लक्ष्य नहीं है कुंतल । उसे पकड़कर दण्ड देना हमारा उद्देश्य है ।'

विवाद छिड़ गया ।

'कामरूप से समाचार आया ?'

'देव ! अभी नहीं ।'

दंडधर ने प्रवेश करके सूचना दी : देव ! कामरूप से दूत का आगमन हुआ है ।

महाराजधिराज ने हर्ष से हाथ उठा दिया । दंडधर चला गया । उत्सुकता से सब लोग प्रतीक्षा करने लगे । दूत ने प्रवेश किया । उसने हर्ष को पहचान कर सादर अभिवादन किया ।

'देव !' दूत ने कहा, 'दास का नाम हंसवेग है ।'

'उचित ही तो दूत का शुभ नाम है,' सेनापति सिंहनाद ने हँसकर कहा ।

हंसवेग ने प्रणाम करके एक पत्र प्रस्तुत किया ।

कुंतल उल्का को समीप ले आया। सिंहनाद ने पढ़ा और उसके मुख पर आनन्द दिखाई दिया। उसने उसे धीरे-धीरे पढ़ कर सुना दिया।

महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन सुनकर उठ खड़े हुए। उन्होंने अपना खड्ग निकालकर हस वेग की ओर बढ़ाते हुए कहा : महाराज भास्कर-वर्मन् ने हमारी मित्रता को स्वीकार किया है दूत। पुष्यभूतिवंश अपनी शक्ति उन्हें सहायता में देने को तत्पर है।

दूत ने अभिवादन करके खड्ग को ले लिया और फिर खड्ग लेकर अभिवादन किया। फिर सब बैठ गये।

दूत के चले जाने के बाद महाबलाधिकृत स्कंदगुप्त उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा : महाराजाधिराज! इस समय अपनी शक्ति बहुत बढ़ गई है।

'सेना से कहो,' महाराजाधिराज ने कहा, 'कूच की तैयारी करें।'

'देव!' द्वार पर फिर दंडधर का स्वर सुनाई दिया।

'कौन?' कुन्तल ने पूछा।

'देव! एक चर प्रस्तुत है।'

'उपस्थित करो।' सेनापति सिंहनाद ने उत्तर दिया।

लंबी आकृति का एक व्यक्ति भीतर घुसा। कुन्तल ने एकदम कहा : कौन पिंगल?

पिंगल की आँखें पीली थीं, जैसे बिल्ली की होती हैं। उसने अभिवादन किया।

पिंगल की ओर हर्षवर्द्धन की आँखें उठीं। उसने झुक कर कहा : देव! संबाद अत्यन्त शुभ है।

'शीघ्र कहो', महाबलाधिकृत ने अधीरता से कहा।

'देव! महाराज शशांक भाग गये। कहीं उनका पता नहीं चला। अनुमानतः वे गौड चले गये हैं।'

'तब मैं उसे गौड तक नहीं छोड़ूँगा,' महाराजाधिराज ने उद्वेग से कहा।

'और ?' सेनापति सिंहनाद ने आगे की बात पूछी।

'और देव ! महाराज भास्करवर्म्मन ने शशांक के विरोध में कहा जाता है, कोई अवरोध उपस्थित किया है। कर्णसुवर्ण के शासक के विरुद्ध राजा भास्करवर्मन सन्नद्ध हैं।'

महाराजाधिराज की मुखाकृत पर कोई भाव प्रगट नहीं हुआ।

चर ने फिर कहा : देव ! मुझे यह संवाद भी ज्ञात हुआ है कि शशांक ने पहले देवगुप्त से संधि कर ली थी। उसने फिर छल करने को हमसे संधि की। देवगुप्त का जब स्वर्गीय महाराज राज्यवर्द्धन ने वध किया तो शशांक को यह असह्य हो गया। उसने उस समय कुछ भी नहीं कहा। अपनी कन्या का विवाह महाराज से करने की प्रार्थना की। महाराज ने स्वीकार कर लिया और निरस्त्र उसके यहाँ चले गये, वहीं उसने अत्यन्त निर्दयता से उनकी हत्या कर दी।

उस समय क्रोध की हुंकार सुनाई दी और खड्ग खड़खड़ाये। चर कहता गया : देव ! महाबलाधिकृत भाण्डी ने कान्यकुब्ज पर अधिकार करके नगर वहाँ के राजमंत्रियों के हाथ सौंप दिया है जो इस समय वहाँ प्रबन्ध कर रहे हैं। कान्यकुब्ज को एक शासक की आवश्यकता है।

चर की बात रुक गई। फिर उसने धीरे से कहा : देव ! प्रजा अब मौखरियों के स्थान पर पुष्यभूतिवंश का शासन चाहती है।

'चर !' हर्षवर्द्धन ने मुड़ कर कहा, 'तुम जानते हो, यह तुमने क्या कहा ?'

'देव !' चर ने झुक कर कहा, 'प्रजा और मंत्री यही चाहते हैं।'

'तो यह नहीं होगा चर', महाराज ने कहा, 'वह स्थान तो राज्य-श्री का है।'

'किन्तु महाराजाधिराज ! देवी का कोई समाचार नहीं है।'

'कैसे भी हो। उन्हें ढूंढना होगा।'

'देव! समस्त प्रयत्न अभी तक असफल रहे हैं।'

महाराजाधिराज चुप हो गये।

दंडधर ने फिर आकर कहा: देव! एक गुप्तचर उपस्थित है।

'तुमने उसका प्रमाणपत्र देखा था?' कुन्तल ने पूछा।

'देव! देखा था। ठीक है।'

'भेज दो।'

चर ने आकर जब मर्यादा समाप्त की, उसने झुक कर कहा: देव! समाचार गोपनीय है।

'मार्त्तंड!' सेनापति सिंहनाद ने कहा, 'यहाँ सब गोपनीय ही है। शीघ्र कहो।'

'देव!' मार्त्तन्ड ने अटक-अटक कर कहा, 'विंध्य श्रेणियों के पास कल हमारे सैनिकों ने एक स्त्री को वलभी के उत्पाती सैनिकों से छुड़ाया। वलभी के सैनिकों ने बलात्कार करके उस स्त्री को मृतप्राय कर दिया था।'

'मार्त्तंड!' महाराजाधिराज ने क्रोध से गर्जन किया। 'स्त्री का यह अपमान! मैं वलभी के गर्व को खंडित कर दूंगा। ध्रुवभट्ट का इतना बर्बर अत्याचार!'

'महाराज!' सेनापति सिंहनाद ने संयत स्वर से कहा, 'संभवतः यह सैनिकों की बर्बरता हो।'

'कहो!' हर्ष ने मार्त्तंड से कहा।

'देव! उस समय हमने उसे पाया, वलभी के सैनिक भाग गये। उन्होंने गाँवों को जला कर उजाड़ दिया।'

हर्ष फिर क्रोध से काँप गया।

'वह स्त्री कहाँ है?' हर्षवर्द्धन ने पूछा।

'देव! वह मर गई।'

'मर गई !' हर्षवर्द्धन का स्वर अचानक उठ गया। वह विचलित दिखाई दिया। फिर उसने सिर झुका कर कहा : मर गई।

'देव !' मार्त्तंड ने कहा, 'मरने के पहले उसने कहा—मेरा नाम मित्तकाली है। मैं मालव देवगुप्त के अंतःपुर की दासी थी। मेरे साथ देवी राज्यश्री......'

'राज्यश्री !' महाराजाधिराज ने चौंक कर पूछा।

'देवी राज्यश्री !' सेनापति ने भी चौंक कर कहा।

'मार्त्तण्ड,' भारी स्वर से महाबलाधिकृत ने पुकारा और उठ खड़े हुये।

'देव ! इसके उपरांत,' मार्त्तंड ने कहा, 'वह स्त्री मर गई। उसका गला भर्रा गया। हमने उसके कंठ में पानी डाला, किन्तु वह और कुछ भी नहीं कह सकी। तब हमने देखा वलभी के एक सैनिक ने जब जान लिया कि वह स्त्री उनसे छिन जायगी, तब क्रोध से उसकी पसली में खड्ग का वार कर गया था।'

महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन ने सामने टँगी तलवार उठा ली और उसे अपने शिरस्त्राण से छुलाया। उनकी देखादेखी सबने मित्तकाली को अन्तिम अभिवादन किया।

केवल महाराजाधिराज के मुख से निकला : वलभी ! राज्यश्री !

'देव !' चर ने कहा, 'हमने विंध्य के चारों ओर सैनिक फैला दिये हैं। देवी वहीं होंगी।'

हर्ष आतुर हो उठा। उसने कहा : सेनापति ! वाहिनी को चैतन्य करो।

'तो क्या देव ! इसी समय चल पड़ेंगे ?'

'नहीं तो क्या सौराष्ट्र पहुँच सकेंगे ?'

'देव ! पहले विंध्यवन ढूंढ़ लिया जाये।'

'विंध्यवन मार्ग मे है महाबलाधिकृत ! उसके लिये इतनी चिंता की आवश्यकता नहीं।'

२०

पावस आ गई थी। आकाश में दल के दल मेघ एकत्र होने लगे थे। काले घुमड़ते मेघ अनेक पशुओं का आकार धर कर ऐसे भागते जैसे कीचड़ में सने अनेक वराह यूथ फुफकारते निकल कर चल पड़े हों और उनके सींग जैसे दाँत बन कर जब बिजली चमकती तो प्रतीत होता कि एकाएक वराह यूथ में भगदड़ मच गई है। एकाएक गगन हिलने लगता और निनाद करता हुआ वज्र ठनकता, तब उसकी रोर दिगंत में फैलती, निस्तब्धता का आँचल जैसे-जैसे फैलने लगता, तब लगता सब कुछ गिरि-कन्दराओं में सिमट गया है और अब धीरे-धीरे उमंगता उनमें से गिर रहा है।

वन हरिया गया था। मरकत से श्यामल पत्ते धुल गये थे। सघन वृक्षपत्तियों का वह स्निग्ध सौंदर्य अपने अनेक-अनेकर तरों में शबलित-सा अब कान्तार में जीवन का संचार कर रहा था। वृक्षों पर कुहुकती कोयल का वह टीस भरा स्वर जब दूर-दूर तक व्याप्त हो जाता तब लगता एक अतीन्द्रिय वासना से समस्त वन अकुला उठा है।

मृग दौड़ने लगे थे। उनके शावक चपलता से इधर-उधर फुदकते और बड़े-बड़े नयनों से हिरनियाँ उन्हें देखतीं। तनिक भी आहट पर चकित दृष्टि डालती और फिर वीरवधूटियों से भरी नर्म दूबि में अपना मुख डाल देतीं। उनके निकट ही बरसात का हरहराता पीला-सा पानी वृक्षों की जड़ों को रगड़ता, बहता और मंडूकदल उसमें डूबता उतराता बहने लगता।

उस विंध्य की सघन वृक्षावलियों में एक तरुण गा रहा था। वह

गौरवर्ण था, उसके शुभ मस्तक पर चंदन से त्रिपुंड बना हुआ था। उसके मुख पर एक लावण्य था, वह एक अधोवासक, कञ्चुक और उत्तरीय के अतिरिक्त कोई वस्त्र धारण नहीं किये था। चरणों में हल्के जूते थे। उसके नेत्रों में एक गुलाबी थी, जैसे वह अपने आप में मुग्ध था। ऊपर से मुस्कराते और शात दिखने वाले व्यक्ति प्रायः भीतर उतने ही अधिक अशांत और व्याकुल रहते हैं। यही उसका भी हाल था। गीत की प्रिया बहुत दूर थी, संभवतः अलकापुरी में और वह तरुण अत्यन्त वेदनामय स्वर से विह्वल होकर प्राचीन कवि की कल्पना को अपनी वेदना में साकार कर रहा था। कालिदास की वह अमर याचना मेघों से टकराने लगी और मेघ उसके ताप से अब व्याकुल होने लगे। वेदना के ताप पर घुमड़ हुई, फिर आँसू से छलक आये।

गाते-गाते वह विभोर हो उठा। दूर अब प्रिया रोते-रोते बेहाल हो गई, उसे देख कर विद्युत दृष्टि को मंदिम करके क्षण भर मेघ ने आर्द्र-हृदय होकर देखा था।

बूँदें गिरने लगीं। वह चैतन्य हुआ। चारों ओर मेघों का अंध-कार छाने लगा था। कवि ने देखा। वह हँसा। उसने अपना उत्तरीय कंधे पर डाल लिया।

जब मूसलाधार वृष्टि होने लगी, कवि हँसते हुये ही कह उठा : चलो बाणभट्ट! तुम महाकवि कालिदास नहीं हो। उसकी आवेदन सुनकर मेघ विचलित हुआ था, तुम्हारा गीत सुनकर उसे रोना आ रहा है।

तरुण अपना घोड़ा ढूँढ़ने लगा।

अधिक प्रयत्न नहीं करना पड़ा। निकट ही तुरंग चर रहा था, हरी घास में मस्त होकर घूम रहा था। बाणभट्ट ने उसे पुचकारा तो वह श्वेत अश्व एक बार हिनहिनाकर निकट आ गया। बाणभट्ट ने उसके कंधे को थपथपाया।

जब वह चला गया झाड़ी के पीछे से एक स्त्री निकली और चलने

लगी। वह न जाने कहाँ से चलती चली आ रही थी। इस समय उसे यह भी ध्यान नहीं था कि उसके कपड़े फट गये थे और उसका शरीर उनमें से दीख रहा था। वर्षा ने उसे भिगो दिया था। पानी की बूँदें उसके मस्तक से लुढ़क कर नीचे गिर रही थीं। उसका सिर उठा हुआ था, किन्तु पाँवों से रक्त की बूँदें चुचा रही थीं। वस्त्र भीग कर शरीर से चिपक गये थे और भारी हो गये थे। किन्तु युवती चलती रही, चलती रही, निरुद्देश्य सी, शांत, पराजित सी.........

चलते-चलते उसे दूर दीपक का प्रकाश दिखाई दिया।

वह प्रकाश देखकर ठिठक गई। तो इसका अर्थ हुआ कि इस विजन विपिन का भी संसार के किसी कोने में जाकर अन्त में अन्त आ ही गया। रमणी कुछ देर खड़ी सोचती रही। क्या उसे वहाँ जाना चाहिये? वह काँप उठी। फिर उसे याद आया। वह भूखी थी। इस विचार ने उसके शेष चिंतन को ढँक लिया।

उसके पाँव जल्दी-जल्दी उठने लगे। हृदय में एक आवेश छा गया। मनुष्य की भूख उसके स्त्री-पुरुष के भेद को भी ढँक देती है, जब दोनों की सत्ता का केन्द्र और एकता—भूख—भूख सब पर छा जाती है। प्रकाश निकट आने लगा।

उसने धीरे से द्वार थपथपाया।

'कौन है?'

स्त्री का हृदय थर्रा गया। यह किसी पुरुष का स्वर था, पानी बरसना बन्द हो गया था। ठंडी हवा चलने लगी थी, जो गीले वस्त्रों में लग कर स्त्री को कँपाने लगी थी, कुटीर के वातायन से किसी ने कौतूहल से झाँक कर देखा। उसने देखा, उसे विश्वास नहीं हुआ। अत्यन्त सुन्दरी युवती थी।

'एक गृहहीन भिखारिन' स्त्री ने याचना से गिड़गिड़ा कर कहा।

'क्या चाहती हो?'

'भोजन ।'

द्वार खुल गया। स्त्री क्षण भर ठिठकी। फिर साहस करके भीतर घुस कर लिपी-पुती भूमि पर बैठ गई। उस समय एक पुरुष की दृष्टि अपने ऊपर गड़ी देखकर उसने अपने वस्त्रों से अपने को ढँकने का आतुर प्रयत्न किया। वह एक आखेटक भिल्ल था।

भिल्ल ने देखा। स्त्री अत्यन्त थकी हुई थी।

'थक गई हो?'

'बहुत।'

'बैठ जाओ। मैं भोजन लाता हूँ।' भिल्ल ने सांत्वना दी, किंतु स्त्री चौकन्नी सी देखती रही।

वह चला गया। उसके जाने के बाद स्त्री ने अपने वस्त्रों को बाहर आकर निचोड़ कर फिर पहना। अब वे फिर मर्यादा को ढँक सकते थे।

थोड़ी ही देर में अनेक भिल्लनियाँ आ गईं। उन्होंने उसके संमुख चार रोटियाँ और कुछ दूध रख दिया। स्त्री बकरी के दूध में रोटी भिगो-भिगो कर खाने लगी। उसकी आतुरता को देखकर एक बूढ़ी ने पूछा: बहुत दिन की भूखी हो?

'हाँ।' स्त्री ने कहा और जल्दी-जल्दी खाने लगी। जब वह खा चुकी उसने एक अंगड़ाई ली और स्त्री खाकर सो गई।

'बहुत थक गई है।' एक भिल्लनी ने कहा।

'है किसी राजकुल की स्त्री।'

'विपत्ति में पड़ गई है।'

भिल्ल परस्पर सलाह करते रहे। उनकी समझ में नहीं आया कि अब क्या किया जाये? स्त्री के प्रति भिल्लों में उसकी मर्यादा का अत्यन्त गौरव था। वे किसी से बलात्कार या अन्याय नहीं करते थे। कुछ देर सलाह करने के बाद भिल्लनायक उन्हें कुछ समझाने लगा।

एक भिल्ल दौड़ कर अंधकार में छिप गया। उसके हाथ की उल्का

का प्रकाश थोड़ी देर तक दिखा, फिर वह पेड़ों की घनी हरियाली में छिप गई। उसकी भारी पगध्वनि भी दूरी में जाकर लय हो गई।

उसके चले जाने पर भिल्ल नायक ने कहा। मुझे लगता है, हो न हो, यह वही है।

दूसरे भिल्ल ने कहा : तो फिर इतनी चिंता क्या? संवाद तो भेज ही दिया है।

भिल्लों को संतोष हो आया। वे अपने अपने घर चले गये और सोने का उपक्रम करने लगे।

प्रभात की उज्ज्वल बेला प्रकट नहीं हुई। मेघों ने आकाश को फिर घुमड़ कर ढँक लिया। ठंडी हवा के एक झोंके ने उस स्त्री को जगा दिया। वह रात भर वहीं पड़ी रही थी। अब उसके शरीर में कुछ पीड़ा हो रही थी। थकान भी आराम के बाद ही सताती है। उसके पास कोई नहीं था।

स्त्री उठ खड़ी हुई। उसने कुटीर के बाहर आकर देखा कुक्कट जाग कर बाँग दे रहा था। एक बूढ़ी भिल्लनी जाग कर बाहर आ गई थी। उसने इस स्त्री को निकलते देखा और वह उसके समीप आ गई। उसने अत्यन्त स्नेह से उसे अब मुस्करा कर देखा और उसके नेत्रों में एक करुण छाया दिखाई दी। उसने स्त्री का हाथ पकड़ कर कहा : देवी! कहाँ जाओगी?

'जहाँ भाग्य ले जायेगा।'

'तुम आई कहाँ से थीं?'

'मैं क्या जानूँ?'

भिल्लनी ने आश्चर्य से देखा और उसके नेत्रों का कौतूहल जब अधिक फैल गया, स्त्री मुस्कराई।

'क्यों?' स्त्री ने कहा, 'मैं तो ऐसे ही चलती रहती हूँ।'

'क्यों! तुम्हारे घर नहीं है?'

यहीं विश्राम करो ?' वृद्धा ने कहा। यह उसे और भी एक बात लगी कि स्त्री भी गृहहीन हो सकती है। वृद्धा ने फिर ...ल छा रहे हैं, देखती हो न ? कौन जाने कब आकाश में आग लगे और कब भगवान उसे बुझाये। एकांत में अब कहाँ जाओगी। वन का मार्ग भयानक है।

स्त्री कुछ सोचने लगी।

'नहीं जाओगी न ?' वृद्धा ने कहा।

'मैं कैसे कहूँ ?' स्त्री ने पूछा।

वृद्धा हँसी। उसने कहा : कल चली जाना।

भिल्ल दल बाँध कर आ गये थे। उनके सिर पर पंख बंधे थे। कटि पर भी पंखों की सज्जा थी। कुछ स्त्रियाँ पत्तों से अपने शरीर को ढँके हुए थीं। उन सबका रंग काला था। किंतु छरहरे और सुगठित शरीर थे। माथे पर स्त्रियाँ पर खोंसे हुए थीं। कुछ के वक्षस्थल ढँके थे, कुछ के खुले ही थे।

नृत्य प्रारम्भ हो गया। यह स्त्री पुरुष का समवेत नृत्यगीत था। उनके अपने अद्‌भुत वाद्य थे, जिनकी लय-ताल पर वे एक निर्भयता से नृत्य करते थे, सब कुछ एक वेगमय क्रिया थी, नृत्य एक अनवरत अंग-चालन था, उसमें मुद्रा नहीं थी। कोलाहल अत्यधिक था। वे सब प्रसन्न और मत्त थे। वृद्धा स्त्री को लेकर उस स्थान के समीप ही बैठ गई।

स्त्री निर्विकार सी देखती रही। उसका चित्त शांत हो गया था। धीरे धीरे उस जंगली नृत्य ने अपनी मनोहारिता को प्रगट किया। उसमें सम की अद्‌भुत शक्ति थी। स्त्री पर उसका प्रभाव पड़ा जैसे संपेरे की तीक्ष्ण स्वर से बजती हुई बीन भी अपने एकरस उतार-चढ़ाव

में श्रोता का हृदय अपने में बाँध लेती है और उसका सिर हिलने लगता है। नृत्य समाप्त हो गया।

संध्या होने लगी थी। इस समय मेघ फट गये थे और आकाश में ताँबा उतर आया था, कहीं कहीं सोने की झांईं पड़ती थी, जो नीचे के तालों पर अधलेटी सी चमकती और फिर उन पर पक्षी दल पंख फैला कर उड़ जाते। स्त्री चौंक उठी। इसी समय उसने देखा कि असंख्य भिल्लों ने दूर से कोलाहल किया। और कोलाहल अब क्षण क्षण समीप आने लगा। स्त्री ने देखा कि उनको देख कर यहाँ के भिल्लों के मुख पर रहस्यमय हर्ष काँपने लगा।

स्त्री घबरा गई। उसने भिल्ल नायक से कहा: नायक! मै जाऊँगी।

'क्यों देवी?' नायक ने प्रश्न किया।

'नहीं मैं जाऊँगी,' स्त्री ने उठ कर कहा, 'मुझे जाने दो, मुझे रोको मत, मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ।' उसके स्वर मे दयनीय करुणा थी।

भिल्लनायक ने उन्नत मस्तक होकर कहा: हम स्त्री से छल नहीं करते देवी। भिल्ल जाति स्त्री की मर्यादा के नष्ट करने वाले को सबसे बड़ा पापी समझती है।

उसके मुख की दृढ़ता ने पुकार कर आश्वासन दिया। स्त्री रुक गई। वृद्धा भिल्लनी आगे बढ़ी। स्त्री का हृदय फिर भी आतंक से भरा था। कौन हैं यह लोग जो इतने वेग से बढ़ते चले जा रहे हैं। हैं सब कालेकाले भील ही हैं। उनमें स्त्रियाँ भी हैं। स्त्री को इससे भी आश्वासन नहीं हुआ।

भीड़ पास आती जा रही थी। स्त्री सोचने लगी: क्यों वे मुझे पकड़ने आ रहे हैं? क्या मै भाग चलूँ? फिर उसने सोचा: क्या मैं इतने लोगों के बीच से भाग सकती हूँ। क्या यह सब देवगुप्त के आदमी हैं। भय से उसके रोंगटे खड़े हो गये। क्या मुझे ये वहीं ले

जायेंगे ? एक वृद्ध आगे आगे आ रहा था। स्त्री ने देखा, उसके केश श्वेत थे। वह गम्भीर था। मुखाकृति अभी स्पष्ट नहीं दिखती थी। वह तो निश्चय ही भिल्ल नहीं था। तब ?

स्त्री के नेत्रों में बीभत्सा थर्रा उठी। उसने नेत्र मूँद लिये। इस समय तक भिल्ल समुदाय और निकट आ गया था। वृद्ध ने पुकारा : पुत्री !

स्त्री ने चौंक कर आँखें खोलीं। वृद्ध मुस्करा रहा था।

स्त्री ने पहचाना और वह आगे बढ़कर वृद्ध के पैरों पर गिर कर रोने लगी।

'गुरुदेव !' स्त्री ने हिचकियों के बीच में कहा, 'गुरुदेव ! उस आर्द्र-विह्वल स्वर में एक करुणा इतनी तीक्ष्ण हो गई कि ममता के पाश कस गये, हृदय उनमें छटपटाने लगा और वृद्ध की आँखों में भी आँसू आ गये। स्त्री के रोने का कोई अंत नहीं था। आज वह अपने हृदय की समस्त वेदना को उडेल देगी, दुख जो पत्थर बनकर छाती में जम गया था, पिघलने लगा।'

'कब से ढूँढ़ रहा हूँ पुत्री', वृद्ध ने भर्राये स्वर से कहा, 'अनेक दिन, अनेक रात्रियाँ ही व्यतीत हो गये। राज्यश्री ! तू कहाँ चली गई थी।'

सुबकने वाला रुदन जो क्षण भर पहले कुछ थम गया था, अब फिर उमड़ा।

राज्यश्री की रोते रोते हिचकी बँध गई।

वृद्ध ने स्नेह से कहा : पुत्री !

राज्यश्री ने आँसू भरे दृग उठाये।

वृद्ध ने कहा : रो मत राज्यश्री। सब पर विपत्ति आती है। फिर वृद्ध ने मुड़ कर कहा : इन्हीं के कारण तू मिल सकी है, राज्यश्री।

आटविकों ने मुझे रात ही में संवाद दिया था। मैं तब से चला ही आ रहा हूँ।

भिल्लनायक सामने आ गया। उसने हाथ जोड़ कर कहा : गुरु-देव ! देवी वही हैं।

वृद्ध ने कहा : कपोत ! वही हैं यह देवी वही है। मौखरी कुल की महारानी है, पुष्यभूति की कन्या है। देखते हो क्या हाल हो गया है ! लहूलुहान पाव वाली, अर्द्धनग्न, भूखी, प्यासी, जो विधवा तुम्हारे संमुख उपस्थित है, वह वन वन मे भटक रही है···उसका तुम्हारे अतिरिक्त और कोई रक्षक नहीं है···

भिल्लनायक का सिर वृद्ध के चरणों पर झुक गया। उस समय जैसे हृदय का भय दूर हो गया था। राज्यश्री के मुख पर मुस्कराहट दिखाई देने लगी।

२१

वलभी का राजा ध्रुवभट्ट इस समय सिर उठा रहा था। हर्षवर्द्धन अल्पज्ञानी होगा, यह उसका विचार था। इतनी कम आयु का व्यक्ति क्या इतना सब सँभाल सकेगा, इस विचार ने उसे उच्छृंखल बना दिया था। वह अपना राज्य इस समय बढ़ा लेना चाहता था। सामंतों को उसके इंगित पर छूट मिल गई थी। वे चारों ओर मनमानी करने लगे थे और उनके स्वेच्छाचार से प्रजा घबरा गई थी। ध्रुवभट्ट के पास यह समाचार जब पहुँचा तो वह समझा कि सफलता अत्यन्त निकट है। उसने जब सुना कि महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन ने उस पर आक्रमण कर दिया है उसकी प्रसन्नता का पारावार उमड़ा। उसने अपने आमात्यों को बुला कर परामर्श किया और यह निश्चय हुआ कि इस बार यदि

हर्ष को पराजित किया जा सकता है, तो समस्त उत्तरापथ पर अपनी विजय पताका फहराई जा सकती है।

वह सेना लेकर आ डटा। उसके पास रणविद्या में भेजे हुए सैनिक थे। नई लूट की आशा में वे मस्त होकर व्याघ्रों की भाँति गरजने लगे। उनके शिविरों में वेश्याएँ नृत्य करने लगीं और मदिरा की नदियाँ बहने लगीं। निकट ही के ग्रामों की तरुणियाँ बलात पकड़ कर लाई जाने लगीं।

सेनापति सिंहनाद ने सेना को तीन भागों के विभाजित करके शत्रु पर तीन ओर से आक्रमण करना निश्चित किया। उसका विचार था कि इस प्रकार शत्रु सेना एक प्रकार से बीच में घिर जायेगी और उससे आसानी से शस्त्र समर्पण करवा लिया जायेगा।

उस समय युद्ध में रथों को व्यर्थ समझ कर महाराजाधिराज हर्ष-वर्द्धन ने त्याग दिया था। उसकी सेना में अश्वारोही बहुत थे, जिनके कारण वह लंबे-लंबे रास्ते शीघ्रता से पार कर लिया करता था। पदातिक पीछे-पीछे चलते थे। पहला आक्रमण अश्वारोही पूर्ण वेग से करते और शत्रु को बौखला देते। उस समय पदातिक हवा की भाँति प्रवेश करते और अश्वसेना द्वारा की हुई दाँय पर वेग से चलकर शत्रु के साहस को भूँसे की भाँति उड़ाने लगते और इस प्रकार पराजय के बोरों में भर कर उसे बाँध देते। हर्षवर्द्धन के अश्वारोही जिस समय वलभी के निकट पहुँच चुके थे उसके पैदल सैनिक विंध्य की ओर मुड़ चले। वन का पथ पार करने में उन्हें आखेटक सहायता देते थे। इसलिये भिल्लनायकों को पुरस्कार दिया जाता था। यह भिल्लनायक एक बार स्वामिभक्ति स्वीकार करने के उपरांत कभी विचलित नहीं होते थे।

एक भिल्ल भागा जा रहा था। वह वन के पथ को पहचानता था। वह ऐसे भाग रहा था जैसे एक अत्यन्त आवश्यक कार्य में रत है। भागते-भागते उसकी पेशियाँ फूल गई थीं और वन के एकांत ने उसे

तनिक भी भयभीत नहीं किया था। एक ध्येय, 'एक लक्ष्य होकर वह पेड़ों और झुरमुटों को पार करता, अपनी पगध्वनि सुनता हुआ नीरव वन में भागता चला जा रहा था। उसके हाथ में भल्ल था, जो उसके भागते में उसकी बगल में आगे पीछे चलता था जैसे हवा पर नितन्तर साधना करता जा रहा हो।

रात्रि के समय वह ग्राम मे पहुँचा। पहुँच कर वह रुक कर सांस भी नहीं ले सका, उसने तुरंत एक घर जाकर द्वार खटखटाया।

ग्राम के घर दूर-दूर बसे हुए थे। बाहर की ओर छोटे उद्यान थे, फिर कच्चे लिपे हुये घर थे। घड़े तोड़ कर भीतों में लगा कर वातायन बना दिये गये थे। उनमें से एक में से प्रकाश आ रहा था। एक भिल्ल भीतर से निकला।

भिल्ल ने अपना संवाद दूसरे भिल्ल को सुनाया। दूसरे भिल्ल ने सिर झुका कर सुना और तुरंत भल्ल लेकर कुटीर से निकल आया। उसने अपनी स्त्री से कुछ कहा जा आगंतुक भिल्ल के समीप आ गई। और इससे पहले कि वह आगंतुक को लेकर घर के भीतर जाती दूसरा भिल्ल भाग चला।

यह भिल्ल अंधकार मे ही दौड़ चला। वन के हिंस्र पशुओं की डकराहट और गर्जन कभी-कभी हृदय को दहला जाते थे, किंतु वह अपने पथ पर भागता रहा।

दूसरे भिल्ल ने तीसरे भिल्ल को सुना। अब वह भाग चला। एक दूसरे से होता हुआ इस प्रकार संवाद प्रातःकाल के समय उपसीम ग्राम मे पहुँच गया।

उपसीम के भिल्लों ने जब सुना तब एक व्यक्ति उनमें से आगे भाग चला। कुछ सैनिक वन मे घोड़ों पर घूम रहे थे। उन्होंने भिल्ल को भागते देखा तो आश्चर्य हुआ।

'कोई दूत प्रतीत होता है बन्धुक !' एक ने माथे पर हाथ लगा कर कहा, 'उसे रोकना चाहिये।'

भागते हुए भिल्ल को सैनिकों ने रोक लिया। भिल्ल ने रुक कर कहा : तुम कौन हो ?

'तू कौन है ?' एक सैनिक ने पूछा।

'मैं एक भिल्ल हूँ।'

'कहाँ जा रहा है ?'

'अगले भिल्ल ग्राम में जा रहा हूँ। वहाँ मेरी स्त्री मृत्यु शैय्या पर पड़ी है। मुझे तुरंत पहुँचना है।' उसकी बात सुनकर सैनिक हट गये। भिल्ल को उनकी शिष्टता पर आश्चर्य-सा हुआ ! 'तुम किसके सैनिक हो ?' उसने पूछा।

'क्यों ?' बंधुक ने पूछा, 'तुम्हारा तात्पर्य ?'

'अच्छा तुम भयभीत हो,' भिल्ल ने हँस कर कहा।

'महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन के', बंधुक ने चेत कर कहा, 'भिल्ल, तुमसे हम भयभीत हों, ऐसा समय तो निश्चय नहीं आया है ?'

भिल्ल प्रसन्न हो उठा। उसके सफेद दाँत उसके काले मुख पर चमक उठे। उसने कहा : सैनिक ! मुझे महाराज के पास ले चलो।

सैनिकों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। बंधुक ने कहा : तू तो पत्नी के पास जा रहा था ?

'वह तो एक चाल थी।' भिल्ल ने आतुर होकर कहा।

'महाराज सौराष्ट्र गये।' सैनिक ने घोड़ा पीछे हटा कर कहा। 'बंधुक ! चलो ! यह भिल्ल व्यर्थ समय नष्ट कर रहा है। चाल थी !' सैनिक हँसा : अब यह भिल्ल भी चतुर बन गया।

भिल्ल कुछ निराश सा दिखाई दिया। सैनिकों को घोड़े हटाते देख कर वह चुप नहीं रह सका। उसने कहा : सुनो, सुनो।

'क्या है ?' बंधुक ने पूछा।

'मुझे एक अश्व दो। और मेरे साथ चलो।'

'क्यों?'

'मुझे उन्हें एक गुप्त संवाद देना है।'

सैनिक चिंता में पड़ गये। वे एक दूसरे का मुँह देखने लगे। उनके संशय से भिल्ल घबरा उठा।

कुएं पर कोई स्नान कर रहा था। स्नान करके वह उठा, उसने सूर्य के अर्घ्य दिया और फिर अपने गीले वस्त्र उतार कर राजसी वेष धारण करने लगा। भिल्ल देखता रहा।

उन्नत भाल दीप्त मुख वाला वह व्यक्ति पास आ गया। उसने कहा: बंधुक!

'प्रभु!'

'यह कौन है!'

भिल्ल ने उसको उच्चकुलीय समझ कर उससे कहा: मेरा नाम शंख है।

'शंख!' उस व्यक्ति ने कहा, 'परिचय दो।'

शंख ने धीरे से झुक कर उसके कान में कुछ कहा जिसे सैनिक नहीं सुन सके। भिल्ल कहता जाता था और उस व्यक्ति का रंग बदलता जा रहा था। सैनिकों ने देखा भिल्ल की बात का उस पर गहरा प्रभाव पड़ रहा था।

बात कह कर भिल्ल पीछे हट कर उसका मुख देखने लगा। और आश्चर्य से सबने देखा उस व्यक्ति को सुनते ही जैसे चक्कर आ गया। फिर वह संभल गया। एक क्षण तक वह कुछ चुपचाप सोचता रहा। भिल्ल की ओर मुड़ कर वह घूरता रहा। फिर उसने कहा: मेरे साथ चलोगे?

'चलूँगा।'

एक इंगित पर सैनिकों ने दो घोड़े खाली कर दिये। उस व्यक्ति के सवार हो जाने पर भिल्ल घोड़े पर सवार हो गया।

'बंधुक', उस व्यक्ति ने कहा, 'समाचार शुभ है। यदि सफलता हुई तो इससे बढ़ कर कोई काम नहीं।'

देखते ही देखते, दोनों सामने के वृक्षों में छिप गये। सैनिक अब तक स्तंभित से खड़े थे। आगन्तुक भिल्ल ने आखिर क्या कहा था। तब एक सैनिक ने बढ़ कर कहा : कुछ तो मंगल ही हुआ है।

उनके जाने के बाद सैनिकों ने उत्सव मनाना प्रारंभ किया। वे मदिरा पीने लगे। एक सैनिक उठ कर मत्त होकर नृत्य करने लगा।

उनका कोलाहल सुन कर निकट के ग्रामवासी भी आ गये। एक ग्रामीण ने पूछा : क्यों क्या बात हो गई ?

'आनंद का विषय है', सैनिक ने कहा, 'आज नृत्य होने दो, निरंतर।'

आनंद के मारे ग्रामवासी भी नहीं सोये। वलभी के सैनिकों से मुक्ति दिलाने वाले इन सैनिकों के साथ वे आनंद में मग्न हो गये। ग्राम की दो वेश्यायें आ गईं और सैनिकों को गा-गा कर, नाच-नाच कर मदिरा पिलाने लगीं। फिर क्या था। समस्त स्त्री-पुरुष अत्यंत कोलाहल करके समवेत नृत्य करने लगे। सैनिक देख कर हो-हो करके हँसते फिर वे भी नशों में झूमते हुए उनकी नकल करने का प्रयत्न करते। ग्रामीण स्त्रियाँ यह देख कर खूब हँसतीं। इसी प्रकार थक कर वे सब सो गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल वह भिल्ल प्रतीक्षा करते-करते थक गया जिसने शंख को सूचना दी थी। क्या कारण था कि शंख अभी तक नहीं लौटा था ? क्या उसे किसी शत्रु ने मार डाला। शंख की स्त्री आतुरता से नवागन्तुक को सात्वना देती रही। किन्तु जब दूसरा दिन भी व्यतीत हो गया तब प्रतीक्षा उसके लिये असह्य हो गई। वह धीरे-धीरे लौट चला।

साँझ का झुटपुटा अब झुक चुका था। मार्ग धीरे-धीरे अंधकार में ऐसे खो चला था जैसे काली सिकता में नदी का फेन छिप जाता है। भिल्ल निरंतर बढ़ता ही रहा। और मार्ग में उसने देखा एक सार्थ जा रहा था। आगे-आगे कुछ योद्धा थे, और उनके बाद माल से लदे शकट थे। उनके पीछे अनेक व्यक्ति चल रहे थे। सम्भवतः वह संध्या का विश्रामस्थल ढूँढ़ रहे थे।

उसने सोचा, चल कर पूछूं। किन्तु उसी समय भयानक चीत्कार उठने लगा। दस्युओं ने चारों ओर से सार्थ को घेर कर युद्ध प्रारंभ कर दिया था, स्त्रियों के भयानक चीत्कार उठने लगे। उस समय दस्युओं के दूसरे दल ने प्रहार किया और शकटों को लूटने लगे। देर होती जा रही थी। भिल्ल अपने काम में विलंब देख कर व्याकुल होने लगा। डाकुओ के भय से भिल्ल पेड़ों में छिप कर चलने लगा। कुछ दूर निकल जाने पर वह भाग चला। जब वह ग्राम में पहुँचा, दूसरा भिल्ल भागा। फिर तीसरा। और फिर वही भिल्ल जो चला था समाचार लेकर भाग चला। अंधकार ने उसे ग्रस लिया।

रात्रि के अंधकार में दिवाकर मित्र ने पूछा : कोई संवाद आया?

भिल्लनायक ने निराशा से सिर हिला कर कहा : नहीं गुरुदेव!

राज्यश्री ने सुना और सिर झुका लिया।

२२

वलभी का राजा ध्रुवभट्ट पराजित हो गया। उस दुर्धर्ष योद्धा का राजमुकुट धूलि मे गिरते देख कर स्थाण्वीश्वर की विराट् वाहिनी ने आनंद से बार-बार जय-जयकार किया। सेनापति सिंहनाद ने उसकी पताका छीन ली, उसके हाथ से दंड छीन लिया और उसे बंदी बना लिया। किन्तु हर्ष की आज्ञा से राजमुकुट फिर उसे पहना दिया गया।

मध्याह्न हो गया था। सेना सामने खड़ी थी। सेनापति स्कंदगुप्त ने सेना को उत्साहित करने को भाषण दिया। उस समय अनेक महामात्र ध्रुवसेन को पकड़ कर ले आये। उसे बद्ध देख कर महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन ने आगे बढ़ कर कहा : महाराज को मुक्त कर दो। और वे शिविर में चले आये।

महामात्रों ने बंधन खोल दिये। दोनों राजा एक दूसरे के संमुख खड़े हुए। एक सशस्त्र गौरव था, दूसरा निःशस्त्र पराजय। एक उद्धत, दूसरा नत। एक पर अहंकार, दूसरा श्रीहीन। ध्रुवभट्ट ने उसे देखा और अपना सिर नीचा कर लिया।

'आपके शासन में स्त्रियों पर भीषण अत्याचार होता है', महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन ने दृढ़ स्वर से कहा, 'यदि इतना अत्याचार नहीं होता तो सभवतः पुष्यभूतियों को इतनी दूर आने की आवश्यकता ही नहीं होती।'

'सैनिक बर्बर होते ही हैं महाराजाधिराज!' ध्रुवसेन ने कहा।

'आपने उन्हें स्वतंत्रता दे रखी है।' हर्षवर्द्धन ने अविचलित स्वर से कहा जैसे अब वह न्याय करने के पहले दंड के पहले अभियोग सुना देना चाहता था।

ध्रुवसेन निरुत्तर सा दिखाई दिया। उसकी समझ में नहीं आया कि अब वह क्या उत्तर दे। फिर उसी समय उन लोगों की बात रुक गई। महाराजाधिराज ने सेनापति की ओर देखा।

दूर बाहर कोलाहल हो रहा था। सेना में कुछ बातचीत हो रही थी, जो असंख्य मनुष्यों की एक साथ ही उठती बोली अपने गम्भीर रव के कारण कोलाहल सी प्रतीत होती थी।

वे सब बाहर की ओर चल पड़े। ध्रुवभट्ट को महामात्रों ने फिर घेर लिया। हर्षवर्द्धन को सबसे आगे देख कर सेनापति स्कंदगुप्त इस समय फिर उसके आगे आ गया।

बाहर आकर देखा सेना पंक्तियों में खड़ी थी। और सैनिक क्रुद्ध दिखाई देते थे। महाराज को देख कर उस समस्त समुदाय ने जैसे क्रोध से जय-जयकार किया। इनको आते देख कर कुछ सैनिक इनके समीप आ गये।

चार गौल्मिकों ने एक सैनिक को बाँध रखा था। सैनिक भय से काँप रहा था किन्तु उसकी ओर किसी की भी सहानुभूति नहीं थी। वह अकेला था और सब उसे क्रोध से घूर रहे थे। महाराजधिराज ने महाबलाधिकृत की ओर देखा।

महाबलाधिकृत ने पूछा : चंद्रहास !

एक गौल्मिक ने अभिवादन किया। महाबलाधिकृत ने अपना प्रश्न दुहराया नहीं, केवल अपनी भौं उठा दी।

'देव ! इसने वलभी की स्त्री से बलात्कार किया है', गौल्मिक ने सिर झुका कर कहा। और वह जैसे घबरा गया, कह कर पीछे की ओर हट गया। महाबलाधिकृत ने मुड़ कर महाराजाधिराज की ओर देखा।

हर्षवर्द्धन का मुख जैसे लोहे का हो गया। वह एकदम स्तब्ध रह गया। उसके नेत्र लाल हो गये और उसके मुख पर एक भयानक दृढता छा गई। वह क्षण भर उसी मुद्रा में चुपचाप खड़ा रहा। फिर जैसे उसे एकाएक ध्यान आया। अपने सामने खड़े गौल्मिक की ओर देखा और उसने कहा : स्त्री कहाँ है ?

'उपस्थित है महाराज !' कह कर वह एक ओर चला गया। ध्रुवभट्ट के मुख पर एक हल्की मुस्कराहट दिखाई देने लगी। हर्ष ने देखा और अपनी आँखे फेर लीं।

दो सैनिकों ने एक स्त्री को उपस्थित किया। वह सुन्दरी थी, थी लगभग सत्तरह, अठ्ठारह वर्ष की। इस समय उसके मुख पर दारुण लज्जा थी, जैसे वह जीना नहीं चाहती थी। यदि धरती फट जाती तो वह उसमें अवश्य समा जाती। उसके मुख पर घोर क्रोध, भयानक

प्रतिशोध की भावना थी और वह ऐसी लग रही थी जैसे मंत्रबद्ध सर्प अपना विष उगलने में निःशक्त हो गया हो, अन्यथा वह न जाने कितनों को डँस जाता।

और सेना ने आश्चर्य से देखा कि महाराजाधिराज आगे बढ़े। स्त्री चुपचाप खड़ी रही। हर्षवर्द्धन ने झुककर स्त्री के चरण पकड़ कर कहा : माँ! मुझे क्षमा करो। तुम्हारे इस पुत्र के एक सैनिक ने जो भयानक बर्बरता की है, उसके लिये मुझे दन्ड दो। फिर जैसे वह नहीं कह सका। उसका गला रुँध गया। वह क्षण भर चुप रहा फिर कहा : बहिन! क्षमा कर दो!

स्त्री रोने लगी। वह क्या कहती। इस सबकी तो उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी। उसने रोते हुए कहा : भइया!

एक शब्द ने जलती अग्नि में घी का काम किया।

हर्षवर्द्धन की आँखें जलने लगीं। वह वेग से उठ खड़ा हुआ। उसने स्त्री की ओर दोनों हाथ फैला कर कहा : राज्यश्री!

उसने स्त्री को अपनी भुजाओं में भरकर उसका माथा सूँघकर कहा : भगिनी! तू कहाँ चली गई थी।

वलभी का राजा ध्रुवभट्ट चकित सा देखता रहा।

महाबलाधिकृत ने आगे बढ़कर कहा : देव! यह परम भट्टारिका नहीं है।

'है, महाबलाधिकृत! यह वही है। देखते हो इसके नेत्रों में वही पवित्रता थी।' और क्रुद्ध महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन ने खड्ग निकाल कर कहा : सैनिको! आज मैं फिर शपथ ग्रहण करता हूँ, जहाँ भी स्त्री पर अत्याचार होगा वहाँ मेरा खड्ग प्रलय की प्रचंड उल्का की भाँति चलेगा। मै मनुष्य की यह जघन्यता कभी भी स्वीकार नहीं कर सकता। राज्य के लिये युद्ध होता रहे, किन्तु माता और भगिनी पूज्य हैं, उन पर किसी को भी बलात्कार करने का अधिकार नहीं है।

क्रोध से उसके नथुने फड़कने लगे। महाबलाधिकृत ने देखा महाराजाधिराज की आँखों में जैसे दीप जल रहे थे।

सैनिकों की आँख से अश्रुधारा बहने लगी। वे क्रोध से गरजने लगे। पुकार आने लगी—

'हम प्रतिज्ञा करते हैं।'

'स्त्री हमारी माता है।'

'स्त्री हमारी भगिनी है।'

'स्त्री हमारी पूज्या है।'

महाराजाधिराज ने फिर से कहा: क्षणभर आवेश में आकर प्रतिज्ञा न करो, मेरे सैनिको! आज एक अनाम स्त्री मेरे संमुख खड़ी है। कल यदि यह वितृष्णा समाप्त नहीं हुई तो मेरे संमुख आज तुम्हारी परम भट्टारिका राज्यश्री, पुष्यभूति वंश की कन्या, मौखरिकुल की महारानी इसी अवस्था में होती। सैनिको! उस समय तुम क्या करते? क्या उस समय तुम न्याय की प्रतीक्षा करते? क्या उस समय तुम्हारी बुद्धि तर्क करती?

सैनिक विचलित हो गये। महाराजाधिराज की बात समाप्त होने के पहले ही एक गौल्मिक झपटा। उसको आगे बढ़ते देख कर उसके साथ ही अनेक सैनिक झपटे। महाबलाधिकृत ने देखा वे क्रोध से उन्मत्त हो गये। स्त्री के नेत्र फैल गये। उसने देखा कि सैनिकों को बढ़ते देखकर महाबलाधिकृत पीछे हट गये। और भयानक चीत्कार की चिन्ता त्याग उन्होंने बलात्कार करने वाले सैनिक को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। फिर उसके माँस पिन्डों को आकाश की ओर उछाल दिया। स्त्री आनन्द से पागल हो गई। उसकी आँखों से झर-झर कर पानी गिरने लगा।

उस समय बलभी के राजा ध्रुवसेन ने अपना मुकुट उतार कर महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन के चरणों पर धर कर स्त्री का हाथ पकड़ कर

कहा : महाराजाधिराज ! वलभी की अब मुझे आवश्यकता नहीं। मुझे यह स्त्री दे दें। मैं इसे अपनी पत्नी बनाऊँगा।

चौंक कर हर्ष ने पूछा : क्यों ?

'महाराज इसे अपनी भगिनी कह चुके हैं। वलभी की राजमहिषी के पद के लिये, एक पवित्र स्त्री चाहिये।'

हर्ष ने हँसकर कहा : राजमहिषी के लिये राज्य भी चाहिये महाराज ! यदि आप इससे परिणय कर सकें तो इसका जीवन व्यर्थ नहीं जायेगा।

महाबलाधिकृत स्कन्दगुप्त ने पुकार कर कहा : सावधान।

'दूर कुछ धूल उड़ती हुई दिखाई दे रही है', महाबलाधिकृत ने फिर कहा। सब चौंक उठे और सैनिकों के हाथ उनके खड्गों और भल्लों पर चले गये। बाण धारकों के हाथ तूणीर की ओर खिंचे।

सेना सजग हो गई। उसने प्रचन्ड गर्जन किया : महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन की जय !

और यह गर्जन दूर तक सुनाई दिया। दो अश्वारोही चले आ रहे थे।

गर्जन सुन कर एक अश्वारोही ने कहा : शंख ! हम आ पहुँचे।

'सचमुच देव !' दूसरे ने कहा, 'शीघ्रता करें।'

घोड़े और तेजी से दौड़ने लगे। पसीने से लथपथ हो गये। दोनों सवारों पर धूलि छा रही थी।

अश्वों से उतरते ही दोनों व्यक्तियों को सैनिकों ने घेर लिया। और उन्हें महाराजाधिराज की ओर ले चले।

'महाकवि !' महाबलाधिकृत ने चौंक कर कहा, 'इस समय इतनी आतुरता से ?'

हर्षवर्द्धन ने बाण भट्ट को देखकर उसके चरण स्पर्श किये। वह ब्राह्मण था। उसने दोनों हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। इस समय

उसके मुख पर एक भव्य पवित्रता थी, जैसे वह किसी महान् कार्य में रहा था। उसे इसका गर्व था कि भाग्य ने उसे भी इसमे निमित्त बना कर प्रयुक्त किया है।

'महाकवि,' हर्ष ने कहा, 'विशेष संवाद है?'

'महाराजाधिराज!' बाण का स्वर काँप गया, 'विश्वास करना ही होगा। गुरुदेव दिवाकरमित्र ने परम भट्टारिका राज्यश्री को भिल्ल-नायकों की सहायता से ढूंढ ही लिया है। अनेक मास से देवी राज्यश्री कान्तार में भटक रही थी। कन्दमूल खाकर जीवित थी।'

हर्षवर्द्धन ने सुना। सुना जैसे विश्वास नहीं हुआ। वह चुपचाप खड़ा रहा।

महाबलाधिकृत ने कहा: महाकवि। आपको यह संवाद किसने दिया?

'शंख ने?' महाकवि ने उत्तर दिया।

'क्या यह सत्य है बाणभट्ट?' महाराजाधिराज ने चौंक कर पूछा।

'देव! यह ध्रुवसत्य है,' शंख ने दृढ़ता से कहा।

हर्षवर्द्धन के मुख पर भाव ऐसे खेलने लगे जैसे समुद्र पर तरंगे हरहरा कर खेलती हैं। वह वेग से आगे बढा और उसने महाबलाधिकृत के कंधे पर हाथ रखकर कहा: स्कन्द! तो मै अभी जाऊँगा।

'आप अकेले जायेंगे?'

'पुष्यभूतियों की कन्या क्या अकेली आयेगी?' हर्ष ने पूछा।

महाबलाधिकृत ने उच्च स्वर से कहा: स्थाण्वीश्वर के पराक्रमी सैनिको! परम भट्टारिका की सूचना मिली है। महाराजाधिराज उनके समीप जा रहे हैं। उनके साथ जो जाना चाहे वह हाँ कहे।

सैनिक चंचल हो गये। एक स्वर से एक ओर से दूसरे छोर तक हाँ हुई जैसे प्रचंड घूँसा मारा गया, जिससे आकाश का हृदय दहल गया। किन्तु इतना ही काफी नहीं था।

दस सहस्त्र अश्वरोही आगे बढ़ आये। वे जैसे बिल्कुल तैयार थे। विद्युत् वेग से महाबलाधिकृत के इंगित पर एक सैनिक एक भव्य ऊँचा श्वेत चंचल तुरंग ले आया।

हर्षवर्द्धन घोड़े पर चढ़ गया। उसको घोड़े पर चढ़ते देख कर महाबलाधिकृत दूसरे घोड़े पर चढा।

'अभी, महाबलाधिकृत। अभी। एक क्षण का भी विश्राम नहीं।' महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन ने खड्ग को उठा कर कहा।

महाबलाधिकृत असमंजस में पड़ गया। उसने घोड़ा रोक कर गम्भीरता से कहा : किंतु महाराजाधिराज पावस में नदी घिर आती है, हम दो महीने से पहिले नहीं पहुँच सकते।

शंख ने साक्षी दी। जब वे आये थे तब [illegible]नों घुटनों जल था। इस समय तो नदी में बाढ़ होगी। उसके शांत होने में काफी समय लगेगा।

'हर्षवर्द्धन सात दिन में पहुँचेगा, महाबलाधिकृत। नदी घोड़ों से पार करेंगे, हर्ष ने कहा, 'नदी की प्रतीक्षा करने का समय ही कहाँ है?'

'नहीं है, नहीं है,' सैनिकों ने गरज कर कहा।

महाबलाधिकृत विवश हो गया। उसने कहा : देव! यह पदातिक न तो शीघ्र पहुँच ही सकेंगे, न इनकी वहाँ आवश्यकता ही है।

'तो इनको रोक दो।'

'यह क्या देव! अब मेरे बस की बात है?'

महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन ने घोड़े को मोड़कर कहा : वीरो! समय बड़ा मूल्यवान है। एक क्षण भी नष्ट नहीं होना चाहिये। पदातिको! स्थाण्वीश्वर को प्रस्थान करो।

'देव! वलभी का क्या होगा?' महाबलाधिकृत ने पूछा।

'वलभी ध्रुवभट्ट संभालेंगे,' हर्ष ने कहा, 'अब चलो।'

सैनिकों ने जयध्वनि की। माता राज्यश्री का नाम गूँज उठा। उस

राज्यश्री हँस दी। उसने कहा : धैर्य ? क्या मैं आपको अधीर दिखाई दे रही हूँ गुरुदेव ! आज मैं स्वामी के पास जा रही हूँ।

वह मुस्कराई जैसे अग्नि की लपट ऊपर उठ कर कुछ रक्तिम हो उठती है। दिवाकर मित्र ने देखा। राज्यश्री ने फिर कहा: प्यासा मृग जब वन में भागता है तो उसे लगता है, बस कुछ दूर और वहीं जल है...

वह चुप हो गई। फिर कहा : बहुत भटक चुकी हूँ गुरुदेव ! अब नहीं भटकूँगी। अब मैं विश्राम करना चाहती हूँ। यदि जीवन वेदना ही है तो उसमें तप्त होने से लाभ ही क्या ?

दिवाकर मित्र चुप हो गये।

राज्यश्रीके मुख पर दृढ़ता फिर स्थापित हो गई। उस दिव्य सौंदर्य ने सबके मन पर गहरा प्रभाव डाला।

भिल्लनायक ने आकर उस समय घुटनों के बल बैठ कर राज्यश्री को प्रणाम किया। उसके दोनों हाथ उसके मस्तक पर आकर जुट गये। वह धीरे धीरे कुछ कहने लगा। संभवतः वह कोई प्रार्थना कर रहा था और दिवाकर मित्र ने देखा कि भिल्ल समुदाय ने प्रसन्नता से अपने नायक के इस कृत्य को देखा। उसके पीछे अनेक भिल्ल आ आकर घुटनों के बल बैठने लगे।

कितनी ममता और श्रद्धा थी उन मुखों में, जैसे वे किसी देवी की उपासना कर रहे थे। वृद्ध ने सुना भिल्लनायक के मुख से निकला : भिल्लादेवी। यह एक भिल्लों की देवी थी। आज भिल्लों ने अपनी देवी से जैसे साक्षात्कार कर लिया था। इस द्रावक दृश्य को देख कर अत्यन्त विचलित होकर वह उठे और हाथ पसार कर अब दिवाकर मित्र रो दिये।

'राज्यश्री !' वृद्ध ने कहा, 'क्या तू सचमुच चली जायेगी ?'

राज्यश्री को जैसे आश्चर्य हुआ। वह देखती रही। वृद्ध ने उसे ऐसे देखते देखा तो उनका सिर झुक गया !

राज्यश्री ने कहा : गुरुदेव ! आप तो वीतराग हैं। फिर क्षणिक विश्व में जब सब कुछ बदल रहा है, उस समय आपको इतना मोह क्यों ?

भिल्लनायक उठ गया। उसके साथ ही समस्त भिल्ल और भिल्लनियाँ उठ गये। उन्होंने माता का जय जयकार किया।

राज्यश्री पर जैसे इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह वृद्ध गुरु के निकट चली गई।

वृद्ध कुछ देर देखता रहा, फिर उसने अत्यन्त करुण स्वर से धीरे धीरे कहा : सत्य है ! पुत्री, तरुणावस्था में कालिदास का अभिज्ञान शाकुन्तल पढ़ा था तथा उसे एक कामुक की कृति समझकर मैंने उसकी निंदा की थी। किन्तु इस समय मुझे उसका एक एक शब्द दीखता है। कण्व का हृदय शकुन्तला के लिये उस दिन जितना रोया था, उससे तो मैं कहीं अधिक व्याकुल हो रहा हूँ। राज्यश्री ! कण्व की पालिता कन्या केवल अपने पति के गृह जा रही थी। मेरी शिष्या तो इस संसार को छोड़कर जा रही है। केवल इसलिये कि शत्रुओं ने उसके सौभाग्य को नष्ट कर दिया। मैं जानता हूँ पुत्री ! यह व्याकुलता तेरी कोई असंभव नहीं है, किन्तु कितनी कठोर है, कितनी कठोर है। वृद्ध का स्वर भर्रा गया।

राज्यश्री चुप रही। उसके नेत्रों में एक व्याकुलता दिखाई दी।

दिवाकर मित्र ने फिर कहा : राज्यश्री ! तू जब घुटनों खेलती थी तब मैंने तुझे गोदी में खिलाया है। तब मैं इसे अच्छा नहीं समझता था, किन्तु जब तक बलपूर्वक मेरी गोदी मे चढ आती थी तब मैं तुझे रोक नहीं पाता था। मेरी दृष्टि में तो तेरा वही तुतलाता रूप समाया हुआ है। उसे भूल सकना मेरे लिये असंभव है। स्वयं शास्ता भी राहुल को सोते समय छोड़ कर गये थे पुत्री ! तू मेरे संमुख बोलती और हँसती हुई जा रही है। फिर मै तो बुद्ध नहीं हूँ राज्यश्री ! ऊपर से

जो तू इतनी शांत और दृढ़चित्त दीख रही है, मैं क्या नहीं जानता कि भीतर ही भीतर तेरे हृदय में कितनी ज्वाला है, कितनी दारुण वेदना है!

वृद्ध का गला रुँध गया। वह फिर कहने लगा: कर्म विपाक से ही बार बार जन्म मिलता है राज्यश्री। अपने कर्मों का अंत कर। हम यही नहीं कर पाते और बार बार सुख-दुख सहते हुए, जन्म लेकर मर जाते हैं। कौन जाने, यह सब क्यों है राज्यश्री! ऐसा न कर। ऐसा न कर।

राज्यश्री के नेत्रों मे आँसू आ गये। उसे लगा वह जितनी कठोर थी, वह सब एक छद्म था। वह अपने आपको धोखा दे रही थी। वह वास्तव में विजय नहीं थी, वह आत्महत्या के पहले का बर्बर साहस था। उसके लिये एक सुधबुध भूल जाने वाला अतर्क्य पागलपन चाहिये थे। उसे विचलित देख कर सब रोने लगे।

एक भिल्ल बालक ने आकर उसका वस्त्र पकड़ लिया। उसने कहा: माता!

'माता!' भिल्लनायक ने कहा।

'माता! न जाओ।' भिल्लनियों ने कहा।

'न जाओ माता!' कहकर बालक रोने लगा।

राज्यश्री विचलित सी दिखाई दी। उसने धैर्य धारण करके कहा: आनन्द मनाओ! रोओ नहीं। माता आज जा रही है।

सबने देखा वह फिर वैसी ही हो गई। भिल्ल बालक उसके चरण स्पर्श करके हट गया।

भिल्लनियाँ नृत्य करने लगी थीं। उनके नृत्य में समवेत स्वर से ताली बजती और फिर एक ही मुद्रा धारण करके उनके अङ्ग समवेत गति से चलते और उनके मुखों पर पवित्र आभा झलकने लगी। उन्होंने वही नृत्य किया जो वे सिल्लादेवी के सामने करती थीं, इस समय वे मदिरा पीकर अपनी सुधबुध होकर एकाग्र हो पाती थीं, आज

जैसे उसकी आवश्यकता ही नहीं थी। आज वे वैसे ही उस ध्यान के केन्द्रीकरण को प्राप्त कर चुकी थीं।

भिल्लनायक खड़ा रहा। वह अब झुककर बैठ गया और कुछ फिर अब पाठ सा करने लगा था।

काफी समय व्यतीत हो गया। राज्यश्री उस नृत्य को देख कर अत्यंत प्रसन्न हो रही थी जैसे यह समवेत अङ्गचालन उसे वैसे ही वश में करके झुलाने लगा जैसे सपेरे की बीन को देखकर साँप सिर हिलाता है, अपने आपको भूल जाता है।

दिवाकार मित्र उठ खड़े हुए। उन्हे उठते देखकर भिल्लनायक भी उठ उड़ा हुआ। राज्यश्री का ध्यान टूट गया।

उसने कहा : गुरुदेव। विलम्ब हो रहा है।

उसके नेत्रों की दृढ़ता को कुछ देर तक दिवाकर मित्र परीक्षात्मक दृष्टि से देखते रहे। फिर उन्होंने कहा : यह नृत्य रोक दो।

भिल्लनियों ने सुना। उनका हृदय एक आशंका के उद्वेग से भर उठा। आनन्द पर फिर कशाघात हुआ। क्षण भर वे उठे हाथ हवा में झूलते रहे, क्षण भर वे बंकिम नेत्र खुले रहे, फिर काँप कर चरण थम गये, अंग फिर अपनी चंचलता छोड़ने लगे। नेत्र फिर अपने संतुलन पर आ गये।

नृत्य रुक गया।

एक गम्भीर निस्तब्धता छा गई। सब चुपचाप खड़े रहे।

राज्यश्री आगे बढ़ी। उसने आकाश की ओर देखा और जैसे कुछ कहा। कोई नहीं सुन सका।

राज्यश्री चिता की प्रदक्षिणा करने लगी। अभी वह एक शैय्या मात्र थी। अभी उस पर आग नहीं थी। वह प्रदक्षिणा देख कर वृद्ध दिवाकर मित्र को लगा उसका मस्तिष्क घूम रहा है। किन्तु राज्यश्री सधे हुए

चरखा रख कर चलती रही। सात बार घूम कर वह रुक गई। उसने फिर एक बार आकाश की ओर देखा और फिर वैसे शून्य से कुछ कहा। अबकी बार उसके मुख पर एक अवर्णनीय दीप्ति दिखाई दी।

भिल्लनियाँ रोने लगीं। न जाने क्यों उनका हृदय अब काँपने लगा। बेला निकट आती जा रही थी। अब वे ऊपर के पर्दे फट रहे थे। कठोर सत्य संमुख आने वाला था।

राज्यश्री ने हाथ उठा कर कहा : 'रोओ नहीं बहिनो। रोओ नहीं। आज तुम्हारे लिये मंगल बेला है। आज मैं जा रही हूँ। उस समय तुम रो रही हो।'

शब्द थम गये, किन्तु उन्होंने उनके दुख को और उकसाया। वे चुप होने का प्रयत्न करने लगीं। राज्यश्री ने देखा वृद्ध गुरु शान्त दीख रहे थे और भिल्ल भी दृढ़ थे। भिल्लनियों के किन्तु आँसू फिर भी गिरते रहे। वे स्त्रियाँ थीं। जानती थी कि स्त्री का पति जब मरता है तब स्त्री को कितना दुख होता है। फिर यदि वह स्त्री दूसरा विवाह न कर सके और अपने आपको अपने स्वर्गीय पति के लिये बलि दे दे... कितना भयानक और कठिन था यह विचार...

दिवाकर मित्र ने कहा : राज्यश्री! तू जा ही रही है?

'हाँ गुरुदेव!'

'तो मेरा एक कहना मानेगी? एक बार स्थाण्वीश्वर क्यों नहीं चलती? जो करना हो वहीं कर लेना।'

राज्यश्री ने सुना और हँस कर कहा : गुरुदेव! जब मालव देवगुप्त के बन्दीगृह से भागी थी तब मुझे मालूम नहीं था कि भइया ने मेरे लिये आक्रमण किया है। परन्तु अब तो आपने बताया था। भैया हर्ष के पास सम्वाद भी भेजा था। सम्वाददाता वैसे ही लौट आया। कोई सूचना तक नहीं मिली।

भिल्लनायक अग्नि ले आया। राज्यश्री कहती रही : फिर मैं अब

कौन हूँ। विधवा ! राज्यहीना, गृहहीना ! मैं किसी के ऊपर भार बन कर नहीं रह सकती। मैं अपने पति के समीप जा रही हूँ गुरुदेव ! आप नहीं जानते, मैं जानती हूँ मनुष्य का प्रेम जीवन के परे मृत्यु में भी पलता है।

दिवाकर मित्र ने अग्नि की चिता प्रज्वलित कर दी। आग धीरे-धीरे सुलगने लगी। फिर लपटें निकलने लगीं। छोटी हुईं, फिर लकड़ियों पर रेंग कर बढ़ने लगीं और फिर ऊपर को उठने लगीं।

राज्यश्री ने अन्तिम बार हाथ जोड़ कर आकाश की ओर देखा। कुछ देर तक वह अतीन्द्रिय गरिमा से देखती रही। फिर मुस्कराई। उसने गुरुदेव के चरणों का स्पर्श किया। वृद्ध ने उसे आशीर्वाद दिया : सुखी रहो। शान्ति पाओ।

राज्यश्री उठ खड़ी हुई। उस समय भिल्ल और भिल्लनियों ने सिर झुका दिया और भक्ति से सबने दंडवत प्रणाम किया। राज्यश्री मुस्करा कर चिता की ओर बढ़ी। इसी समय वृक्षों के पीछे घोड़े दौड़ने का शब्द आया। एक नहीं, दो नहीं असंख्य घोड़े, मारामार भागे चलते चले आ रहे।

सब चौंक उठे : यह क्या है?

फिर किसी ने पुकारा : भगिनी !

स्वर उठा और काँप कर खो गया। जैसे किसी ऐसे व्यक्ति ने पुकारा है, जिसका कण्ठ प्यासा है।

राज्यश्री का उठा पाँव रुक गया। किसका है यह स्वर ! यह तो परिचित-सा लगता है? क्यों न वह रुक कर सुने? राज्यश्री को चारों ओर से भिल्ल भिल्लनियों ने भय से घेर लिया।

दिवाकर मित्र पागल से उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा : कौन?

किन्तु फिर घोड़ों की दौड़ सुनाई पड़ी। अब जैसे घोड़े पथरीली

भूमि पर चढ़ रहे हैं। फिर किसी ने अत्यन्त प्यास कंठ से आर्त हो कर पुकारा : भगिनी···

स्वर कान्तार में थर्रा गया।

किसी ने फिर पुकारा : राज्यश्री......

दिवाकर मित्र व्याकुल हो उठे। कहा : कौन...है शीघ्र कहो...... राज्यश्री...राज्यश्री। वे उत्तेजना में कुछ नहीं कह सके।

भैया! क्या यह हर्ष की पुकार नहीं है, राज्यश्री सोच रही थी। यह अवश्य उसी की पुकार है।

अचानक घोड़े रुक गये। एक व्यक्ति ने झुक कर दूसरे से दूर ही कुछ कहा और फिर वह अकेला अपना भव्य तुरंग आगे बढ़ा लाया। दिवाकरमित्र आगे बढ़े।

सबने देखा। छलांग मारकर महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन घोड़े पर से कूद पड़े......

दिवाकर मित्र आनंद से चिल्लाया : महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन! महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन! जैसे वह और कुछ कह नहीं सका। महाराजाधिराज झपट कर आगे बढ़े। वे धूलि धूसरित थे।

उन्होंने राज्यश्री को अंक में भर लिया। राज्यश्री भूल गई कि वह सब कुछ छोड़ रही थी।

दोनों रोने लगे। हृदय की समस्त वेदना अब घुमड़ने लगी। बड़े भाई के वक्ष पर छोटी बहिन का दुख पानी बन-बन कर बहने लगा।

उस समय सब अपनी सुधबुध भूल गये। जिसको देखो वही पागल सा दिखाई देता था। इतनी आकस्मिक घटना हुई कि किसी को स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी। इतना आनंद एकदम जैसे हृदय में अब समाना नहीं चाहता था। कोई हँसता था, कोई रोता था। भिक्षुनियों की तो अजीब हालत हो गई।

वृद्ध दिवाकरमित्र ने आगे बढ़ कर कहा : वत्स!

महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन ने दिवाकरमित्र के चरणों पर सिर धर दिया।

वृद्ध ने स्नेह से हाथ फेर कर कहा : बड़ी हठीली है यह मेरी शिष्या ! बचपन से ही ऐसी है। शास्ता ने तुम्हें समय पर भेज दिया अन्यथा बहिन नहीं मिलती, वह मिलती........

चिता को जलता देख कर हर्षवर्द्धन रो दिया।

जब वे चैतन्य हुये देखा राज्यश्री मरते हुये हर्ष के घोड़े के पास बैठी रो रही थी।

हर्षवर्द्धन समीप आ गया। उसने रुक कर देखा। फिर कहा : मेरा मित्र ! स्वामिभक्त ! यदि यह न होता !' हर्षवर्द्धन ने फिर कहा : इसने अपनी बलि दे दी।

दो बूँद आँसू गिरे और फिर महाराजाधिराज ने राज्यश्री का हाथ पकड़ कर उसे उठाते हुये कहा : शोक न करो राज्यश्री।

'चलो बहिन !' महाराजाधिराज ने फिर कहा।

राज्यश्री वहीं खड़ी रही। घोड़ा उर्ध्वश्वास ले रहा था। हर्षवर्द्धन ने उसकी ग्रीवा को थपथपाया। लगा जैसे घोड़े की करुण आँखों में एक सतोष छा गया। वह स्वेदश्लथ था, चमक रहा था। राज्यश्री उसे अत्यन्त करुण नेत्रों से देख रही थी। सोच रही थी किसलिये मरा है यह पशु ? निरन्तर भाग कर। एक क्षण का भी विश्राम नहीं लिया इसने।

घोड़ा मर गया।

महाराजाधिराज ने उस पर अपने कठ का हार उतार डाल दिया।

फिर कहा : चलो बहिन !

'नहीं भैया,' राज्यश्री ने रोते हुये कहा, 'अब मै वहाँ नहीं जाऊँगी।'

'क्यों ?' हर्ष ने चौंक कर पूछा।

'अब मेरा वहाँ कौन है ?'

'क्यों मै तेरा कोई नहीं राज्यश्री ? सत्य कह न ? तू डरती है कि

वहाँ तू दासी बनेगी ?' हर्ष ने रोते हुये कहा, 'मैं प्रतिज्ञा करता हूँ राज्यश्री ! गुरुदेव, महाकवि बाणभट्ट, और स्थाण्वीश्वर के इनपराक्रमी वीरों के सम्मुख प्रतिज्ञा करता हूँ कि हर्ष राज्यश्री की मर्यादा को सदैव अक्षुण्ण रखेगा। राज्यश्री राज्य की स्वामिनी होगी, हर्ष उसका सेनापति होकर समस्त कार्य करेगा।'

'महाराजाधिराज !' महाबलाधिकृत ने चौंक कर कहा।

'यह सत्य है', हर्ष ने कहा, 'भगिनी का भय दूर करना ही होगा। महाबलाधिकृत ! पुष्यभूतिवंश की कन्या का गर्व क्या साधारण गर्व है ? उसे निभाना हर्ष का पहला धर्म है।'

हर्षवर्द्धन ने खड्ग उठा कर कहा : परम भट्टारिका देवी राज्यश्री की जय !

अश्वारोहियों ने मुक्त गर्जन किया। फिर भिक्षु और भिक्षुनियाँ रोने हँसने लगे। आनन्द फिर फूट चला। तुरंग हिनहिनाने लगे।

हर्ष ने आगे बढ़ कर कहा : चलो बहिन !

दिवाकरमित्र ने कहा : राज्यश्री ! सुनती है वत्से ? तेरा भाई तुझे कब से पुकार रहा है।

राज्यश्री उठ खड़ी हुई।

२४

कान्यकुब्ज लौट कर आने पर भी राज्यश्री का गाँभीर्य दूर नहीं हुआ। वह अब फिर अपने पतिगृह में लौट आई थी। हर्षवर्द्धन की इच्छा पूर्ण हुई। सशाक नरेन्द्रगुप्त ने जब सुना कि कामरूप के राजा ने हर्षवर्द्धधन से संधि कर ली है, उसे तुरन्त अपने गौड़ की रक्षा की चिंता हो आई, दूसरे महाबलाधिकृत भाण्डी की अपार सेना से लड़ना भी सरल नहीं था। वह जानता था इस समय वह फिर विपरीत धारा के

सामने नैया लिये है। वह भाग गया। कान्यकुब्ज पर भाण्डी ने पताका फहराई। हर्षवर्द्धन की इच्छा थी कि राज्यश्री अपने राज्य को वापिस ले ले और वह स्वयं अपने स्थाण्वीश्वर लौट आये।

राज्यश्री ने राज्य स्वीकार नहीं किया। उसने कहा : राज्य! राज्य को मैं क्या करूँगी महाराजाधिराज!

उसके स्वर में कोई व्यंग्य नहीं था। महामात्यों ने सुन कर हर्ष से आग्रह किया। किसी रक्षक की आवश्यकता तो थी ही। सबके आग्रह ने विजय पाई, जिसमें राज्यश्री का स्नेहाधिक्य सबसे बड़ा बन्धन बन गया।

अन्त में हर्ष को ही स्वीकार करना पड़ा। एक राज्य का दान राज्यश्री ने ऐसे सरलभाव से कर दिया जैसे कुछ हुआ ही नहीं।

चयनिका से तरला ने कहा : देवी! महाराजाधिराज ने स्वीकार कर लिया।

'वह पुरुष सिंह है तरला।' चयनिका ने वराह भगवान की पूजा से उठते हुये कहा।

महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन अब स्थाण्वीश्वर और कान्यकुब्ज दोनों जगहों का शासन संभालेंगे सुन कर शत्रु कॉप उठे।

महाराजाधिराज हर्षवर्द्धन ने अत्यन्त संकोच से आर्यपट्ट पर चरण रखा फिर स्वयं ही उसने सम्राट की उपाधि धारण की। सम्राट हर्षवर्द्धन का गौरव अब दिगंतों में गूँजने लगा।

उस समय उत्तरापथ में हर्ष का साम्राज्य सबसे बड़ा साम्राज्य हो गया। उधर दक्षिण में पुलकेशिन द्वितीय था, इधर उत्तर में हर्ष। सेनापति भाण्डी साम्राज्य की विशाल सेना का एकमात्र महाबलाधिकृत बनाया गया। वह अत्यन्त चतुर व्यक्ति था। उसने सेनापति स्कंदगुप्त और सिहनाद बलाधिकृत के साथ समस्त साम्राज्य में नया सैन्य सगठन किया जिससे पुरानी निर्बलता भी अब दूर हो गई। नये साम्राज्य की यह शक्ति-सेना विराट् थी। हर्षवर्द्धन के पास ५००० हाथी, बीस सहस्र

अश्वारोही और अर्द्धलक्ष पदातिक थे। इन पर प्रति दिन असंख्य धन व्यय होता था जो कृषकों के पास से आता था।

दूसरे राज्यों को नष्ट करने की पुरानी दिग्विजय परम्परा थी। सम्राट हर्षवर्द्धन ने उसे उसी रूप में स्वीकार नहीं किया। वे इस विषय पर गंभीर मंत्रणा किया करते।

राज्यश्री एकांतवासिनी हो गई। वह अब बाहर की बातों से अत्यन्त उदासीन हो गई। विजया नामक भिक्षुणी को एक दिन उसने विहार में देखा। उसने बुलवाया। विजया को सिर झुकाया। विजया प्रसन्न हुई। राज्यश्री ने उस दिन विहार में सहस्र घी के दीपक जलवाये। एक सप्ताह बाद उसने दस सहस्र दीपक जलवाये। राज्यश्री का नाम फैलने लगा।

वह भिक्षुणियों को निमंत्रित करती। कोई-कोई तरुणी भिक्षुणी आती। उस मुंडित यौवन में भी चपल भिक्षुणियों की आतुरता नहीं छिपती। राज्यश्री उससे घृणा करती।

उसी समय संवाद ज्ञात हुआ कि भिक्षुणी बाधा गर्भवती थी। वह किसी वज्रयानी भिक्षु की एक रात्रि शक्ति बनी थी। दुर्भाग्य से जब भिक्षु शून्य में लय हो गया था, भिक्षुणी में संसार का एक नया बंधन प्रारंभ हो गया था।

राज्यश्री ने सुना तो संघस्थविर को बुलवाया। संघस्थविर ने हँस कर कह दिया यह ब्राह्मणों की उड़ाई हुई झूठ थी। वह स्वयं वज्रयानी था। भिक्षु संघ में उसी की परम शून्य साधना थी और वह इसे कैसे स्वीकार करता।

राज्यश्री ने स्वीकार कर लिया।

कान्यकुब्ज जब से दो राज्यों के मिल जाने पर राजधानी हुआ तब से उसका वैभव दिन दूना रात चौगुना होकर बढ़ने लगा। पहले ही वह अपने समय का एक उन्नत नगर था किन्तु अब तो जैसे उसके वैभव की

की थाह मिलना कठिन हो गया। किंतु राज्यश्री को इस सबसे जैसे कुछ नहीं था। उसके पास जो दासियाँ थीं, वे उसे बहुत से संवाद सुनातीं। राज्यश्री सब सुन लेती किन्तु उनके विषय में कहती कुछ नहीं। दासियाँ समझ नहीं पातीं कि भट्टारिका को यह सब पसंद आया या नहीं।

चयनिका ने राज्यश्री के प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। उसने देखा राज्यश्री इधर कुछ दुबली हो गई थी और उसके नेत्रों के नीचे कुछ काली छाया दीखने लगी थी। एक को दूसरी ने देखा। दोनों विधवा थीं। परम भट्टारिका चयनिका राज्यश्री से दो वर्ष बड़ी थी! वह भी अपने समस्त शृङ्गार छोड़ चुकी थी। दोनों ही परम सुन्दरी थी। राज्यश्री को लगा चयनिका अधिक सुन्दरी दिख रही थी जैसे समुद्र की तरङ्ग उठ कर उठी रह गई हो, नीचे नहीं आयेगी।

'सम्राट पञ्चनद प्रदेश पर आक्रमण करने गये हैं।' परमभट्टारिका ने बातों ही बातों में कहा। तरला चरणों के पास बैठ गई।

'हत्या और नरबलि का नाटक समाप्त ही नहीं होता।' राज्यश्री ने कहा। वह चयनिका को अत्यन्त आकर्षण दिखाई दी जैसे भव्य समुद्र के ऊपर पूर्णिमा का चंद्रमा निकल आया था लेकिन आज समुद्र मुस्करा कर कह रहा था......अब नहीं...अब नहीं...अब ज्वार की तृष्णा नहीं रही।

चयनिका ने आश्चर्य से देखा। यह क्या कह रही है।

'तो क्या राजा को विजय नहीं करनी चाहिये?' उसने पूछा।

'क्यों नहीं करनी चाहिये। अपने आपको जीतना प्रत्येक का धर्म है।'

'अपने आप को जीतना क्या होता है?'

'विधवा जिस प्रकार अपनी वासना का दमन करती है, जानती हो? परमभट्टारिका चयनिका ने परमभट्टारिका राज्यश्री की यह बात सुन कर देखा। दोनों के नेत्र मिले। एक ओर विषैले नागों ने फूत्कार किया।

दूसरी ओर नाग सो चुके थे। उन्होंने न तो आक्रमण को आक्रमण समझा, न प्रत्याक्रमण करने का ही विचार किया। चयनिका अब अप्रतिभ हो गई। उसे लगा राज्यश्री का सिर फिर गया था। उसने कहा : परम भट्टारिका!

राज्यश्री ने कहा : भाभी! नाम भूल गई?

चयनिका प्रसन्न हो गई। उसने राज्यश्री के सिर पर स्नेह से हाथ फेरा। बड़ी तो इतनी नहीं थी, फिर भी बड़े भाई की पत्नी थी। इसका अधिकार तो बड़ा था। कहा : तरला! बेचारी पर कितना दुख पड़ा है। कहते-कहते वे रो दीं।

राज्यश्री की आँखों में पानी भर आया कहा : 'मुझ अभागिन ने ही तो तुम्हारा जीवन नष्ट कर दिया भाभी। दोनों रोने लगीं। फिर चयनिका ने कहा : मत रो पगली! मत रो।

राज्यश्री मुस्कराई।

चयनिका उठ खड़ी हुई। राज्यश्री भी। कहा : भाभी! मेरी बात को अनुचित तो नहीं समझा?

'नहीं, राज्यश्री,' चयनिका ने कहा, 'तू कितनी दुःखिनी है, यह क्या मैं नहीं जानती? हाँ, अब मैं चलूँ।'

उसके चले जाने पर उसने भिक्षुणी विजया से कहा : राज्य की तृष्णा मनुष्य को कितना बर्बर बना देती है!

विजया ने सुना। सुना, पर समझी नहीं। बोली : गुरुदेव से पूछो न परम भट्टारिका।

'वे बता सकेंगे?' राज्यश्री ने अविश्वास से कहा।

विजया ने कहा : क्यों नहीं?

वह उठ कर चली गई। गुरुदेव दिवाकर मित्र जब आये तो राज्यश्री ने उठ कर प्रणाम किया।

गुरुदेव को लगा उनकी शिष्या में कुछ परिवर्तन आ गया था।

क्या यह गौरव था ? नहीं। फिर यह क्या था ? संभवतः गौरव के प्रति एक विरक्ति थी।

उन्होंने कहा : वत्से ! तूने मुझे बुलाया ?

'गुरुदेव', उसने कहा, 'यह विजयोन्माद क्या सद्धर्म के विरुद्ध नहीं है ?'

'नहीं', गुरुदेव ने कहा।

राज्यश्री चौंकी। यह वह क्या सुन रही है।

'क्यों गुरुदेव ?'

'दुष्ट का दमन करना राजा का धर्म है।'

राज्यश्री की समझ में नहीं आया कि यह एक बौद्ध कह रहा था या ब्राह्मण। वह सोचती रही। उसने फिर कहा : किंतु गुरुदेव ! यह धर्म भी तो मनुष्य का बनाया है।

गुरुदेव दिवाकरमित्र उत्तर न दे सके। 'अपने को संयत कर', कह कर चले गये। उनके चले जाने पर जब विजया भिक्षुणी आई उसने अपने आप कहना प्रारंभ किया :

भिक्षु प्रवर चले गये। वे निर्वाण को कठिन बनाने वाले हैं देवी ! वे हीनयानी हैं न ? वे निर्वाण से मनुष्य को डराया करते हैं। मनुष्य का निर्वाण बहुत सहज है। बहुत सहज है। थोड़ी सी साधना और उसमें भी परम तृप्ति।

राज्यश्री संतुष्ट नहीं हुई।

वह सोचने लगी। क्या विजया ठीक कहती है।

पूछा : वह परम तृप्ति क्या है ?

'प्रवृत्ति का प्रवृत्ति से निषेध।'

'सो कैसे होगा ?'

'वासना का दमन वासना की पूर्ति है।'

राज्यश्री काँप उठी। मित्तकाली का मुख याद आ गया।

विजया ने कहा : वही शून्य सुख है। तथागत ने उसे स्वीकार किया था। वे कभी पृथ्वी पर नहीं आये। सुखावती में रहते हैं। स्वर्ग में उन्होंने जो शाक्य मुनि का जन्म लिया।

विजया कहती रही। राज्यश्री ने नहीं सुना।

२५

राज्यश्री अब गाथाएँ सुनती। 'बुद्ध के समय में अनेक स्थविराएँ हुई थीं जिन्होंने अपने जीवन को बुद्धशासन में व्यतीत किया था। राज्यश्री को विजया, भिक्षुणी साहस देती।

विजया कहने लगती : महाप्रजापतिगौतमी का सा जीवन व्यतीत करो राज्यश्री। बहुजनो के लाभ के लिये जिओ। धम्मदिन्ना वैश्या थी। समृद्ध श्रेष्ठि विशाख से उसका विवाह हुआ था। एक दिन वह बुद्ध भगवान के पास गया। उसके बाद वह भिक्षु हो गया। धम्मदिन्ना भी भिक्षुणी हो गई। प्रसेनजित् की भगिनी उपदेश सुन कर प्रव्रज्या धारण करने को उन्मुख हुई थी। उसके ज्ञान को देखकर बुद्ध ने कहा था : वृद्धा सुख से सो। परमशान्ति पा। तू निर्वाण प्राप्त करके परमशान्त हुई।

और फिर वह अभिरूपा नंदा शाक्य क्षेमक की पुत्री के अनिंद्य-सौंदर्य का वर्णन करती। सम्यक् सम्बुद्ध ने नंदा का रूप गर्व मिटा दिया था। अड्ढकासी तो वेश्या थी। जब उसने भगवान के पास श्रावस्ती जाकर प्रव्रज्या लेने की इच्छा की तो वेश्याओं ने विरोध किया। किन्तु शास्ता ने उसे भी कृतार्थ किया था। अड्ढकासी का शुल्क समस्त काशीराज्य की आय से अधिक था।

किसका शोक किया जाये। जीवंती माता उब्बिरी जब पुत्री के लिये

विलाप करती अचिरावती नदी के तीर पर बैठी थी, बुद्ध भगवान् ने उसे उसकी चौरासी लाख कन्याएँ दिखाईं। उब्बिरी शान्त हो गई।

और फिर संध्या के झुटपटे मे जब वृद्ध स्थविर बुद्ध प्रतिमा के सामने स्वर्ण के दीपकों मे गंधित घृत डाल कर शिखाएँ उठा देते और वे साधनामग्न आलोक खंड स्थविर दृष्टि से बुद्ध प्रतिमा पर अपना गम्भीर आलोक डालने लगते राज्यश्री अपने हृदय के उद्वेग की आतुरता को प्रशमित करने के लिये धीरे-धीरे विराट स्तंभों के बीच में घूमती हुई अलिंदों में एकांत में अम्बपाली का यह गीत गाने लगती :

मेरे भौंरौ के से वे केश जो कभी घुंघराले काले थे, अब सन से सफ़ेद हो गये हैं। सत्यवादी के बचन कभी असत्य नहीं होते। पुष्पाभरणों से ग्रथित जिस कवरी ने कभी चमेली की गंध का वहन किया था, उसमें से खरहे के रोओं सी दुर्गन्ध आती है। कंघी चिमटियों से सज्जित केशपाश सघन उपवन सा नहीं रहा, विरल हो गया है। स्वर्ण सा उन्नत शीश आज भग्न और नत है। वह चित्र लिखित-सी बंकिम अराल भ्रू आज जरा की झुर्रियों से लटक गई है। मेरे नील नयनों की आभा छिन गई है। यौवन के सुन्दर शिखर सी नासिका दबकर पिचक गई है सुगठित कंकण से मेरे कान लटक गये हैं। कदिली कलिका से दाँत जैसे पीले हो गये हैं। कलकंठनिनादिनी कोकिला का सा स्वर भर्रा गया है। मेरी शंख-सी ग्रीवा विनमित है। सुडौल गदा सी बाहुद्वय पाडर वृक्ष की शाखाओं-सी दुर्बल हैं। आभूषणों के स्थान को हाथों पर गाठो ने ले लिया है। मेरे सुडौल उन्नत स्तन पानी से रिक्त चमड़े की थैली से लटक गये हैं। हाथी की सूंड सी जंघाएँ पोले बाँस की नली सी रह गई हैं। नूपुररव मुखरित पग तिल के सूखे डंठल से अवशिष्ट हैं। रुई से कोमल चरण झुर्रियों से भर गये हैं। जीर्ण घर बिना लिपाई पुताई के जैसे गिर जाता है, वैसे ही यह जरा का घर भी शीघ्र गिर जायेगा।

हाहाकार करता हुआ राज्यश्री का हृदय इसे गा गाकर अपने भीतर

एक समवेदना का अनुभव करता। अम्बपाली के रूप वर्णन को गाते समय वह जैसे अपनी रूप अनुभूति को बार-बार दुहरा लेती। याद कर लेती कि वह क्या है। और फिर वह जरा का वर्णन उसे डराने लगता।

यह भय साधारण नहीं था। वह जो निश्चय ही आने वाला बुढ़ापा है, जो एक दो नहीं, सब पर छाता है, कौन उससे भयभीत नहीं होता? कौन नहीं चाहता कि वह उस अवस्था को कभी भी प्राप्त नहीं करे जिसमें सब कुछ इतना पतनोन्मुख होता है, इतनी शीघ्रता से नष्ट हो जाने वाला होता है। किन्तु उससे क्या कोई बच सका है? तथागत को वृद्धावस्था के कष्टों ने आत्म सत्यों की ओर प्रेरित किया था। कुछ लोग इस समय सिद्ध नागार्जुन के उन गुटकों की बात करने लगते थे, जिनसे यौवन अक्षुण्ण हो जाता है। यह झूठ है, राज्यश्री सोचती। यदि यही होता तो नागार्जुन मृत्यु को क्यों प्राप्त होता? फिर प्रज्ञापारमिता और महाश्री तारा तथा कुरुकुल्ला की साधना की बात चल पड़ती। धन के देवता जम्भल की उपासना कितनी अधिक प्रचलित थी। यह धन की उपासना महायान के माध्यम से वज्रयान में अधिक फैल गई थी। राज्यश्री इसे स्वीकार नहीं करती थी। उसका चिंतन दार्शनिक था।

राज्यश्री ने जब विजया के प्रकोष्ठ में एक दिन जाने का विचार किया, वह बाहर ही ठिठक कर रह गई। उसने सुना प्रकोष्ठ में से संयत स्वर आ रहा था: नीलवर्णां कर्त्रिकपालधरां सक्रोधा लम्बोदरां··· इसके बाद कुछ गुनगुनाहट, फिर···पुनर्जामि आर्यजागुलीं···

राज्यश्री ने ध्यान से सुना। विजया धीरे-धीरे कह रही थी: इलिमित्ते-तिलिमित्ते इलितिलिमित्ते दुम्बे दुम्बालीए दुम्मे दुम्भालीए तर्क्के तर्क्करणो मर्म्मे मर्म्मरणो कश्मीरे कश्मीरमुक्ते अघ्न अघ्नने अघनाघने इलिइलीए मिलीए इलिमिलीए अक्याइये अप्याइये श्वेते श्वेततुण्डे अननुरक्ते स्वाहा···

राज्यश्री का सिर घूमने लगा। यह क्या है? यह तो कोई मंत्र या धारिणी है, जिस पर वह भिक्षुणी समझती है कि सफलता रखी है। सफलता किस लिये? तथागत ने निवृत्ति मार्ग बताया था। यह तृष्णाओं का पथ है।

यह सब दुख है। तथागत ने कहा था। यह सब शून्य है, फिर यह क्यों कहा गया? और फिर शून्य है तो उसकी साधना क्या? और राज्यश्री सोचती यह क्रियाओं का संघद्वय पुनर्जन्म और जन्मांतर क्या है? फिर वह सोचती यदि पुनर्जन्म नहीं होता तो वह विधवा क्यों हो जाती? अवश्य ही उसने पूर्व जन्म में कुछ ऐसे पाप किये होंगे।

तब आलयविज्ञान धरा रह जाता और वह चीन के रेशम में मढे तकियों पर सोने की कारीगरी से सजे हाथी दाँत के विशाल पलंगों पर लेट कर रोने लगती। और तब अहं की मर्यादा प्रकृतिजन्म सहज वासना को दबाने के लिये उस पर गांभीर्य और दर्शन का आडंबर खड़ा करती।

नालंद के स्वर्गीय मेधावी अकाट्य तर्क पंडित धर्मपाल के शिष्य शीलभद्र उन दिनों कान्यकुब्ज पधारे। राज्यश्री उनके दर्शन करने गई। शीलभद्र उस नालंद के कुलपति थे जहाँ दस सहस्र विद्यार्थी पढ़ते थे। सुदूर चीन, पारसीक तथा मिस्र तक से वहाँ विद्यार्थी आते थे। आते ही द्वार पंडित विद्यार्थी से तीन प्रश्न करते। यदि विद्यार्थी दो का भी उत्तर दे देता तो प्रवेश मिलता था। नालंदा में बौद्ध प्रभाव प्रबल था और तंत्र का प्राधान्य था। काश्मीर, कामरूप और दक्षिण के श्रीपर्वत से साधक वहाँ आते थे। प्रत्येक विद्यार्थी को स्नातक होने के पूर्व दो पुस्तकें लिखनी पड़ती थीं, जो वहीं के पुस्तकालय में रख दी जाती थीं। इस प्रकार वहाँ सहस्रों पुस्तकें एकत्र हो गई थीं। कालिदास और अर्जुन तथा दण्डी के काव्यों और नाटकों पर टीकाएँ लिखी जाती थीं। श्रेष्ठियों के दानों और सामंतों की दी हुई जागीरों से नालदा में अपार

धनराशि इकट्ठी हो रही थी। शीलभद्र उस सब के आचार्य थे। उनके गुरुभाई धर्मकीर्त्ति का देहान्त हो चुका था। धर्मकीर्त्ति तो 'सुनिपुठाबुद्धि' 'जगदभिभवधीर' नामों से विख्यात थे। तिब्बत और चीन में उनके ग्रन्थों की व्याख्या हो रही थी। इस समय बौद्ध प्राकृत छोड़ कर संस्कृत में लिखने लगे थे, क्योंकि बौद्ध धर्म जनसमाज का नहीं रहा था।

राज्यश्री ने शीलभद्र को प्रणाम किया। बात चल पड़ी। शीलभद्र राज्यश्री के विषय में सुन चुके थे। वे वृद्ध थे। पलितकेशों को मुंडित रखते थे, और पीतवसन धारण करते थे। उनके मुख पर एक सौम्यता थी।

'भन्ते राज्यश्री ने कहा, 'मेरी गाथाएँ मेरे मन की वितृष्णा को दूर नहीं कर सकीं। मैं कभी पुरुषार्थ नहीं कर सकी।'

'उपासिका', वृद्ध शीलभद्र ने कहा, 'धैर्य धारण करो। देखती हो यह समस्त विश्व जो है वह क्षणिक है। इस प्रकार प्रवाह मग्न रूप बदलता हुआ वास्तव में शून्य है।'

'हे भन्ते', राज्यश्री ने स्वीकार किया।

'शून्य ही मूलतत्त्व है यह वसुबंधु, दिङ्नाग आदि आचार्य नहीं मानते। विज्ञान अर्थात् चित्त या मन ही मूलतत्त्व है। प्रवृत्ति-विज्ञान और आलयविज्ञान चित्त के दो भाग हैं। आलयविज्ञान प्रवृत्ति-विज्ञान के साथ जन्म लेता हुआ, मरता हुआ अपनी सन्तान में प्रवृत्ति-विज्ञान का आलय है। इसी में पूर्वजन्म की वासना रहती है।'

राज्यश्री को लगा यह आलय विज्ञान एक रहस्य था। उसने पूछा : भन्ते ! स्पष्ट नहीं हुआ। यह सौतांत्रिक योगाचार तो पारस्परिक विरोध पर आश्रित है। यदि विज्ञान आधार है तो भौतिक मात्र ही सत्य है, यदि शून्य भी है और विज्ञान भी तो दोनों को जोड़ने की यह संस्कार वासना एक दुरूहता है। जब सब कुछ बदल रहा है तो मूलतत्त्व उसमें कहाँ है ?

वृद्ध शीलभद्र घबरा गये। उन्हें अनुभव हुआ कहीं कुछ गड़बड़ थी। यदि सब भौतिक बाह्य ही सत्य था, तो फिर यह अज्ञात रहस्य भावना क्यों आई? यह विज्ञानवाद जगत को झूठा कह कर भी अपने लिये वास्तविकता का आधार खोज रहा था। राज्यश्र के मुख पर उन्होंने देखी वही दृढ़ता जो उन्हें प्रज्ञापारमिता मुख पर दिखाई देती थी।

'भन्ते!' राज्यश्री ने फिर कहा, 'सद्धर्म में स्त्री से यह वामाचार कैसे प्रचलित है। यह मंत्र, तंत्र, धारिणी, यह विलास भावना कैसे है? और यह अनेक-अनेक नई जातियाँ जो सद्धर्म स्वीकार कर रही हैं, अपने प्राचीन देवताओं को बौद्ध कलेवर में स्थापित कर रही हैं। क्यों?'

आचार्य शीलभद्र अभी सोच भी नहीं पाये थे कि राज्यश्री ने फिर पूछा : भन्ते! बोधिसत्व सुखावती में रहते हैं तो पृथ्वी पर क्यों बार-बार सुख देने आकर भी वे सुख स्थापित कर नहीं पाते और यदि तथागत बार-बार नहीं आते, केवल एक बार मायादेवी के एक पुत्र शाक्यसिंह थे, तो फिर उनके उपदेश की नौका जल को छोड़ कर तीर पर उठाई जा रही है!

शीलभद्र ने कहा : सब अनित्य है उपासिका, अर्थक्रिया मे समर्थ परमार्थसत् है, अर्थक्रिया मे असमर्थ संवृतिसत् है। संस्कार भी अनित्य है। किन्तु प्रवाह क्षणिक लेकर भी क्रिया व्यापार में बद्ध है। जो सत् है वह क्षणिक है। जो भाव पहले होकर पीछे नहीं रहता, वह अनित्य है। नाश अहैतुक है। कार्य कारण समूह से उत्पन्न होता है। वहाँ ईश्वर नहीं। सत्ता नहीं। समूह स्थिरता से नहीं प्रवाह से चलता है। वही क्षणिकता है, कारण भेद कार्य बहुलता प्रगट करता है। संहत में हेतु है, अभेद प्रारंभ मे नहीं है। अविद्या ही बुराई की जड़ है।

राज्यश्री को तृप्ति हुई। तब आत्मा नहीं है, परमात्मा नहीं है। कोई नियंता नहीं है। सर्वत्र दुख ही दुख है। इस दुख से त्राण पाना है।

राज्यश्री को लगा वह निखिल सृष्टि को विधवा के रूप में देख रही है। यह जो सहस्र तारा आकाश में बिखरे हैं यह भी किसी विधवा के बिखरे हुए अलंकार हैं। वह गम्भीर मुद्रा में उठ खड़ी हुई। उसने कहा : भन्ते! मुझे चीवर दें। मैं भिक्षुणी होना चाहती हूँ।

शीलभद्र ने देखा। जिसे वह स्वयं स्पष्ट नहीं कर पाये थे, यह नारी कैसे समझ गई थी, यह वे अभी तक सोच रहे थे। किन्तु वे चुप हो रहे।

राज्यश्री ने कहा : भन्ते! जीवन दुख है, मेरे लिये इतना ही सत्य बहुत है। लोक का कल्याण करना ही मेरा संबल है। जब मैं ही नहीं है, तो इस मै के जाल में मनुष्य स्वार्थों में संसार का अकल्याण क्यों करे? क्यों न दुखों को मिटाया जाय?

राज्यश्री को लगा वह दुख से ग्रस्त नहीं थी। सारा ससार दुःख से व्याकुल था। वह स्वयं गौतमबुद्ध की भाँति अब मृगदाव में खड़ी कह रही थी : डरो नहीं, मैं तुम्हें दुःखों से छुड़ाने आया हूँ।

और आचार्य शीलभद्र ने देखा राज्यश्री के सुन्दर मुख पर एक नवीन आभा थी, जैसे डूबती हुई पृथ्वी प्रभात के अरुणिम आलोक में यह कह उर निकल आई हो कि मै रत्नगर्भा माता वसुन्धरा हूँ, मैं तुम्हें त्राण देने के लिये तुम्हारा भारवाहन करती हूँ...

उन्होंने अपने आसन से उठकर कहा : मैं तुम्हें निश्चय ही प्रव्रज्या दूँगा। भाग्य ने मुझे इतने महान् कार्य का माध्यम बनाया है तो उस पर मैं सदैव गर्व किया करूँगा।

२६

साम्राज्य में संवाद वायुवेग से फैल गया कि परमभट्टारिका देवी ने राज्यश्री प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। प्रजा में एक आश्चर्य फैला। स्त्रियों

में एक अद्भुत कोलाहल। वृद्ध श्रेष्ठि घूर्णक की तीसरी तरुण पत्नी सुलभा ने अपनी दासी से कहा : तो देवी ने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली ? वह हँस दी। दासी भी। सुलभा के तरुण सेवक सरह ने व्यंग्य से देखा। और फिर वह सुलभा की ओर देख कर हँसा। सुलभा कुछ लजाई, फिर हँस कर उसने उसकी आँखों में झाँका। ऐसा रहा कुछ भाव कि देखे हैं बहुत देखे हैं। किन्तु राज्यश्री का जीवन कठोर साधना बन गया। वह क्रम से बुद्ध शासन में तल्लीन हुई। उसने चीवर धारण कर लिया। उसके गौर वर्ण पर वह पीला चीवर ऐसा प्रतीत होता जैसे स्निग्ध पुण्डरीक पर स्वर्ण फैल गया हो। उस चीवर ने उसे एक नई महिमा से गौरवान्वित किया। राज्यश्री के सुन्दर केश चले गये। वह शीश अब मुण्डित दिखाई दिया। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कभी सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा दिखी होगी।

वह अब दीन दुखियों के जीवन मे अधिक ध्यान देने लगी। प्रातः काल से मध्याह्न तक उसके द्वार पर भूखे और दरिद्र आकर एकत्र होते। राज्यश्री उन्हें अनेक प्रकार के दान दिया करती। राज्यश्री को आश्चर्य होता कि इतना वैभव होते हुए भी साम्राज्य मे इतने भूखे और दरिद्र लोग कहाँ से आ जाते हैं।

उसने भिक्षुणी विजया से कहा : यह लोग भिक्षा प्राप्त करने आते हैं, क्या यह सत्य ही इतने भूखे हैं ?

'नहीं तो ?' विजया ने प्रश्नवाचक इंगित से आँखे उठाईं।

राज्यश्री चुप हो गई।

विजया ने कहा : यह लोग यदि जम्भल को उपास्य बनाते तो वह नकुल ग्राहक अवश्य इनके दुख दूर करता...

राज्यश्री ने नहीं सुना। वह इन वज्रयानी देवताओं में न विश्वास करती थी, न करना चाहती थी।

विजया ने देखा कि राज्यश्री का ध्यान उसकी ओर है नहीं, तो अपने आप चुप हो गई।

इस समय हर्षवर्द्धन की अक्षुण्ण शक्ति उमँगने लगी थी। आर्यावर्त में उसका लोहा काँपने लगा था। उसका नाम सुन कर शत्रु स्त्रियाँ थर्रा जाती थीं और अपने पुत्र-पतियों से प्रार्थना करती थीं कि वे उसके संमुख शीश नहीं उठाये। कहीं ऐसा न हो कि वह सबको कुचल दे। सम्राट् हर्षवर्द्धन की विजयवाहिनी जिस समय तूर्यनिनाद सुन कर उठती तो लगता जैसे धरती में से लोहे की फसल उठ खड़ी हुई। और जब वह चलती तो धरती से उठी धूलि आकाश को ढँकने का प्रयत्न करती। उसके विशाल काय लंबे लंबे दाँतों वाले हाथी जब झूमते तब उन पर सुनहली झूल धूप में चमचमाती हुई ऐसी लगती जैसे चंचल बादलों पर खण्ड खण्ड होकर बिजली जम गई है जो दिन में भी चमक रही है। उसके हिनहिनाते अश्व जब नमक की शिलाएँ चाट कर धरती खूँदते तब लगता कि उसकी शक्ति आकाश और पृथ्वी को दहला रही है।

दासी तरला ने मयूर पुच्छ से हाथी दांत की चौकी साफ करते हुए कहा : देवी! आज तो मैं एक नई बात सुन कर आई हूँ।

चयनिका ने नहीं देखा। पर ऐसे लगा जैसे सुन रही है।

'देवी! सम्राट का विवाह...' वह कह नहीं सकी।

चयनिका के नयन उठे। उसने देखा। फिर कहा : फिर?

'लोगों को विस्मय है,' तरला ने बात पूरी की।

'अवश्य होगा।'

तरला ने कहा : परमभट्टारक का यौवन...

फिर रुक गई।

'उनकी भगिनी से कह, समझी,' चयनिका ने कहा। फिर एकदम ही वह चुप हो गई।

तरला ने इशारा समझ लिया ।

अपना काम करके तरला चली गई । चयनिका बैठी बैठी सोचती रही । तरला से निकल कर बात अलिंदों में घूमने लगी ।

राज्यश्री को जब ज्ञात हुआ तो उसने दासी प्रियम्वदा से कहा : प्रियम्वदा !

'देवी !'

'सम्राट् से पूछ कर आ । क्या वे मुझसे मिलने का कुछ अवकाश निकाल सकेंगे ?'

दासी सीधे सम्राट के संमुख उपस्थित हुई । उसने देखा वे गम्भीर मुद्रा में थे । प्रत्येक दासी अपने अविवाहित स्वामी के संमुख ऐसे खड़ी होती थी जैसे मुझे क्यों नहीं चुन लेते ? मैं भी तो स्त्री हूँ । उसने एक बार बंकिम भ्रू करके दौवारिक को देखा और फिर नूपुर बजाया ।

सम्राट् महाबलाधिकृत से मंत्रणा कर रहे थे । उनके समय में एक भी क्षण अब राजनीतिहीन नहीं था । महाबलाधिकृत अपना शिरस्त्राण पहने झुके हुए कुछ कह रहे थे और सम्राट् चुपचाप सुन रहे थे ।

पञ्चनद और मिथिला की विजय समाप्त हो चुकी थी । वहाँ से अपार सम्पत्ति की प्राप्ति हुई थी ।

'सबको नहीं महाबलाधिकृत,' सम्राट ने कहा ।

'सम्राट !' महाबलाधिकृत ने ऐसे कहा जैसे आप अपनी कोमलता से बना बनाया खेल बिगाड़ रहे हैं ।

'क्यों ? कुछ को तो राज्य संभालने दो । जो विरोध करे उसे हटा दो ।'

'देव ! एक नये कुल की सेवा पुराने कुल के स्वामिभक्त कर सकेंगे ? यदि हाँ, तो वे आपके लिये प्राण देने को कदापि तत्पर नहीं होंगे ।' महाबलाधिकृत की बात में सार था । सम्राट् सोचने लगा । दासी प्रियम्वदा ने धीरे से बाँयाँ पाँव उठा कर ऐसे आगे रखा कि

दूसरी बार नूपुर बजा। और वह मनोहर स्वर पुरुष के वक्ष पर सरकती गुदगुदी सा सिहर उठा। प्रियम्वदा आगे बढ़ी।

सम्राट् ने प्रियम्वदा को देखकर हँसकर कहा : क्या है प्रियम्वदा?

'देव! सेवा में निवेदन है···'

'शीघ्र कह···'

'परमभट्टारिका राज्यश्री ने अवकाश प्राप्त होने पर······'सम्राट् ने चौक कर उसकी ओर देखा कि प्रियम्वदा चुप हो रही।

प्रियम्वदा को अब कुछ कहने की आवश्यकता नहीं थी। लगा कि अब सम्राट् उठ कर खड़े होने वाले हैं, परन्तु उनकी दृष्टि फिरी और विशालकाय महाबलाधिकृत बीच में आ गया।

सम्राट् ने कुछ क्षण सोचा। फिर कहा : तू जा मैं देवी से मिलूँगा।

प्रियम्वदा ने एक दीर्घ श्वास लिया। महाबलाधिकृत ने तीक्ष्ण नयनों से उसे देखा। प्रियम्वदा भांप गई और लौटते समय उसने निर्भय होकर आँखें भर कर सम्राट् को देखा और फिर महाबलाधिकृत को ऐसा देखा जैसे मैं क्या तुम से डरती हूँ जो आँखें झुका दूँ। सम्भवतः उसके हृदय में इस कल्पना का सुख था कि वह सम्राट् को अपने ऊपर रिझा लेने वाली है।

साँझ हो गई थी। बुद्ध प्रतिमा के सम्मुख असंख्य दीप जल चुके थे। उनका शांत आलोक अब धातुमूर्ति पर स्थिर हो गया था। गन्ध से मदिर महक रहा था। सब कुछ शांत था।

सम्राट् हर्षवर्द्धन के साथ प्रियम्वदा ने प्रवेश किया।

'देवी कहाँ है?' सम्राट् ने पूछा।

'भीतर हैं, सम्राट्!' प्रियम्वदा ने अपनी समस्त शक्ति से प्रहार किया। प्रियम्वदा थी सुन्दरी। और उसे अपने सौंदर्य की अनुभूति भी थी।

हर्षवर्द्धन ने देखा ही नहीं। उसे राज्यश्री की चिन्ता थी। उसने कहा : तो वहीं चल।

प्रियम्वदा आहत हुई। फिर भी उसका मन हारा नहीं। स्तंभों के अंधकार में उसने आतुरता से सम्राट् का हाथ पकड़ लिया। उसकी लम्बी सांसें सुन कर सम्राट् घबरा गये।

सम्राट् हर्षवर्द्धन ने देखा और उन्हें लगा किसी भयानक हाथ ने उनको ग्रस लिया है।

'दासी!' सम्राट् ने अधिकार के स्वर में कहा।

'देव!' प्रियम्वदा उसके चरणों पर गिर गई, 'दासी को इन चरणों में स्थान दो।'

हर्षवर्द्धन क्षण भर चुप रहा। फिर कहा : उठ!

दासी उठी। हर्ष ने कहा : अब ऐसा अपराध क्षम्य नहीं होगा।

वह आगे बढ गया। दासी वहीं रोने लगी। उसका स्वर बाहर नहीं निकला। कण्ठ में घुटने लगा। दूर से दासी प्रियम्वदा को सैरंध्री आभा ने देखा। वह ठिठक कर रह गई, फिर चली गई।

सम्राट् हर्षवर्द्धन ने भीतर जाकर देखा राज्यश्री बुद्ध प्रतिमा के संमुख खड़ी थी। उसके प्राण जैसे कंठ में आ गये। देखा तो पहले भी था किन्तु इस समय उसमें मनुष्य की निर्बलता थी। गौरव का अहंकार नहीं था।

उसकी भगिनी, मुन्डितशीश! कहाँ हैं वे सुन्दर केश। क्या बेचारी का जीवन इसी प्रकार दीपक की भाँति निर्धूम जलने के लिये था! जिस शरीर पर एक दिन चीनांशुक अपनी शबल रूप छाया से धन्य होता था, उस पर आज और कुछ नहीं, एक चीवर! एक नीरस चीवर!

सम्राट् का सिर घूम गया। वे कठिनता से सँभले।

मनुष्य का भाग्य! क्या तू सचमुच इतना कठोर और बर्बर है? कमल का सुन्दर पुष्प एक पाषाण पर पड़ा है! और कितनी छलना है

कि वह अपने को सुखी समझने का प्रयत्न कर रहा है। क्या यह कभी हो सकेगा?

राज्यश्री गम्भीर थी। अपने भावों में खोई हुई थी। उसे नहीं मालूम हुआ कि द्वार पर सम्राट् खड़े हैं। हर्षवर्द्धन क्षण भर चुप खड़ा देखता रहा और फिर उसने धीरे से पुकारा : देवी!

उसका वह संयत स्वर अपने भीतर कितनी ममता, कितना स्नेह कितना आशीर्वाद लिये हुए था, यह छिप नहीं सका। उसके स्वर की अवरुद्ध लिप्सा शात रूप में मुखर हुई और अपने श्रोता के हृदय को छू गई।

राज्यश्री ने मुड़ कर देखा। कहा कुछ नहीं। वह अपनी पूजा में तल्लीन थी। उस समय सम्राट् हर्षवर्द्धन प्रतीक्षा में खड़े रहे। उनका मस्तक बुद्ध प्रतिमा के संमुख झुक गया। धीरे-धीरे घन्टा बजता रहा। और वह अजस्र किन्तु संयत नाद उतरते अंधकार को और गहरा कर चला।

पूजा समाप्त हो गई। कुछ हलचल हुई। हर्षवर्द्धन ने सिर उठाया। राज्यश्री ने इंगित किया—अभी आई। दासी प्रियम्वदा आ गई। वह रोकर आई थी। उसके नेत्र सूज गये थे। लाल थे। सम्राट् को देख कर जैसे वे आँखें फिर रोने के लिये कातर हो उठीं। उनमें एक चमक आ गई। सम्राट् ने आँखें हटा लीं।

राज्यश्री बाहर आ गई। उसकी दृष्टि प्रियम्वदा पर गई। वह देख कर चौंकी। पूछा : क्या हुआ री तुझे?

प्रियम्वदा ने सिर झुकाकर कहा : कुछ तो नहीं देवी।

'फिर ऐसी क्यों दीख रही है? तू प्रसन्न है कि शोकग्रस्त है यही मैं तुझे देखकर नहीं समझ सकी। इतनी व्याकुल क्यों है? कह दिया न मेरा संवाद भइया से?' हर्षवर्द्धन चौंक उठा। उसने कहा : भइया से क्या संवाद कहलाया था तुमने?

'क्यों, कहा नहीं प्रियम्वदा ने ?' उसने मुस्का कर पूछा।

'राज्यश्री !' हर्ष ने चौंककर कहा, 'वह दासी है।'

'है तो', राज्यश्री ने कहा—फिर चौंकी—'क्यों ? क्या हुआ ? खैर, उसकी फिर सुनूँगी भैया। पूछती हूँ तुम विवाह क्यों नहीं करते ?'

सम्राट् चौंक रहे थे, फट पड़े। बोले : इस दासी से बढ कर तुम्हें भाभी नहीं मिली ?

राज्यश्री ने प्रियम्वदा को देखा। फिर कहा : दासी !

प्रियम्वदा रो दी। कहा : भूल हो गई देवी। अब नहीं।

वह पूरी बात नहीं कह सकी। चुप हो गई।

'क्यों ?' सम्राट् हँसे। उन्होंने जैसे दासी को क्षमा कर दिया। अब वह बात उन्होंने भुला दी। इस समय राज्यश्री को उत्तर दिया।

'लोग कहते हैं', राज्यश्री ने कहा, 'कि सम्राट् को विवाह करना चाहिये ?'

'किसी ने कुछ कहा है ?' सम्राट् ने पूछा।

राज्यश्री ने सिर हिलाया : हाँ।

'क्या तो ?'

राज्यश्री ने कहना चाहा फिर रुक गई। कैसे कहे वह। सम्राट् देख रहे थे। प्रियम्वदा बैठ कर रोने लगी। सम्राट् ने फिर उधर देखा।

राज्यश्री ने कहा : कुछ नहीं, पगली है, सम्राट् ध्यान नहीं दें। मैं इसे प्रव्रज्या दूँगी। इसका मन चंचल है। नहीं कहा तो नहीं। फिर भी मैं सोचती हूँ पुरुष को विवाह तो करना ही चाहिये।

'परन्तु इतनी चंचलता क्यों ?'

'क्या मै आतुर हूँ ?'

'फिर ? मुझे आवश्यकता ही क्या है ?'

राज्यश्री ने मुस्करा कर कहा : सम्राट् ! एक स्त्री को साम्राज्ञी बनाने में इतना भय क्यों ?

हर्षवर्द्धन हँसा : डरता हूँ।

'मेरा अनुरोध है।' राज्यश्री ने कहा।

सम्राट् हर्षवर्द्धन ने देखा प्रियम्वदा अब जा रही थी। उसने देखा कि वह एक बार मुड़ी और उसने आँखें भर कर देखा। उस पर, उसके प्रेम पर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया। सम्राट् ने कहा : वीतराग तो अनुरोध का अधिकार नहीं रखते। तुम सब कुछ छोड़ चुकी हो, फिर इतनी मोहभरी आकांक्षा क्यों? भाग्य बड़ा प्रबल है परम भट्टारिका! जानती तो हो, मेरी बहिन जो मुझसे छोटी है, वह सब कुछ छोड़ चुकी है। उसकी समस्त साधना पुकार-पुकार कर मुझसे कहती है कि हर्षवर्द्धन तू इतना भी नहीं कर सकता? क्या है वह रहस्य, जिसके पीछे उस बालिका ने जीवन के समस्त सुखों का त्याग कर दिया है? क्या है वह दुर्वह वेदना जो उसको ग्रस चुकी है?

राज्यश्री ने ऊँचे स्वर से कहा : सम्राट!

सम्राट् ने देखा। राज्यश्री के मुण्डित शीश पर दीपों का प्रकाश पड़ा। विधवा! जीवित रहने की विवशता! उफ़! भयानक! सब कुछ कितना भयानक! कितनी अदम्य घुटन।

सम्राट् को अपनी भूल का अनुभव हुआ। यह वे क्या कह रहे थे? और उससे जो इतनी पवित्र थी! ग्रहवर्मा का मुख सम्राट् की आँखों के सामने आ गया। वे कांप उठे। क्या उन्होंने राज्यश्री के हृदय को आघात पहुँचाया था? पुरुष स्त्री की व्यथा को समझ नहीं पाया।

राज्यश्री बुद्ध प्रतिमा के संमुख गंभीर खड़ी रही। उसकी उन्नत बंकिम भ्रू अब आकाश जैसे शुभ्र ललाट के नीचे बराबर होकर टँग गई थीं और उसकी स्थिर आँखों में एक जागरण था, जैसे अंततंम से नवालोक उमड़ आया हो।

सम्राट हर्षवर्द्धन घुटनों के बल बैठ गये। उन्होंने बुद्ध प्रतिमा के संमुख उसे देख कर कहा : गोपा!

राज्यश्री चौंक उठी । पुकारा : सम्राट् !

'भिक्षुणी !' सम्राट् ने कहा, 'मैं आज प्रतिज्ञा करता हूँ कि कभी भी विवाह नहीं करूँगा ।'

उसका सिर झुक गया । राज्यश्री के सूने नयन छत पर अटक गये । उनसे दो बूँद आँसू गिरे ।

सम्राट् उठ खड़े हुए ।

चयनिका ने सुना और कहा : तरला ! उस प्रियम्वदा को ही ढूँढ कर ला न ? देवर ने कभी स्त्री देखी नहीं । यह नवयुवक प्रारंभ में स्त्री से डरते हैं तो ऐसे ही योग लिया करते हैं । फिर सब ठीक हो जाते हैं ।

तरला ने कहा : 'देवी ! प्रियम्वदा तो कहीं चली गई । वह प्रासाद में ही नहीं है ।

परमभट्टारिका ने खीझ कर कहा तो तू ही जा न ?'

'देवी', तरला ने पांव पकड़ कर कहा, 'दासी पर इतना रोष क्यों ?'

२७

उत्कल भी जीत लिया गया । सेना की एक चपेट ने उसे ऐसे ढहा दिया जैसे उत्कल एक घरौंदा था । वही उत्कल जिसको प्राचीन काल में दबा देना अत्यन्त कठिन था । उत्कल के योद्धा बड़े दृढ़ थे । किंतु वह भी दबा दिया गया । ताम्रलिप्ति के पोतों पर साम्राज्य की पताकाएँ फहराने लगीं । और वह पोत समुद्र पर सम्राट् हर्षवर्द्धन की गौरव गाथा को पानी पर लिखने लगे ।

सेना में एक संयत शासन था—स्त्री की मर्यादा । किन्तु इसके अतिरिक्त सम्राट् हर्षवर्द्धन की सेना में भी अन्य सामंतों की सेनाओं से विशेष भेद नहीं था । सेना मूलतः और अन्ततः सेना ही थी । सैनिक

अपने को मस्त रखने को मदिरा पान करते ही थे। नर्त्तकियाँ साथ ही रहती थीं जो उनका मन बहलाया करती थीं।

राह में जो ग्राम विरोध करते वे जला दिये जाते। उनके घर गिरा दिये जाते। स्वयं सम्राट् ने एक दिन यह अवस्था देख कर विक्षोभ किया था किन्तु महाबलाधिकृत की दृढ़ धारणा थी कि प्रजा पर आतंक फैलाने और राज्य-विस्तार करने के लिये यह नितात आवश्यक था। यदि यह नहीं होगा और विरोधियों को दण्ड नहीं दिया जायेगा तो युद्ध से कभी अवकाश नहीं मिलेगा क्योंकि फिर वे पग-पग पर अवरोध उपस्थित करेंगे।

जहाँ दो चार बार दण्ड दिये गए, ग्राम के ग्राम झुक गये। उनके लिये झुकना क्या था? यवन, मौर्य, पहलव, कुषाण, शुंग, गुप्त, शक और न जाने कितने पाँव शताब्दियों से उनके खेतों को रौंद चुके थे, घरों को जला चुके थे, हर्ष की सेना कम से कम बलात्कार तो नहीं करती थी। यह अवश्य था कि सैनिक कभी चुपचाप किसी ग्राम स्त्री को मदिरा पिला कर जब उसे घर लौटने योग्य नहीं रहने देते थे तो वह भी निर्विरोध होकर नर्त्तकी बन जाती थी। यह बात सम्राट् तक पहुँच भी नहीं सकती थी।

इस समय उत्तर में जालंधर और हिमालय में तुषारशैल, उत्तर-पूर्व मे पुण्ड्रवर्धन तथा ताम्रलिप्ति, उद्र, उज्जयिनी, वल्लभी, मथुरा, इन्द्रप्रस्थ, स्थाण्डीश्वर सब पर कान्यकुब्ज से शासन होता था।

उत्तर-पश्चिम मे काश्मीर, तक्षशिला के शासकों ने अपनी स्वाधीनता को अभी खोया नहीं था, किन्तु खोये के ही समान हो चुके थे, क्योंकि वे कभी भी सिर नहीं उठाते थे। काश्मीर का शासक अवश्य कभी-कभी हर्षवर्द्धन से टक्कर लेने की चिन्ता करता था। किन्तु उसमें न इतनी शक्ति थी, न साहस ही। वह चुपचाप मन मार कर रह जाता।

केवल गौड रह गया था जहाँ के नरेन्द्रगुप्त शशांक ने अपने को

महाराजाधिराज घोषित कर दिया था। महाबलाधिकृत भाण्डी ने जब यह सुना तो सेनापति सिंहनाद से कहा : तो क्या अब भी गुप्तवंश के खंडहर पर यह उल्लू बैठा ही रहेगा ?

सिंहनाद ने हँस कर मदिरापात्र उठा कर महाबलाधिकृत का चषक भर दिया था। फेन उबलते हुए बाहर गिर गये थे, महाबलाधिकृत ने दूसरा चषक पीकर कहा था : नरेन्द्रगुप्त अभिमानी तो है, परन्तु अब उसका भी समय आ ही गया है।

तब तक सिंहनाद ने तीसरा चषक भर दिया था।

समुद्र की तरंगों की भाँति सेना उमड़ने लगी। हाथी और घोड़े और फिर पदातिक, एक के बाद एक, लहर, पर लहर, थपेड़ा पर थपेड़ा, सन्नद्ध पगचाप और पटह ध्वनि जब गूँजी तो कान्यकुब्ज की स्त्रियाँ और पुरुष एक उन्माद मे पागल से हो गये। जय जयकारों से आकाश फटने लगा। प्राचीन महानगर की वीथियों में चारों ओर उल्लास उमड़ आया। उस दिन भर नृत्य होते रहे। रात्रि के समय नाटक मंडलियों ने अपना कौशल दिखाने की तैयारी प्रारंभ कर दी।

राज्यश्री ने सुना और वह अपने नित्य कर्म में लग गई, किन्तु चयनिका ने प्रासाद सजाने की आज्ञा दे दी। उसकी मुँह लगी दासी बैठी-बैठी अपनी आज्ञा चला कर दासियों को तंग करने लगीं। तरला से चयनिका ने पूछा : सम्राट् आ गये री ?

प्रसन्नवदन सम्राट् हर्षवर्द्धन ने प्रवेश किया। उस समय उनके शीश पर स्वर्ण किरीट था, जिसके लाल मणि अत्यन्त शोभित थे। हीरक चमक रहे थे, किन्तु उन दिनों हीरे के कोने नहीं काटे जाते थे। उनके हाथों पर अङ्गुलित्र थे। वक्ष पर लौह कवच था जिस पर सोने का काम था। वह चमचमा रहा था। बाईं ओर उनका लंबा खड्ग कटि-बंध मे लटका था, जिसकी म्यान पर रत्न टंगे थे और जिसकी लोहे की मूँठ पर सुनहला काम था, और मोतियों की झूल कटिबंध पर थी।

चयनिका ने फूल फेंके। उसकी प्रसन्नता उमंग आई। आज हर्ष को इस रूप में देख कर उसे राज्यवर्द्धन की वह छवि याद आ गई, जब राज्यवर्द्धन हूण युद्ध से विजयी होकर लौटा था। उसी का अनुज कितना वीर, कितना सुन्दर था। इसी युवक को राज्यश्री ने बहका दिया है। आज यदि इसका विवाह होता तो कई कन्या कितनी प्रसन्न होती, उसका जीवन धन्य हो गया होता। उसने मुक्त कंठ से आशीर्वाद दिया: विजय हो, कल्याण हो।

सम्राट हर्षवर्द्धन ने चयनिका के चरणों पर सिर रख कर कहा: माता!

माता! चयनिका का हृदय आवेश से भर गया। क्या अब वह कभी माता हो सकेगी? नहीं, कभी नहीं।

उसने कहा: वत्स!

केवल एक शब्द कहा और गला रुँध गया।

उसी समय तरला ने प्रवेश किया और धीरे से कहा: देवी!

'क्या है?'

'प्रियम्वदा...'

'आ गई?' देवी चयनिका ने मुखर होकर कहा। उनका आनन्द देख कर तरला चुप हो गई। उसका साहस नहीं हुआ कि कुछ कहे। चयनिका ने हर्ष की ओर देख कर कहा: अब कब तक युद्ध करते रहोगे?

'देवी, एक नीच रह गया है। परन्तु अब तो कुछ समय यहीं निवास करूँगा। जो कहोगी करूँगा। अब तुम्हारी सेवा में उपस्थित हूँ।'

चयनिका आनंद से विह्वल हो गई।

कहा: छिः छिः। सम्राट होकर स्त्रियों से ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। सम्राट् तो भगवान के बाद दूसरी शक्ति है।

वह मन ही मन प्रियम्वदा के द्वारा हर्षवर्द्धन को स्त्री के प्रति

आकर्षित कराके, फिर किसी कुलीन राजकुल की कन्या से हर्ष का विवाह करने की सोच रही थी। क्या वह इसमें सफल हो सकेगी?

हर्षवर्द्धन ने कहा : भाभी! वह तो सब सत्य है, किन्तु तुम जब तक भाभी हो, तब तक सम्राट् भी सम्राट् नहीं है। उसकी सरलता से सब अत्यन्त प्रभावित हुए। गर्व तो जैसे इस व्यक्ति को छू तक नहीं गया।

'राज्यश्री कहाँ है?' सम्राट् ने पूछा।

चयनिका ने तरला की ओर देखा। तरला ने कान में कहा : देवी! प्रियम्वदा ने तो आत्महत्या कर ली।

चयनिका का रंग बदल गया। वह क्षण भर स्तब्ध रह गई। उसने अटकते स्वर से कहा : देवर! भिक्षुणी अपनी साधना में मग्न होगी।

भिक्षुणी शब्द का व्यंग्य सम्राट् से छिपा नहीं रह सका। वे तुरन्त समझ गये। परन्तु वे बात को स्पष्ट करके कुरूपता को बाहर नहीं लाना चाहते थे। उन्होंने कहा : तरला चल तो।

तरला संग हो ली। उसने मुड़कर चयनिका को देखा तो घबरा गई। वह चुपचाप चलती रही।

सम्राट् ने जाकर देखा। पृथ्वी पर आसन बिछा है। आगे एक ग्रन्थ रखे राज्यश्री पढ़ रही है। उसके मुख पर गम्भीरता है, जैसे वह कुछ समझने का प्रयत्न कर रही है। सम्राट् ने अपने पाँवों को और धीरे से उठाया ऐसे कि ध्वनि उसे गड़बड़ा न दे। वे जाकर चुपचाप उसके सामने खड़े रहे।

'परमभट्टारिका!' तरला ने अचानक कहा, 'देवी! सम्राट्...'

राज्यश्री ने देखा और उसके मुख से हठात् निकला : अरे!

वह जैसे अपने ध्यानमग्न रहने पर लज्जित थी कि अब तक वह देख भी नहीं पाई! सम्राट् मुस्कराये।

राज्यश्री उठ खड़ी हुई।

'तुम किसी दुख से ग्रस्त हो राज्यश्री?' सम्राट् ने कहा।

'सम्राट्! संसार दुःख ही तो है। सोच रही थी।'

'क्या देवी?'

'दासी प्रियम्वदा ने आत्मघात कर लिया। मनुष्य वासना में बद्ध क्या नहीं करता?'

सम्राट् स्तब्ध रह गये। फिर वे हँस दिये। फिर बाहर देखा और कहा : समस्त कान्यकुब्ज में आज हर्ष की हिलोरें उठ रही हैं। चारों ओर मांगलिक कोलाहल हो रहा है। तुम्हें मेरी विजय से प्रसन्नता नहीं हुई?

सम्राट् रुके। फिर कहा : मेरी दिग्विजय पर कविगण काव्य-रचना कर रहे हैं, किन्तु मेरी भिक्षुणी भगिनी को कुछ नहीं लगता?

राज्यश्री चुपचाप देखती रही।

'राज्यश्री!' सम्राट् ने कहा, 'तुम चुप हो? क्यों?'

राज्यश्री चुप ही रही।

सम्राट् ने फिर कहा : मैं समझता था, तुम भाभी की भाँति ही प्रसन्न होकर मेरा स्वागत करोगी?

'भैया!' राज्यश्री ने कहा।

हर्ष ने भौं उठाई।

'तो क्या मैंने भैया का स्वागत नहीं किया?'

'किया है, परन्तु वह आनंद तुम में मुझे नहीं दिखता जो भाभी में था।'

'आनंद! तुम्हें देख कर मुझे हर्ष होता है भइया', राज्यश्री ने कहा, 'तुम्हें विश्वास नहीं होता?'

'राष्ट्र को एकसूत्र में बाँध कर आया हूँ राज्यश्री', हर्षवर्द्धन ने कहा, 'देश में शांति स्थापित करके आया हूँ। इतने दिन से आर्यावर्त्त असुरक्षित था, उसे अभय देकर आ रहा हूँ। सामंतों और महाराजाओं का गर्व खण्डित हो गया है। कृषकों का भय दूर हो गया है। शस्य-

श्यामला पर फिर समृद्धि छायेगी। कवियों की मनोहर वाणी फिर नवल शक्ति और सौंदर्य का सृजन करेगी तुम्हें इस सबसे भी प्रसन्नता नहीं हुई !' बहुत दिन बाद प्रजा ने चैन की साँस ली है। वह विकराल अंधकार मेरे खड्ग ने चूर-चूर कर दिया है। जब मैं हाथी पर आ रहा था, तब ग्रामवृद्धों ने पुष्यभूतिवंश को बार-बार इसीलिये आशीर्वाद दिया था। उस समय मुझे लगा था कि मेरा भार हलका हो गया है। अब मैंने अत्याचारियों को मिटा दिया है, किन्तु तुम··तुम अब भी निर्विकार सी खड़ी हो, जैसे यह सब कुछ नहीं हुआ।

हर्ष चुप हो गया। उसके शब्द जैसे चुक गये। उसके पास कहने को बहुत कुछ होने पर भी जैसे अब वह नहीं कह सका।

राज्यश्री ने धीरे से कहा : अपार नरहत्या का यह उत्तरदायित्व किस पर होगा भैया ?

नरहत्या ! विजय की दुर्दमनीय गरिमा का दूसरा पक्ष। इस पर तो ध्यान ही नहीं गया था। राज्यश्री क्या पूछ रही है ? क्या इसीलिये वह अब तक ऐसी चुप थी। सम्राट् ने देखा राज्यश्री के मुख पर क्रोध नहीं था, आशका नहीं थी। एक क्षमा थी, जैसे मैं जानती हूँ फिर भी मुझे इस पर क्रोध नहीं है।

सम्राट् ने वह भव्य गरिमा देखी। उनका शीश आदर से झुक गया। राज्यश्री वैसी ही खड़ी रही। तरला के नेत्र उत्सुक हुए। उसने सम्राट् की ओर मुड़ कर देखा। सम्राट् हर्षवर्द्धन उत्तर नहीं दे सके। वे वैसे ही मूक खड़े रहे। जैसे सोच कर भी उन्होंने उत्तर नहीं पाया था।

इस समय चयनिका का स्वर सुनाई दिया : सम्राट् !

'देवी !' सम्राट् ने कहा।

'परमभट्टारिका ने क्या कहा ?'

राज्यश्री ने देखा और कहा : पूछती थी इस हिंसा का उत्तरदायित्व किस पर है?

चयनिका ने कहा : मेरे और तुम्हारे वैधव्य का उत्तरदायित्व किस पर है। कुलनारियों का जीवन विनष्ट हो गया है। यह किसने किया? क्या पुरुष उसका बदला नहीं लेंगे?

चयनिका हाँफ गई। आज वह स्पष्ट कहने आई थी। कह कर उसने राज्यश्री के नेत्रों में झाँका। बड़ी कोमल जगह प्रहार किया था उसने। देखे, राज्यश्री अब क्या कहती है? सबकी आँखें उस पर टिक गईं।

राज्यश्री ने देखा और दृढ़ता से कहा : यह प्रतिहिंसा की परंपरा है, इसका अंत क्षमा में है और कहीं नहीं।

चयनिका हँस दी। बौद्ध भिक्षु आ रहे थे। उन्हें देख कर सब ने सिर झुकाया। एक भिक्षु ने कहा : आयुष्मान् हो उपासक! दीर्घजीवी हो। तेरी विजय हो।

राज्यश्री अप्रतिभ हुई। चयनिका ने व्यंग्य से राज्यश्री को देखा। राज्यश्री को लगा वह जो कह गई थी यह कल्पना की बात थी। उसने चाहा कि अपनी बात को फिर से स्पष्ट कर दे। किन्तु समय ही नहीं मिला। एक बौद्ध भिक्षु ने कुछ इंगित किया जिससे ठीक इसी समय दूसरे बौद्ध भिक्षु ने कहा : सम्राट्! विजय तो हुई किन्तु अपूर्ण हुई।

'भन्ते!' सम्राट् ने कहा, 'ऐसा क्यों कहा?'

'सम्राट्! सद्धर्म का प्रकाश पूरी तरह कहाँ फैला।'

'कैसे फैलेगा 'भन्ते',' चयनिका ने मुस्करा कर कहा।

'फैलेगा', भिक्षु ने कहा, 'यदि सम्राट् चाहें तो अवश्य फैलेगा।'

'आप कहें', चयनिका ने कहा।

'फिर' दूसरे भिक्षु ने कहा, 'जहाँ तक मैं समझता हूँ, आप बिना युद्ध के भी उसे प्राप्त कर सकते हैं। वह तो आपकी शक्ति देख कर स्वयं झुक जायेगा।'

राज्यश्री को समस्या का यह हल और भी अनुचित प्रतीत हुआ, क्योंकि चयनिका तुरन्त बोली : देगा, देगा। न देगा तो सम्राट् उससे भयभीत तो नहीं होंगे। राज्यश्री के लिये दन्तस्मारक अवश्य आना चाहिये।

'मेरे लिये नहीं', राज्यश्री ने काटा।

'तो?' सम्राट् ने पूछा।

'भिक्षुसंघ के लिये।'

'तुम क्या भिक्षुसंघ से अलग हो?' वृद्ध भिक्षु ने पूछा।

'नहीं भन्ते,' राज्यश्री ने कहा, 'किन्तु मैं अभी तक यह सब समझ नहीं सकी।'

'शंका का निवारण करो,' राज्यश्री को घूर कर वृद्ध ने कहा।

'भन्ते! क्या यह हिंसा नहीं है?'

'नहीं। भगवान् के दंतस्मारक पर बौद्ध धर्मावलम्बीमात्र का अधिकार है।'

'तो फिर वहीं क्यों नहीं रहे?'

'क्योंकि,' भिक्षु ने कहा, 'वह उसकी रक्षा कर सकने में समर्थ नहीं हैं।'

राज्यश्री ने कहा : किन्तु भन्ते! भिक्षु संघ क्या सम्राट को आक्रमण करके विजय प्राप्त करने की प्रेरणा दे रहा है?

'राज्यश्री', चयनिका ने कहा, 'वैसे मिल जाये तो भला, नहीं तो जीत कर ले लेंगे। तुझे तो भैया का राज्य बढ़ता हुआ देख कर जाने कैसा लगता है?'

'परन्तु यह हिंसा है,' राज्यश्री ने फिर कहा। वह चयनिका के व्यंग्य को पी गई।

'ठीक है,' वृद्ध भिक्षु ने टोका, 'यह लौकिक सत्य है। वह परमार्थ सत्य है। संसार में बहुत सी बातें करनी ही पड़ती हैं। क्योंकि भिक्षु की उच्चता को गृहस्थ नहीं पहुँचते। वे तो श्रद्धा से काम लेते हैं। उनके लिये ऐसी कोई वस्तु अवश्य लानी या रखनी चाहिये जिसे देख कर वे सद्धर्म के विरोधियों के चंगुल में फँसने से बच जायँ।'

भिक्षु चुप हो गया।

सम्राट चले गये। अपने प्रकोष्ठ में चयनिका ने तरला से कहा: एक बात तो ठीक रही। मुझे तो लगा कि कहीं देवर भी मुण्डित न हो जायें। उस भिक्षु का भला हो। देख भिक्षु संघ को मेरी ओर से सहस्र दीनार दान दे आना कल। और हाँ, अब एक सुन्दरी तरुणी को ला। देवर! अबोध है। अभी जानता नहीं। एक बार जान ले तो........

तरला ने कहा: ले आऊँगी।

भिक्षु अपनी आराधनाओं में लग गये। परमार्थ और लौकिक की बातें सुनकर भी राज्यश्री भेद को नहीं समझी थी, आज समझ गई। ग्लानि से मन भर गया।

२८

राज्यश्री पर शासन का भार आ गया। उधर सवाद प्राप्त हुआ कि भास्करवर्मन ने कर्ण सुवर्ण के राजा का अंत कर दिया। वलभी के राजा के विषय मे अनेक प्रकार के संवाद आये जिनसे प्रकट होता था कि वह विद्रोह की तैयारियाँ कर रहा है। वर्द्धन साम्राज्य के मूलाधार वही थे जो गुप्त साम्राज्य के थे। भूस्वामी जागीरदार होते थे। उनके ऊपर सामंत और फिर राजा, फिर महाराजा और सर्वोपरि था सम्राट।

वे प्रायः अपने गृह प्रबन्ध में स्वतन्त्र थे और वर्ष की नियत तिथियों को सम्राट की सभा मे उपस्थित होते थे, सैनिक साहाय्य और मर्यादा देकर, सम्मान प्राप्त करते थे। ऐसा ही एक सामंत अर्जुन भी था, जो हृदय में बौद्धों के प्रति अत्यन्त द्वेष रखता था। वह क्रूर था और उसके सामने स्त्री का केवल उतना ही मूल्य था जितना धोबी के सामने गधे का। पुरुष की वासना को यदि वह नहीं ढो सकती तो फिर उसके सामने नारी वैसे ही पीटने योग्य थी जैसा गधा। वह राज्यश्री का विरोधी था। राज्यश्री के आदेश से सम्राट हर्षवर्द्धन ने पराजित राजाओं को समूल नष्ट नहीं किया था। अक्षत्रिय राजाओं तक को सिर झुका लेने पर उनकी जगह छोड़ दिया था।

सम्राट की सभा में अनेक बौद्ध, ब्राह्मण, जैन, आर्हत, पाशुपत, पाराशर इत्यादि पंथों के विद्वान थे। सारे राज्य में हिंसा और मांसभक्षण वर्जित था।

राज्यश्री के प्रासाद से गङ्गातीर पर अनेक सहस्र स्तूप बनवाये गये थे। संघाराम के समीप चलते समय राज्यश्री के चरणों पर एक स्त्री आकर रोती हुई गिर पड़ी। राज्यश्री गङ्गातीर पर जाने के विचार को भूल गईं। दो दण्डधरों ने उस स्त्री को घेर लिया।

राज्यश्री ने कहा : कौन है ? इससे पूछो इस पर क्या विपत्ति पड़ी है ?

दण्डधर ने पूछा : उत्तर देती है ?

स्त्री रोने लगी। राज्यश्री अचानक काँप उठी। हृदय में एक आशंका जाग उठी। क्यों रोती है यह स्त्री ? उसने दण्डधर से कहा : तुम जाओ।

दण्डधर चला गया। स्त्री अकेली रह गई।

राज्यश्री ने कहा : कौन है तू ?

'देवी! मै अत्यन्त दरिद्र हूँ।' स्त्री ने घिघिया कर कहा।

जाने क्यों राज्यश्री सिहर उठी।

'फिर ?' उसने पूछा।

स्त्री ने भावविह्वल नेत्रों से इधर-उधर देखा। फिर धीरे से कहा : मैं निर्दोष हूँ। मेरा कोई अपराध नहीं है।

राज्यश्री खीझ उठी। उसने कहा : जल्दी कह तुझे क्या कहना है।

उसे आतुरता थी बुद्ध मंदिर में जाने की। उसका उपासना का समय हो चला था। उसने एक पग उठाया। स्त्री अचानक ही चैतन्य हो गई। उसने राज्यश्री का वह चरण पकड़ कर कहा : देवी! कहती हूँ। कहती हूँ। आप न जायें। बड़ी कठिनता से आपके इन पवित्र चरणों तक पहुँच सकी हूँ।

राज्यश्री ने स्त्री की ओर देखा। छोटी-छोटी आँखें थीं। सुते हुये-से बाल थे, किन्तु हाथों पर यौवन था। वह केवल एक चीर बाँध कर अपने वक्षस्थल को ढँके थी जिसमें उसका वक्ष पूरी तरह ढँक नहीं पाया था। नाभि के भी नीचे वह एक मोटे कपड़े का लहँगा पहने थी। उसके हाथों और पाँवों में पीतल के भारी-भारी गहने थे। वह अपनी पूर्ण सज्जा में थी। देखकर ही वह बढ़ई जाति की स्त्री प्रतीत होती थी। उसका रंग साँवला था।

स्त्री ने ऊपर देख कर कहा : मेरा पति रोगी था। वह कुछ जीविका का प्रबन्ध नहीं कर सका।

राज्यश्री ने सुना। फिर कहा : किसी वैद्य को नहीं दिखाया?

'प्रारम्भ में दिखाया था देवी, किन्तु उससे ठीक नहीं हो सका।'

'बाद में क्यों नहीं दिखाया?' राज्यश्री ने पूछा।

'फिर धन नहीं रहा, हम बहुत दरिद्र हो गये। वैद्य शुल्क माँगते थे।'

'हूँ', राज्यश्री ने कहा। फिर वह जैसे गम्भीर सोच में पड़ गई। क्या मनुष्य को इतना दुःख है?

'देवी,' स्त्री ने कहा, 'वह मर गया।'

और फिर वह जैसे सह नहीं सकी। उसके पेट में समाई व्यथा कुछ

देर उसके गले में घुटती रही फिर उसकी आँख झर-झर कर बह चलीं।
राज्यश्री को याद आया। वैधव्य !!

'मैं विधवा हो गई,' स्त्री ने कहा। वह चुप थी। फिर कहा : फिर मैं देवर के घर जाकर बैठ गई।

राज्यश्री का मन खट्टा हो गया। फिर उसे याद आया। इन जातियों में तो यह संगत माना जाता है! उसने पूछा : जिसको अपना दूसरा पति बनाया, वह तेरे पति की सहायता नहीं करता था?

'नहीं देवी!' स्त्री ने कहा, 'वह श्रेष्ठि मधुहास के यहाँ परिचारक था। श्रेष्ठि की पुत्री ने एक युवक से गाधर्व विवाह कर लिया। वह उसी पुत्री के साथ नये घर में सेवक बन कर आ गया।'

'फिर?'

'किन्तु नये स्वामी का फिर स्वामिनी से मनमुटाव हो गया। स्वामिनी कहने लगी कि विवाह ही स्त्री का सबसे बड़ा अपमान है। क्योंकि वह एक और स्त्री को ले आया।'

राज्यश्री सुनती रही। स्त्री कहती रही : फिर एक साधु उस घर में आने लगे। उनका स्वामिनी से प्रेम हो गया। स्वामिनी उनके साथ भाग गईं।

'फिर?' राज्यश्री ने कठोर स्वर से कहा।

'फिर वह भाग आया और मुझे उसने आश्रय दिया। किंतु इधर श्रेष्ठ जामाता के सेवकों ने उसे पकड़ कर नगराधिकृत के सम्मुख उपस्थित कर दिया। वहाँ से न्यायाधिकरण में ले गये। तन्त्रपति ने जब सुना कि वह धूर्त था उसने स्वामी की स्त्री को भगवा दिया तो उसके नाक कान काट कर उसे जंगल में छोड़ दिया गया।'

राज्यश्री काँप उठी।

स्त्री ने फिर कहा : वन में वह चाण्डालों के भोजन पर पलता रहा। तब वह लौट आया किंतु उस पर पुनः उसके स्वामी ने चोरी

का अपराध लगा कर उसे पकड़वा दिया। उसे कारागृह में डाल दिया गया। और वह मर गया है...

स्त्री फूट-फूट कर रोने लगी।

'परमभट्टारिका!' आतुर कष्ट से उसने कहा, 'उसका शव मुझे दिलवा दें। मै उसकी दाह क्रिया करके उसे पिशाचयोनि से छुड़ाना चाहती हूँ। वह निरपराध था।'

राज्यश्री की समझ में नहीं आया कि वह क्या करे। उसने सोचा। स्त्री रोती रही जैसे हृदय की वेदना सँभाल नहीं पा रही है।

राज्यश्री ने इंगित से एक दंडधर को बुलाया।

उसके समीप आने पर कहा: दण्डधर!

'देवी!' उसने अभिवादन किया।

'इस स्त्री को इसके पति का शव दिला दो।'

राज्यश्री बुद्ध प्रतिमा के सम्मुख बैठ कर रोने लगी। बुद्ध भिक्षु अत्यंत चकित हुआ। उसने कहा: परम भट्टारिका!

'भन्ते!'

'रोती क्यों हैं?'

'भन्ते! इस संसार के कष्ट अपार है।'

'स्वय शास्ता ही कह गये हैं।'

'फिर इसका त्राण कैसे होगा?'

भिक्षु चुप रहा। उसने कहने योग्य कुछ भी बात नहीं पाई।

राज्यश्री चली आई।

दूसरे दिन से ही समस्त साम्राज्य में धर्मशालाओं की बनावट पर असंख्य धन व्यय होने लगा। जगह-जगह वैद्यों का प्रबन्ध किया गया। निःशुल्क औषधि प्राप्त करने के स्थान बने। समस्त साम्राज्य में ऐसे स्थान बनवाये गये जिनमें बिना धन दिये चिकित्सा हो सके।

राज्यश्री का नाम सुनकर लोग आदर से सिर झुकाने लगे।

धर्ममहामात्रों ने जगह-जगह बुद्धधर्मानुशासन को प्रचलित करवाने को उपदेशक नियत किये। यह सब भार राज्य पर पड़ा, कोष ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया।

बहुत सोच कर राज्यश्री इतना ही हल निकाल पाई। वह सोच कर भी श्रेष्ठि जामाता पर अंकुश रखने का उपाय नहीं निकाल सकी। श्रेष्ठि जामाता अच्छी व्यवस्था से काम करता था। उसके कृषकों को कभी कोई शिकायत नहीं हुई। वह अन्नोत्पादन का एक बड़ा छः भाग देता था। संकट के समय राज्य को और भी सहायता देता था। जो भुव अन्न लेने जाते थे, वे कभी उसके विरुद्ध नहीं थे।

इतना करके भी राज्यश्री का मन संतुष्ट नहीं था। वह संध्या समय बाहर रथ पर जाती। नगरप्राचीर तक जाती, लौट आती। पञ्चमहाशब्द उपाधिधारी सामंतों के घर से पाँच वाद्य बजने का स्वर आता। कान्यकुब्ज में संध्या समय सहस्त्रों घंटे और शंख बजते।

कुछ दिन बाद राज्यश्री ने सुना कि वह स्त्री फिर उसी श्रेष्ठि जामाता के यहाँ दासी हो गई है और दूती बन गई है जो उस कामुक की तृष्णा पूरी करके ही चैन नहीं पाती, इधर उधर स्त्रियों के पास उसके पत्र भी ले जाती है।

कान्यकुब्ज में करोड़ों की संपत्ति रखने वाले विराट् भवन थे। दूसरी ओर दरिद्रों के मकान छोटे थे। कहीं-कहीं ही कच्चे थे। नगर की गलियाँ सँकरी और तंग थीं। कसाई, मछुए, नट, वधिक और मेहतर नगर के बाहर रहते थे और बस्ती में जब आते थे तो चुपके-चुपके वे बाईं ओर चलते थे।

यह असाम्य क्यों? राज्यश्री सोचती।

सद्धर्म में सब बराबर हैं। फिर?

क्या भिक्षुसंघ इस पर ध्यान नहीं देता?

उसी संध्या, चयनिका ने बात ही बात में कहा: यह उन

अंत्यजों का सा व्यवहार था न ? उन्हें क्या मनुष्य समझा जा सकता है ?

राज्यश्री ने पूछा : क्यों भाभी ? वे मनुष्य नहीं हैं ?

चयनिका चौंक गई। कहा : क्या कहा परमभट्टारिका ? ऐसा तो स्वयं तुम्हारे भगवान भी नहीं कर सके ! क्या भइया के राज्य का अंत अंत्यजों के शासन से होगा ?

राज्यश्री सिहर उठी। फिर उसने यह बात भी टाल दी। सचमुच यह नहीं हो सकता। आचार्य शीलभद्र के पास लिख कर पूछने की इच्छा की। परन्तु तभी विजया भिक्षुणी से बात चल पड़ी।

'कर्म का फल भी तो होता है न ?' विजया ने कहा।

'तो ?'

'साधना में उसका स्थान है। कौलाचार में तो ब्राह्मण और चांडाल भी एक दूसरे का जूँठा खाते हैं।'

'परन्तु बाहर।'

'बाहर तो परमभट्टारिका परमार्थ सत्य है। यदि सभी जातियाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बन कर शासन करें तो कोई भी श्रम क्यों करेगा ? शूद्र तो शूद्र ही रहेगा।'

राज्यश्री ने स्वीकार तो कर लिया क्योंकि उसके सामने और कोई पथ उसे सूझा नहीं, किन्तु हृदय ने कहा : नहीं। अभी कोई स्तर शेष रह गया है। सब कुछ होकर भी यह तो कुछ भी नहीं रहा...

२६

मोक्ष परिषद् का समय आ गया। प्रयाग में चहल-पहल मच गई। उस समय त्रिवेणी पर संगम स्नान का पुण्य अपना प्रभाव डाल चुका था। अपार भीड़ इकट्ठी हो आती थी।

राज्यश्री गंगातीर पर बसे प्रासाद में आकर उतर गईं। प्रति पाँचवे वर्ष सम्राट हर्ष यहाँ विद्वानों से सत्संग करके दान दिया करते थे। प्रातःकाल से सायंकाल तक माँगने वालों का तांता नहीं टूटता था। भीड़ का राज्यश्री की ओर से प्रबन्ध करवाना पड़ता था। फिर भी स्त्रियाँ अपहृत हो जाती थीं और बालक मर जाते थे। ब्राह्मणों की विधवाएँ जिन्हें पुनर्विवाह का अधिकार नहीं था, यहाँ अत्यन्त धार्मिक बन कर आती थीं और साधुओं से दिव्य गर्भ धारण करके या तो उन्हीं के साथ चली जरती थीं, या फिर बालक को जन्म देकर गङ्गा में स्नान करके पवित्र होकर वज्रयानियों में जाकर फिर साधना करती थीं। जो इन दो में भी नहीं होतीं वे एक नई जाति का प्रचार करके शूद्रों में मिल जाती थीं।

मुण्डित शीश बौद्धों की तो अपार भीड़ थी। उन्हें तो आश्रम मिल गया था। दिन रात राज्यश्री का जयजयकार किया करते थे। सौ गाँवों के कर पर चलने वाले नालंद से उस समय विद्यार्थी आकर मेले में सम्मिलित होते। स्वयं प्रयाग का विद्यापीठ प्रसिद्ध था। वृद्ध भिक्षु बुद्धभद्र यहाँ के आचार्य थे। वे राज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए। राज्यश्री ने उन्हें ससम्मान बिठाया।

'भन्ते! आज्ञा दें। कैसे कष्ट किया?' उसने नम्र स्वर में पूछा।

वृद्ध व्यवहार-कुशल थे। कहा: परमभट्टारिका को ज्ञात ही है कि प्रयाग में विद्यापीठ है।

'जानती हूँ भन्ते! मैंने सोचा ही था कि उसकी कोई व्यवस्था करूँ? आठ ग्राम ठीक रहेंगे?'

'देवी, आठ से क्या होगा?'

'तो?'

'कम से कम पचास तो आवश्यक हैं। प्रयाग तो आर्यावर्त का एक प्रमुख स्थान है।'

'अच्छा, किंजल्क !'

किंजल्क कायस्थ था। बगल के प्रकोष्ठ मे था। तुरन्त आ गया। राज्यश्री ने आज्ञा लिखा दी।

वृद्ध भिक्षु चले गये।

राज्यश्री ने सम्राट् हर्षवर्द्धन की आय का प्रायः आधा भाग विद्या और धर्म प्रचार में लगा दिया। सम्राट हर्षवर्द्धन ने सुना। कुछ नहीं कहा। वह स्वय यही चाहता था। जब से राज्यश्री ने केन्द्रीय 'शासन अपने हाथ में ले लिया था, वह प्रजा की परिस्थिति देखने, उसको सुधारने को दौरा ही किया करता था। परन्तु उसका वैभव अपार था। राज्यश्री के उपदेश से जैसे हर पाँचवें वर्ष वह उस वैभव के भोग का प्रायश्चित किया करता था कि उसे लुटाता था। ब्राह्मण, बौद्ध और साधुओं की बन आती थी और फि॰ वे दि॰न्तों में सम्राट हर्षवर्द्धन का नाम फैलाया करते थे। राज्यश्री की इन साधुओं मे बड़ी भक्ति थी। संभवतः इस भक्ति के पीछे शम था। इस सबके पीछे अंतस्तल में निहित एक सूनापन था। उस सूनेपन की व्याख्या नहीं की जा सकती क्योंकि अत्यन्त स्पष्ट होते हुए भी उसे दुरूह बनाया जा रहा था। स्पष्टीकरण मे जीवन की झिलमिल छलना खो जाती थी, और वह वास्तविकता सामने आती थी जिसे राज्यश्री का मन बार-बार जान कर भी अंत तक स्वीकार नहीं करना चाहता था।

प्रातःकाल राज्यश्री उठी। मन भारी था। राज्यश्री अपने नित्य ॰र्म में लग गई। भिक्षुणी विजया आई, चली गई। राज्यश्री ग्रन्थों को पढ़ने में लगी रही। जब वह सब समाप्त कर चुकी, बाहर आई। उस समय दण्डधरों ने उसे देखा और अभिवादन किया। वह सबको यथोचित उत्तर देती हुई बुद्ध मन्दिर में गई और जब लौटी तो कुछ मन हल्का था।

गङ्गातीर पर जाने का समय हो चला था। राज्यश्री स्वर्ण रथ पर

चढ़ गई। रथ भाग चला। भव्य श्वेत तुरङ्ग अत्यन्त चपल थे। हवा में चाबुक के सटाके की आवाज आती थी, किंतु तुरङ्ग ऐसे उड़ते थे जैसे बिजली हों। राज्यश्री सीधे दान देने वाले स्थान पर जाकर उतरी और सोपानों पर चढ़ने लगी।

जब वह चीवर पहन कर खड़ी हुई, शात दृष्टि से अपने चारों ओर देखने लगी। असंख्य भीड़ थी। सबने उसे देखकर प्रणाम किया। राज्यश्री ने हाथ उठा कर आशीर्वाद दिया। पुरुष और स्त्रियों की वह भीड़ देख कर राज्यश्री का मन न जाने एक आनंद से भर उठा। और अचानक ही अब प्रजा को देख कर उसे लगा कि उसके सामने अनेक ऐसे व्यक्ति खड़े हैं जो सब उसे ही सिर झुकाये हैं। वह उनके भाग्य विधाता की बहिन है।

प्रजा ने जय जयकार किया। इसी समय दंडधरों की एक पंक्ति दिखाई दी जिसने पथ प्रशस्त करना प्रारम्भ किया।

फिर जय जयकार हुआ। सम्राट आ रहे थे। राज्यश्री शांत खड़ी रही। उसकी शांत भव्य मुद्रा देख कर सम्राट हर्षवर्द्धन भी मन ही मन प्रभावित हुए। सोचा : क्या यह मानुषी है?

सेवक आगे भागे। उन्होंने पृथ्वी पर बहुमूल्य पारसीक कालीन बिछा दिये। और ताम्बूल करङ्कवाहिनी आगे जा खड़ी हुई।

सम्राट हाथी पर थे। उनके विशाल हाथी पर सोने की झूल थी और उस पर सोने का हौदा था। सामने चालक बैठा था। उसने दग-दग करके इंगित किया। हाथी हवा को हिलाकर पहले पीछे के पाँव झुका कर फिर आगे के झुका कर बैठ गया।

सेवकों ने सुनहली सीढ़ी को हाथी के सहारे लगा दिया। सम्राट् ने उस पर चरण रखा।

प्रजा में एक हलचल मच गई।

राज्यश्री ने सिर उठाया। सम्राट ने बहिन को देखा और दूर ही

से मुस्करा दिये। जब वे उतर कर आये उन्होंने बहिन के समीप आकर कहा : राज्यश्री !

'सम्राट !'

सम्राट ने मुस्करा कर कहा : प्रबन्ध समुचित है ?

'है तो।' राज्यश्री ने अबोध बन कर कहा !

कवियों ने अब किसी का भी बन्धन नहीं माना। अहमहमिकया वे सम्राट की कीर्ति गाने लगे। उपस्थित प्रजा में एक नया उत्साह छा गया। कवि एक एक करके हटते गये। उनके बैठ जाने पर लड़कियों ने उस समय उन पर फूल फेंके।

नागरिक और नागरिकाएँ अपने सुन्दर और स्वच्छ वस्त्र पहने हुए थे। उनके आभूषण चमक रहे थे।

भीड़ में सब प्रकार के साधु थे। जैन निर्ग्रन्थ, बौद्ध हीनयानी, महायानी, वज्रयानी तथा ब्राह्मण साधु उपस्थित थे। पाशुपत भी थे, केशलुञ्चक भी थे। उनकी विभिन्न वेशभूषा और सज्जा उनको अत्यंत दिलचस्प बना रही थी। उनके मुख पर प्रवृति की तृष्णा निवृत्ति की घुटन में अपने अस्तित्व को न खो चुकी थी, न प्रगट करती थी।

पाँचवें वर्ष यही होता था कि प्रयाग में सम्राट हर्षवर्द्धन और उनकी भगिनी राज्यश्री आती थीं और दान दिया करती थीं। और दूर-दूर से अभ्यागत आकर उपस्थित हुआ करते थे।

'देवी ! इस बार गत मोक्ष परिषद् से अधिक उपस्थिति है ? क्यों है न भट्टारिका ?' सम्राट ने कहा, 'प्रतिवार यहाँ उन्नति होती जा रही है।'

'क्यों न हो !' एक कुमारामात्य ने कहा, 'देवी का प्रबन्ध तो भूरि-भूरि प्रशंसित हो रहा है।'

राज्यश्री मुस्कराई। उसने कहा : हम जो आनन्द करते हैं वे हमारे अकेले हैं।

'देवी का जीवन भी आनन्द है ?' सम्राट मुस्करा कर कहा, जैसे वह राज्यश्री को ठीक कर देना चाहते थे।

परमभट्टारिका चयनिका ने सिर उठाकर कहा : आनन्द ? फिर जैसे व्याख्या नहीं कर सकीं। केवल कहा : परन्तु दान तो यहाँ अत्यधिक होता है न ?

सम्राट चौंक गये। परमभट्टारिका चयनिका की बात दूसरी ओर जा रही थी।

किन्तु राज्यश्री हठात् फिर मुस्कराई। उसने सम्राट को देखा। वे कुछ सुनने को उत्सुक थे। राज्यश्री ने कहा : पाप का प्रायश्चित नहीं करना होगा भाभी ? उच्चकुल का वैभव सबका तो नहीं होता ? जब यह दान लेने वाले इस प्रकार प्रशंसा करते जाते हैं तो इन्हें सचमुच बड़ा ही अभाव होगा न ? हम तुम तो कुछ पाकर ऐसे कृतज्ञ नहीं होते ?

चयनिका को अच्छा नहीं लगा। यह स्पष्ट व्यंग्य था।

कहा : राज्यश्री ! तू परम्परा को तोड़ देगी।

तू में कितना स्नेह था राज्यश्री सुनकर गद्गद हो गई। कहा : भाभी ! परम्परा यों उज्ज्वल हो जायेगी।

सम्राट् सिर झुका कर सोचने लगे।

दान होता रहा। राज्यश्री ऐसे खड़ी रही जैसे समुद्र की तरंगों के ऊपर दीखती संध्या हो। शान्त, निस्वन, गंभीर और करुण। उसके साथ सम्राट ऐसे खड़े थे जैसे आकाश में एक गांभीर्य की स्थिरता। दान चलता रहा।

रात को गंगातीर पर सहस्रों उल्का जल उठे। प्रकाश की लपटें फरफराने लगीं। अन्धकार में वह सहस्रों प्रकाश खंड ठौर-ठौर पर अपनी पताकाएँ हिलाने लगे। सैनिक अब मदिरा उँडेलने लगे थे। उनको अब भी अपने दौरों पर चलना पड़ता था।

चयनिका ने तरला से कहा : क्यों नई दासी का नाम मागधी है ?

तरला ने कालीन बिछाकर कहा : देवी !

'क्या पूछती हूँ ?'

'हाँ देवी ।'

आकाश मे तारे छिटक रहे थे ।

'जा ! कुछ कर,' चयनिका ने कहा और आँखें बन्द कर लीं ।

३०

साम्राज्य में सुव्यवस्था छा गई थी । अब नगरों मे किसी प्रकार का भय नहीं था । प्रजा में एक आश्वासन सा छा गया था । शत्रुओं का सिर झुक गया था । हूण पराजित हो चुके थे । हृदय का वह भय दूर हो चुका था । विलासी नागरिक अब वेश्याओं के विलास में अधिक रत दिखाई देने लगे । संध्या समय युवक महाकवि कालिदास के श्रृङ्गार तिलकम् को गाते फिरते ।

ब्राह्मण प्रातः स्नान कर रहे थे । और वेद मंत्रों के साथ साथ नये मंत्रों का भी उच्चारण करते जाते थे। नदी तीर पर असंख्य स्त्रियाँ स्नान करने आती थीं जिन्हें पुजारी टेढ़ी आँखों से देखते और तरुणियों को बहका लेने का प्रयत्न करते थे ।

सम्राट आज सामंत अर्जुन के अतिथि बन कर गये थे । सामंत अर्जुन का प्रासाद विशाल और भव्य था । अनेक दास-दासी उसमे उपस्थित थे । भवन के बीच का प्रकोष्ठ विशाल था। उसके चारों ओर छोटे-छोटे प्रकोष्ठ थे । प्रत्येक सुसज्जित था । और गंधधूम उनमें छितर कर बह रहा था । स्वागत स्वागत के मुखरित कोलाहल के बीच, कदली फलों की स्निग्ध सुगन्धि से पूर्ण प्रकोष्ठ में प्रसन्न वदन से आसंदी पर सम्राट् बैठ गये ।

उनके बैठ जाने पर परमभट्टारिका चयनिका उनके पास सुवर्ण फलका पर बैठ गईं।

सामंत अर्जुन ने कहा : और देवी !

राज्यश्री स्वर्ण सिंहासन पर स्थित हुई। उसकी मुद्रा गम्भीर थी।

उनके बैठे जाने पर सब लोग यथास्थान बैठ गये। महामात्य, फिर कुमारामात्य, फिर आयुक्तक। उनके पीछे दास और दासियाँ खड़े रहे।

गृह सदस्य अत्यन्त प्रसन्न थे। आज उनके घर साम्राज्य की समस्त शक्ति और श्री उपस्थित हुई थी। तभी भीतर कुछ बातचीत सुनाई दी।

बालकों ने आकर अभ्यर्थना की। छोटे छोटे बालकों ने अपनी पतली आवाज मे आकर स्वागत का गीत सुनाया। उनके चले जाने पर एक छोटी सी चार बरस की गोरी-गोरी बच्ची आई और उसने तुतला कर गीत सुनाया।

राज्यश्री ने आशीर्वाद दिया। सब हँस दिये। सम्राट् ने बालिका के सिर पर हाथ फेरा। परमभट्टारिका चयनिका ने उसे गोदी मे बिठा कर स्नेह से चूम लिया। बालकों को पहले कुछ धर्म ग्रन्थ पढाये जाते थे। जब वे अच्छी तरह रट लिये जाते थे, सात वर्ष की आयु से व्याकरण, शिल्प, आयुर्वेद, न्याय, ज्योतिष और अध्यात्मविद्याएँ प्रारंभ करवा दी जाती थीं। बालकों को गुरुओं के कठोर अनुशासन में रहना पड़ता था। बच्चों की जाघें नोंच कर उन्हें दण्ड देने की प्रणाली बहुत चलती थी।

अब ब्राह्मण बालक भीतर वेद पाठ कर रहे थे। उनके यज्ञोपवीत संस्कार सातवें वर्ष हो चुके थे। उनके पतले स्वर को कभी कभी गुरुओं का गम्भीर स्वर साध देता था।

राज्यश्री को यह सब कुछ भाया नहीं। वह स्यात् बौद्धपाठ होता तो अधिक मुखरित होती। किंतु फिर भी उसने अपने भाव को प्रकट नहीं होने दिया। गम्भीर बैठी रही।

किंतु हर्षवर्द्धन प्रसन्न था। वह सहिष्णु था। वह बौद्ध और ब्राह्मण का भेद नहीं करता था। उसकी प्रसन्नता देख कर सामंत अर्जुन प्रसन्न था। उसे सब कुछ सफल दिखाई दे रहा था। वह उत्सुक परिचर्या में तत्पर था।

परिव्राजकाचार्य श्री पूर्णानंद बहुत दिन बाद प्रयाग आये थे। प्रभावशाली व्यक्ति थे। इस समय वे भी आ गये।

सबने उठ कर उनका स्वागत किया। परिव्राजक ने उनको आशीर्वाद दिया।

सामंत अर्जुन की घनी भौंहें कुञ्चित हुईं, फिर फैल गईं और उसके नेत्रों में एक चमक पैदा हुई। राज्यश्री ने देखा। वृद्ध परिव्राजक अब अपनी कहानियाँ सुनाने लगा था। सम्राट सुन रहे थे, उत्सुक से।

दौवारिक ने संवाद दिया: चीन के कुछ व्यक्ति उपस्थित हैं।

'कौन?' सामंत अर्जुन ने पूछा।

'देव! कहते हैं हम चीन सम्राट् के दूत हैं।'

राज्यश्री ने कहा: उपस्थित करो।

दौवारिक चला गया। सब में एक कौतूहल जागा। सम्राट ने एक बार चयनिका की ओर देखा, फिर राज्यश्री को चार पाँच दंडधरों ने भीतर प्रवेश करके अभिवादन किया। उनके पीछे दौवारिक था। उसने हाथ उठा कर कहा: इधर देव इधर।

चार चीनी घुस आये। उनके सिर पर काली टोपियाँ थीं। लंबी चुटिया गुँथी हुई पीछे लटक रही थीं। शरीर पर बहुमूल्य चीनी रेशमी चोगे थे। वे अपने हाथों को अपनी ढीली आस्तीनों में छिपाये थे। उनकी मूँछें नीचे झुकी हुई थीं और आँखें बहुत छोटी छोटी थीं। उन्होंने प्रणाम किया। बार बार सिर से लेकर कमर तक अपने शरीर को झुका कर उन्होंने प्रणाम किया। उनके मुख पर एक मुस्कराहट थी जैसे वे कृतकृत्य हो गये थे।

सम्राट् ने कहा : स्वागत ! स्वागत ।

सम्राट् के कहते ही सबने उनके शब्दों को दुहराया ।

एक दूत ने संस्कृत में एक स्तुति के श्लोक के साथ अपने पाण्डित्य का परिचय दिया ।

सम्राट् ने कहा : आसन ग्रहण करें ।

चारों चीनी एक दूसरे की बगल में घुटने पीछे मोड़ कर बैठ गये । उस समय सामंत अर्जुन की आँखें कुछ झुक गईं ।

'कब आना हुआ ?' सम्राट ने कहा ।

दूत ने अपनी लंबी कहानी सुनाई जिसमें यही कहा कि उसे कोई कष्ट नहीं हुआ ।

राज्यश्री ने कहा : चीनी सम्राट सकुशल हैं ?

'देवी की असीम कृपा है,' दूत ने कहा ।

'आप धर्मार्थी तो नहीं जान पड़ते ?' सामंत अर्जुन ने अचानक पूछा । प्रश्न सुन कर सम्राट ने दूत की ओर देखा । उस दृष्टि में एक प्रश्न था ।

'सम्राट्', दूत ने कहा, 'आपके गौरव को सुन कर सबको प्रसन्नता होती है । हमारे सम्राट् ने आप से मित्रता बढ़ाने को हमें आपकी सेवा में प्रेषित किया है ।'

ही ही करके एक दूसरा चीनी हँसा और उसने पूछा : सम्राट् ! हमारे सम्राट यह जानने के इच्छुक हैं कि भारत में तगार कैसे बनती है ? हम नहीं बना पाते ।

सब हँस दिये क्योंकि यह कह कर वह चीनी दूत स्वयं हँसा । हँसी के रुकने पर सामंत अर्जुन ने कहा : बस ? इसीलिये इतनी लम्बी यात्रा की है दूत ? हम आभारी हैं ।

'प्रबन्ध हो जायेगा न ?' दूत ने फिर पूछा ।

'हो जायेगा', सम्राट् ने कहा, 'अवश्य, दूत !'

'देव !', भीतर से सामंत पत्नी ने निकल कर कहा, 'स्वागत ! कृतार्थ करें। नये अतिथियों ने हमारे गृह की शोभा को आज द्विगुणित कर दिया है।'

सब उठ चले। भोजन के प्रकोष्ठ की ओर चल पड़े। सम्राट् के बैठ जाने पर बाकी सब भी यथोचित स्थानों पर बैठ गये।

छोटी-छोटी चाँदी की चौकियाँ बिछी थीं। साधारण मनुष्यों के घर पर लकड़ी की चौकियाँ होती थीं। सम्राट्, चयनिका और राज्यश्री स्वर्ण के आसनों पर बैठे। चीनी दूत दाईं ओर बैठे। दासियों ने भोजन परोसना प्रारम्भ कर दिया। सम्राट् ने बात करते करते अपने थाल में से एक वस्तु उठा कर एक कोने मे फेंक दी जहाँ उनका परिचारक एक कुत्ता लिए खड़ा था। कुत्ते ने उसे खा लिया और प्रेम से पूँछ हिलाने लगा। परिचारक कुत्ते को लेकर चला गया।

विभिन्न व्यंजनों की गंध भर गई। सम्राट् ने प्रारम्भ किया। फिर सब भी खाने लगे। खाते समय अनेक प्रकार की बातें चलती रहीं। उनको यह ध्यान भी नहीं रहा कि वे कितनी देर खाते रहे। राज्यश्री संयत भाव से चुप बैठी रही।

दासी क्षेमा ने सम्राट् के स्वर्ण के पात्र में जल भर दिया और फिर बंकिम नेत्रों से देखा। सम्राट् ने उसे देखा ही नहीं। वह चली गई।

धीरे-धीरे भोजन करना समाप्त हुआ। गंधित ताम्बूल सबने मुखों में दबाये। परिव्राजकाचार्य और राज्यश्री ने नहीं खाये।

नर्तकी रम्भा ने बाहर निकलते ही नृत्य प्रारम्भ कर दिया। वह अत्यन्त सुन्दरी थी। उसके हाथ अत्यन्त स्निग्ध थे और वह चंपक के से रंग की थी। उसके विशाल नेत्र बड़े चञ्चल थे। ऐसे नाची जैसे वास्तव मे रंभा थी।

जब वह थक गई उसने झुक कर सम्राट् को प्रणाम किया और पीछे हट गई। सामंत अर्जुन ने ताली बजाई।

भीतर से एक तारों का बाजा बजने की आवाज आने लगी। वह ध्वनि अत्यन्त चपल थी। जैसे हाथ तारों पर बहुत जल्दी-जल्दी चल रहे थे। और फिर अनेक सुन्दरियाँ निकलीं! उनकी पंक्ति ऐसे काँपती जैसे कमल नालों पर काँपते हैं। यह यवनी दासियों का नृत्य हुआ।

यवनी दासियाँ बहुत कम वस्त्र पहनती थीं। उसके नृत्य में अंगभंगिमा उतनी नहीं थी जितना कौशल था, जैसे वे सतत् नटविद्या का प्रदर्शन कर रही थीं। उनकी नग्नता उनका आकर्षण था। राज्यश्री को यह नहीं भाया। एक बार देख कर फिर नेत्र झुका लिये। सामंत अर्जुन अब और भी प्रसन्न था।

बाहर कोलाहल होने लगा। उसको सुन कर सब चौंक उठे। यह क्या हुआ?

सम्राट् ने भौं उठा कर सामन्त अर्जुन की ओर देखा। सामन्त के कठोर मुख पर कुछ कौतूहल झलक आया। वह स्वयं नहीं समझा था। उसने द्वार की ओर देखा। कुछ दौवारिक बाहर चले गये।

फिर स्वर आया: नहीं, नहीं।

'सावधान!'

'तुम सम्राट् के पास नहीं जाने दोगे?'

'मैं जाकर रहूँगा।'

सैनिक एक वृद्ध को पकड़ लाये। वृद्ध के हाथ पाँव दृढ़ थे। वह शूद्र था।

'सम्राट्! सम्राट्!' उसने पुकार कर कहा और वह वहीं उनके सामने साष्टांग दंडवत करता हुआ लेट गया।

'कौन हो?' राज्यश्री ने पूछा।

'देवी! माता!' वृद्ध ने कहा, फिर डर कर चुप हो गया।

'कहो। अभय होकर निवेदन करो,' राज्यश्री ने फिर कहा।

वृद्ध ने कहा : देवी! मैं अपने घर से नगर आया था। किन्तु यहाँ बेगार मे मुझे पकड़ लिया गया है।

'यह तो नियम है,' सामन्त अर्जुन ने कहा। किन्तु वृद्ध फिर भी चुप नहीं हुआ। वह फटे चिथड़ों में था। उसने कहा : सम्राट्! मुझे अत्यन्त परिश्रम करना पड़ा है। मै अब नही कर सकूँगा।

सबके मुख पर विक्षोभ दिखाई दिया।

सामंत अर्जुन ने कहा : इसे निकाल दो।

उसका कठोर स्वर सुन कर भी वृद्ध नहीं डरा। उसने हाथ उठा कर कहा : सामन्त! तुम भी मनुष्य हो। भगवान से डरो। माता राज्यश्री के राज्य मे अन्याय नहीं होगा। और तब उसने पीठ दिखाई जिस पर कोड़ों के निशान पड़े थे।

हठात् राज्यश्री ने उठ कर कहा : ठहरो।

सैनिक पीछे हट गये। वृद्ध राज्यश्री के चरणों पर गिर कर रोने लगा। और सब ने विस्मय से देखा कि परमभट्टारिका राज्यश्री के नेत्र आँसुओं से भीग गये। सामंत अर्जुन का मुख आश्चर्य से फट गया।

'भैया!' राज्यश्री ने रुँधे कंठ से कहा।

'राज्यश्री!' सम्राट ने कहा, 'क्या हुआ?'

'भैया, साम्राज्य में यह नियम बना दो कि आज से किसी से बेगार नहीं ली जा सकेगी', राज्यश्री ने दृढ़ स्वर से कहा। 'यह अमानुषिक अत्याचार है। मनुष्य को पशु की भाँति प्रयोग में लाना है।'

सम्राट् हर्षवर्द्धन के नेत्र संकुचित हो गये। परमभट्टारिका चयनिका ने हथेली पर ठोड़ी गड़ा कर वृद्ध को देखा। वह धरती पर पड़ा था। राज्यश्री ने कहा : क्या लोग इस वृद्ध की पीठ पर पड़ी कोड़ों की मार के चिह्न को देख कर सम्राट् हर्षवर्द्धन के राज्य में करुणा का राज्य समझेंगे?

सम्राट् चुप रहे।

सामन्त अर्जुन ने कहा : किन्तु देवी! यह तो समस्त व्यवस्था को पलटना होगा?

'जानते हो सामंत?' राज्यश्री ने कहा, 'यह मनुष्य जब इतना निर्भय हो चुका है, तो जीवन से कितना ऊब चुका है। वह मृत्यु से डरना भूल गया है। मै भइया का उत्तर चाहती हूँ। वे ही सम्राट् हैं, विधाता हैं।'

सबकी आँखें हर्ष की ओर उठ गईं।

सम्राट् के मुख पर घोर चिन्ता दिखाई दी। वे जानते थे कितनी बड़ी समस्या थी। उन्होंने एक बार सबकी ओर देखा। सबके मुख पर उत्सुकता थी जैसे क्या यह भी होने की बात है? किन्तु फिर दृष्टि जाकर राज्यश्री के मुख पर ठहर गई। वह मुख कितनी करुणा से भरा हुआ था, जैसे मनुष्य की समस्त वेदना आकर उस मुख में केन्द्रित हो गई थी।

सम्राट् ने धीरे से कहा : देवी! ठीक कहती हैं। मनुष्य को मनुष्य पर यह अत्याचार उचित नहीं है। देवी! प्रबन्ध करें।

बात बिजली की भाँति कौंधी और विरोध के बादल गरज उठे। किन्तु फिर किसी को भी साहस नहीं हुआ। जब इसकी राज्य की ओर से घोषणा हुई तो शूद्रों का साहस बढ़ गया। उन्होंने तो आशीर्वादों का ढेर लगा दिया, फिर तो प्रयाग पागल हो गया। जो आज तक नहीं हुआ था, वह आज हो गया।

देवी राज्यश्री को देख कर सहस्रों कंठों का जय-जयकार उठता और वह ऐसे चलती जैसे गौरव की फरफराती पताका दिगंतों को पार करती चलती जा रही थी। साम्राज्य के कोने-कोने में यह समाचार फैल गया। स्थान-स्थान पर प्रजा आमोद में संलग्न हो गई। और राज्यश्री का नाम एक मुक्तिदायिनी के रूप में प्रसिद्ध हो गया। घर-घर में उसकी बात चल पड़ी। सामतों का विरोध दब गया।

किन्तु जब राज्यश्री कान्यकुब्ज लौट आई वह भूखों की भीड देख कर विचलित हो गई।

क्यों हैं इतने भूखे ? इस संसार में इतना कष्ट क्यों है ?

फिर वह सोचती।

राज्यकर हल्के हैं। कृषक अन्न का १/६ भाग लेते हैं। एक भाग भूमि का राज्य का है, दूसरा कर्मचारियों का। तीसरे भाग से विद्या और कलाकौशल पलते हैं, चौथे से विभिन्न संप्रदाय। यात्रा, औषधि सबका सुख है।

फिर ?

'क्यों ?' राज्यश्री ने कहा, 'ऐसा कैसे होगा ?'

फिर जैसे पूछना है उसने कहा : क्यों ? साम्राज्य में बहुत भूखे हैं। मैं उन्हें भरापूरा देखना चाहती हूँ।

'देवी ! सामंतों का अधिकार', दासी मुग्धा ने कहा। वह नई दासी थी।

राज्यश्री उसकी समझ पर चौंक गई। दासी समझती थी ?

'हाँ। फिर ?' उसने पूछा।

'देवी ! वे बहुत असंतुष्ट हैं।'

'हूँ। प्रसन्न कौन है ?'

'प्रजा ?'

'बहुजनहिताय ! बहुजनहिताय !' राज्यश्री ने दृढ़ता से कहा और उठ पड़ी।

किन्तु राज्यश्री उसका हल नहीं निकाल सकी।

परमभट्टारिका चयनिका ने राज्यश्री की बात को हँस कर सुना और कहा : सब तो वीतराग नहीं होते ?

'तो क्या सासारिकता के लिये भूख आवश्यक है ?'

'तो साम्राज्य कैसे रहेगा ?' चयनिका ने पूछा। राज्यश्री चुप रही।

'साम्राज्य नहीं रहेगा तो', चयनिका ने कहा, 'इस असंख्य प्रजा की रक्षा कौन करेगा ?'

राज्यश्री उत्तर नहीं दे सकी। वह चुप हो गई।

३१

बहुत दिन बाद सम्राट के राजधानी में आने से कवियों में अपार उत्साह छा गया। महाकवि बाणभट्ट अपने प्रासाद में बैठा था। उसके पास इस समय सम्राट की कृपा से धन था। वह हर्षचरित नामक काव्य लिख कर अपने आश्रयदाता को अमर बना रहा था। मयूर कवि थे। उनकी पुत्री का बाणभट्ट से विवाह हुआ था। इस समय उनका पुत्र पुलिन्दभट्ट इस योग्य हो गया था कि बिना समझे ही वह अपने नाना के 'सूर्यशतक' को गाकर सुना सके।

आज महाकवि मार्त्तंड्दिवाकर बाणभट्ट के यहाँ आये थे। महाकवि भारवि पहले ही से उपस्थित थे।

'स्वागत, स्वागत', बाणभट्ट ने कहा।

मार्त्तंड्दिवाकर वृद्ध थे। किन्तु अपने श्वेत केशों और तरुणियों की विरोधी भावना से मन ही मन कुढ़ने वाले थे।

भारवि की कविता सुन कर वे झूमने लगे। उसकी कविता में अर्थ का गौरव था। बड़ी गहरी बात कहता था। उसमें कालिदास की सी उपमा नहीं थी, दण्डी का सा पदलालित्य भी नहीं था किन्तु उसमें अर्थ था और वह जो अपने चमत्कार से परिपूर्ण था। पहले ही श्लोक में दूत युधिष्ठिर के पास गया।

मार्तंड्दिवाकर ने उच्च स्वर से कहा : साधु ! साधु !

बाणभट्ट ने सिर हिला कर कहा : भाग्य ! अहो भाग्य !

सभा विसर्जित हुई। बाणभट्ट उठ कर भीतर चला गया।

बाण का पुत्र भीतर बैठा कविता लिख रहा था। पिता को देख कर संकोच से अपने भूर्जपत्रों को लेकर भीतर चला गया।

दूसरे दिन राजप्रासाद में सभा हुई। विशेष आनन्द छा गया। कविगण कभी-कभी एकत्र हो पाते थे क्योंकि सम्राट तो बहुधंधी थे। आज कई दिन बाद जो वह अवसर आया तो अनेक कवि आये। विशाल प्रकोष्ठ में चारों ओर स्वर्ण और रेशम ही चमकने लगे।

सम्राट के संमुख भव्य आसनों पर कविगण बैठ गये। ताम्बूल करङ्कवाहिनी उन्हें पान बना कर देने लगी। रसिक कवि मार्तंड्दिवाकर ने टेढी दृष्टि से देखा और धीरे से उसे एक श्लोक सुनाया कि सुन्दरी! पहले तेरी दृष्टि चूने की तरह काट जाती है, किंतु तदनंतर जब मुस्कराहट से तू गुलाबी रंग चढ़ा देती है, तब कट-कट के हृदय सुपारी की भाँति गिरने लगता है। धन्य है वह पान जो तेरे अधरों को छूकर उन्हें रँगता है।

ताम्बूल करङ्कवाहिनी ने टेढ़ी दृष्टि से देखा और मुस्करा दी। तभी परमभट्टारिका राज्यश्री और परमभट्टारिका चयनिका ने प्रवेश किया। एक ओर गम्भीर राज्यश्री बैठ गई।

भिक्षुणी होकर भी वह सभा में उपस्थित थी। हीनयानी भिक्षु ऐसे स्थान पर आते भी न थे किन्तु महायान ने कई पथ खोल दिये थे। महायानी नृत्य और नाटक भी देख लेते थे।

विराट स्तंभों पर ऊंचे वातायनों से मंदिम प्रकाश आकर गिरता और एक अलसाहट सी फैला जाता। परिचारक क्षण-क्षण आते और अपने कार्यों में तत्पर दिखाई देते। ब्राह्मण ने स्वस्तिवाचन किया।

गंध से आगार भर गया था। अगर, धूम की श्यामल लहरियाँ अंतराल में काँप कर अब वायु मे घुल-मिल गई थीं।

सम्राट् ने मुस्करा कर बाणभट्ट की ओर देखा। वह एक बार झुका। चयनिका ने इंगित किया जैसे प्रारम्भ करो।

महाकवि बाणभट्ट अपनी कादंबरी सुनाने लगा। उसका पद-लालित्य और अनुप्रास, अर्थ बहुलता सुन कर सब पर एक चमत्कार-सा छा गया। चाण्डालकन्या का रूप साकार खड़ा हो गया। तोते की बात प्रारम्भ हुई। जब महाकवि ने गम्भीर स्वर से विंध्याटवी का वर्णन प्रारम्भ किया तो सुनने वालों के मुख से बलात् साधुवाद निकला। वे हरे-भरे वृक्ष, वह उपमायें, वह सौंदर्य सब पर जादू-सा करने लगा।

राज प्रासादों का भव्य वर्णन और फिर विरह की आर्त्त पुकार सुन कर कवियों का हृदय काँप गया। कितना भव्य था वह वर्णन। अनिंद्य।

महाकवि का स्वर उठता और फिर पढ़ते समय ऐसा लगता जैसे उसके मुख से अमृत प्रवाह झर रहा था। वह हृदय को बाँध लेने वाले शब्द ऐसे लगे जैसे स्वाति की एक नहीं अनेक बूँदें झरती चली जा रही हों।

बाणभट्ट थक कर चुप हो गया। उसने उत्तरीय से माथे के स्वेद बिंदु पोंछ लिये।

उसको सुन कर भारवि ने कहा : महाकवि ! महाकवि !

फिर जैसे वह कुछ नहीं कह सका, गद्गद् हो गया। उसके हाथ फैल गये। वृद्ध मयूर ने आश्चर्य को छिपाने के लिये मस्तक पर रेखायें डाल कर कहा : धन्य हो वत्स, धन्य हो। ऐसा तो महाकवि दण्डी भी नहीं लिख सके। अद्भुत ! आश्चर्य ! बाण ! महाकवि बाण !

सम्राट् ने अपने गले की माला निकाल कर उसके सिर पर पहना दी और कहा : हर्ष की सभा धन्य हो गई।

सम्राट् के नेत्रों में आनन्द से जल भर आया। वे स्नेहसिक्त दृष्टि से बाण को देखते रहे, जैसे वे कहना तो बहुत कुछ चाहते हैं, पर कह नही पाते।

बाण प्रसन्न हो उठा। उसने झुक कर सबको प्रणाम किया। उसके मुख पर समस्त जीवन की सफलता केन्द्रित थी। आज वह बहुत दिन

पर अपनी साधना के चरम शिखर पर खड़ा था और देख रहा था कि सब उसके सामने नतशीश हैं, वह सब पर विजयी है, वह अमर है।

मार्तंगदिवाकर ने दोनों हाथ उठा कर विभोर होकर कहा : नाटक लिखना कठिन है, चंपू भी कठिन है, किन्तु केवल गद्य लिखना और भी कठिन है। और गद्य भी ऐसा काव्यमय लिखना अत्यन्त दुष्कर है। वह केवल बाणभट्ट का ही काम था।

'उसी ने तो किया भी!' सम्राट ने हँस कर कहा।

रात को हर्ष रचित 'रत्नावली' नाटक का अभिनय हुआ। नट और नटियों ने श्रेष्ठ अभिनय किया। बार-बार दर्शकों श्रोताओं ने उसकी प्रशंसा की। नाटक के बीच में एक गांधार की नर्तकी को सूत्रधार ने रंगमंच पर उपस्थित किया। वह कितनी युवती और कैसी सुन्दरी थी, इसको कह सकना कठिन था। देखने वाले अपलक दृष्टि से देखते रह गये।

सामंत अर्जुन के अंतःपुर में जब गांधार की वह नर्तकी पहुँच गई, तब आधीरात बीत चुकी थी। गांधार तरुणी को स्वयं सूत्रधार लाकर पहुँचा गया था। सामन्त अरुणाश्व अर्जुन उस स्त्री को देख कर पागल हो उठा।

जब नगर के घंटे बज चुके तब तरला दीप बुझाने आई। उस समय भी परमभट्टारिका चयनिका जाग रही थीं। तरला को यह देख विस्मय हुआ।

परमभट्टारिका चयनिका ने कहा : तरला! तरला चौंक उठी। स्वर मे कुछ गांभीर्य था, कुछ रहस्य भी।

'देवी!' उसने घबरा कर कहा और हाथ से दीप की लौ को बुझाते में आग को छू गई।

'मागंधी कहाँ है?' परमभट्टारिका ने उसके मुख से निकली हल्की

चीख पर ध्यान न देते हुए कहा। फिर जैसे अपने आप ही वे उससे कह उठी : जा भेज दे।

तरला ने देखा चयनिका करवट बदल कर सो गई।

तरला क्षण भर खड़ी रही। फिर वह दो शिखाएँ जलती छोड़ कर चली गई।

आकाश में तारे छिटक रहे थे। शीतल सुहावनी वायु के मंदिम झोंके पलकों को झपका देते थे।

अपने विशाल प्रकोष्ठ में चीनांशुकों से ढँके पर्यंक पर सम्राट हर्ष-वर्द्धन सो रहे थे। उनके मुख पर एक स्निग्धता थी जो उन्हें अत्यन्त आकर्षक बना रही थी।

बाहर दंडधर घूम रहा था। जब वह घूमते-घूमते आगे चला गया, एक छाया भीत से सटी हुई भीतर घुस आई। दंडधर जब तक लौटा, वह स्तंभ की आड़ में हो गई। दंडधर चला गया। छाया व्यक्ति ने दीप की कई शिखाएँ एकदम फूँक मार कर बुझा दीं। सम्राट को कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ। फिर किसी ने उनका पाँव पकड़ कर जगाया।

सम्राट ने करवट ली। भय से छाया व्यक्ति का हाथ पीछे हट गया। बाहर से दंडधर का स्वर सुनाई दिया : अरे दीप बुझ गया! हवा भी तो चल रही है। दंडधर फिर लौट गया। छाया व्यक्ति ने फिर उनका पाँव पकड़ कर हिलाया। सम्राट एकाएक जाग उठे। सिरहाने रखे खड्ग पर हाथ रख उन्होंने पूछा : कौन है?

'कोई नहीं, मैं हूँ।' एक स्त्री स्वर सुनाई दिया।

'तू कौन है?' सम्राट ने चौंक कर पूछा। फिर कहा : शत्रु या मित्र?'

स्त्री चुप रही।

'बोलती क्यों नहीं?' सम्राट ने उसका हाथ पकड़ लिया। स्त्री अपने आप जैसे उनके झटके से गिरी। शरीर पर शरीर गिर गया।

स्त्री के शरीर की गंध और उसके ऊष्मश्वासों ने सम्राट के मस्तिष्क और शरीर को एक अलसाहट दी।

'कौन है तू?' उन्होंने पूछा।

स्त्री फिर भी नहीं बोली। वह और पास आ गई। अब सम्राट पीछे खिसके।

'क्या चाहती है? कौन है तू?'

'मागंधी!'

सम्राट मुस्कराये।

'मागंधी!' कहा और फिर हल्के से हँसे। स्त्री चौक उठी। उसने अपना हाथ उनके कंधे पर रख दिया।

'क्यों आई है?' सम्राट ने पूछा।

क्या कहे वह! स्त्री चुप रही।

हवा का झोंका आया और स्त्री के बाल बिखर कर सम्राट के मुख पर लगने लगे। स्त्री को जैसे नींद आ रही थी।

हर्षवर्द्धन ने उसको देखा। पूछा : नींद नहीं आती?

'नही।'

'क्यों?'

कोई उत्तर नहीं।

'मेरे पास क्यों आई है?' कहा तो, पर दासी की स्थिति से सम्राट अवगत थे। उफ़! कितना समुद्र था! वेदना और परवशता का कितना अभिशाप था। स्त्री चुप रही।

'अच्छा जाकर सो रह।'

स्त्री हँस दी और पास आ गई। उसका वक्ष अब हर्ष के वक्ष से सट गया था। हर्ष ने देखा स्त्री उन्मत्त-सी थी। वह विह्वल थी और उसने अपनी दोनों आँखें मींच ली थी। संभवतः वह मदिरा पीकर आई थी। वह अपने को इस समय पूरी तरह सँभालने में असमर्थ-सी थी।

सम्राट चौंक कर फिर पीछे हट गये।

कहा : मागंधी !

'देव !'

'जाओ अप्सरा जाओ।'

'कहाँ जाऊँ ?'

'सोने जाओ।'

किन्तु स्त्री पास आ गई। उसे तरला ने लोभ दिया था। लोभ था कि तुझे साम्राज्ञी तो नहीं, किन्तु वावाता अवश्य बनवा दूँगी। उसने कहा : सचमुच जाऊँ ?

'नहीं तो क्या ?'

'तो क्या तुम पाषाण हो ? क्या स्त्री का सम्मान पुरुष को पाषाण बना देता है।'

हठात् सम्राट उठे और प्रकोष्ठ के बाहर आ गये। बाहर कोई नहीं था। स्त्री बाहर आ गई। उसने हाथ पकड़ कर कहा : मैं कुमारी हूँ।

'मैंने भी तुम्हें विवाहित नहीं कहा।'

'तुम पुरुष नहीं ?' स्त्री ने आघात किया। सम्राट हँसे, कहा : मेरा पौरुष उत्तरापथ को हवा में पुकारता है लड़की ! जा चली जा। मागंधी चली गई। सम्राट ने पुकारा : दंडधर !

दंडधर ने झुक कर कहा : देव !

किंतु उन्होंने दंडधर से कुछ नहीं कहा, वे दूसरे प्रकोष्ठ में चले गये।

३२

राज्यश्री ने जिस समय कादम्बरी सुनी उसका हृदय विचलित हो उठा। सभा समाप्त हो गई। बाणभट्ट चला गया। सम्राट् चले गये किन्तु राज्यश्री को बार-बार याद आने लगा।

चन्द्रापीड़ मरा पड़ा है। कादम्बरी विह्वल हो उठी है। फिर वह मदलेखा की ओर देख कर कहती है: अपने को केवल आँसू बहाने से हलका बना कर मैं अपने आपको पतित क्यों बनाऊँ? रो-रो कर मैं स्वर्ग जाते हुए देव का अमंगल क्यों करूँ?

राज्यश्री काँप उठी। उसे याद आने लगा। और फिर उसका भिक्षुत्व जागा। क्यों वह दुःख पा रही है? फिर उसे याद आया। महाकवि ने भी तो यही कहा था—चरणों की धूलि के समान, उनके चरणों का अनुगमन करने को तत्पर हुई मै हर्ष के स्थान पर भी रोऊँ? ऐसा मुझे क्या दुख है? जिसके लिये कुल की मर्यादा नहीं गिनी, गुरुजनों की अपेक्षा नहीं की, जनापवाद का भय न किया, लज्जा को त्याग दिया, मदनोपचार करा कराकर सखी जनों को खेद दिया, अपनी प्रिय सखी महाश्वेता को दुःखित किया और उसके साथ जो प्रतिज्ञा की थी उसके अन्यथा होने का भी मैंने विचार न किया। उस मेरे प्राणनाथ ने मेरे लिये ही प्राण त्याग दिये?

राज्यश्री को लगा वह जल रही थी। उसकी देह में एक भयानक सुलगन है। यह सुलगन क्यों जल उठी। और जल उठी है तो बुझेगी कैसे? यह क्या हुआ? इतने दिन से जो साधना की थी वह एकदम ऐसी निर्बल थी कि जिस दिन उँगली ने तार पर हाथ रखा, उसी दिन स्वर निकलने लगा!

क्या अभाव है राज्यश्री को? राज्य है, सुख है, वैभव है, दान है, कीर्त्ति है और लक्षावधि प्रजा का आशीर्वाद है। फिर भी काँस के से नये कलम उग रहे हैं, शस्यश्यामला वसुंधरा पर पलास की दहक सुलगा रही है। यह चंद्रमा झुलसा रहा है।

उफ़ कैसी दारुण है यह यातना।

भीतर का अवरोध टूट गया। क्या उसे कोई सुख मिला है? और तब ग्रहवर्मा हँसा। यह कौन हँसा?

असीम हर्ष का रोमाञ्च हो आया। रोम-रोम पुलक उठे। राज्यश्री का वक्ष हुमकने लगा, उसमें एक अतीन्द्रिय कंपन आया। मांस और रुधिर सब अपनी तृष्णा के लिये उष्णिम स्पंदन से काँप उठे। राज्यश्री के पास गृहवर्मा खड़ा था। वह चाहती है उसे अपने आलिंगन में बाँध ले। राज्यश्री के लंबे अलक उसके कंधे पर सुगंधि भर कर झूलने लगे।

और राज्यश्री का हाथ अपने सिर की ओर गया।

वह गिरी। हिमालय से गिरी। सीधी समुद्र मे। जहाँ भीषण उर्म्मियों ने उसे ठोकर मार कर फेंक दिया और वह लहरों की लातों से व्याकुल होकर डूबती भी तो नहीं, ऊपर ही ऊपर तैर रही है। किसे दोना हाथों से पकड़ना चाहती है, कहाँ अपना त्राण पाना चाहती है?

क्या एक तिनके का भी सहारा मिला है?

नहीं!

स्तंभ पुकार उठे: नहीं।

नहीं का अभाव विकराल हो उठा। ही-ही करके वृद्धावस्था ने हँसते-हँसते कहा: मूर्खा यह शरीर यों ही गल जायेगा।

राज्यश्री फूट-फूट कर रोने लगी।

जब वह दर्पण के सम्मुख खड़ी हुई उसने देखा। उसके नेत्र अब भी सुन्दर थे। वह अब भी युवती थी। और उसने यौवन की ऊष्मा को गदराते देखा। वह सारा रूप! वह क्या थी? वह आज क्या हो गई है?

मुंडित शीश देख कर वह डर गई।

उसे लगा दर्पण में से उसका कंकाल हँसा। उसने कहा: राज्यश्री यह रूप और यौवन धोखा है।

किंतु आयु अब कसमसाने लगी।

'क्यों धोखा है?' उसने कहा।

,तो और क्या है?'

राज्यश्री की इच्छा हुई वह दपण तोड़ दे। परन्तु नहीं। और वह उद्भ्रांत सी घूमने लगी।

स्त्री जाग उठी थी। उसकी प्राकृतिक वासनायें पुकार रही थीं जिन्हें वह समाज, संस्कार और धर्म के नाम पर गौरव में नियन्त्रित करके उनका वध कर देना चाहती थी। मनुष्य का अहं उसके परोपकार को नष्ट कर रहा था।

वह घूमती रही। हवा का एक झोंका आया। उस झोंके के स्पर्श से उसे सुख हुआ। इच्छा हुई एक बार वह उस सिहरते स्पर्श का अपने समस्त शरीर पर अनुभव करे, ऐसे कि बीच में कोई बन्धन नहीं हो।

पर यह कैसे हो सकता है! नहीं......नहीं......

अबकी बार अलिंद नहीं पुकारे, न स्तंभ ने ही कुछ कहा। हाथ जो स्तंभ पर रखा तो पाषाण ने कहा: जिसके स्पर्श से मैं भी अपना ताप खो चुका हूँ तू उसका अनुभव नहीं करेगी।

राज्यश्री ने स्तम्भ को अपनी भुजाओं में समेट लिया। उसकी शीतलता का अपने कपोल पर अनुभव किया। कितना अच्छा था सब!

शरीर की ऊष्मा में यह एक त्राण था। वह विभोर हो गई। फिर वह घूमने लगी।

घूमते-घूमते वह उद्यान में आ गई। उसने देखा। दासी तरला और एक दौवारिक पास-पास सो रहे थे। उसे लगा वह यह नहीं देख सकेगी। यह वह क्या देख रही है?

क्या यह ठीक है?

फिर सोचा दासी की मर्यादा ही क्या?

और तब उस भूखे मनुष्य की भाँति राज्यश्री के हृदय ने तर्क किया जो नाली में से रोटी खाते कुत्ते को देख कर कहता है: कितना भाग्यशाली है, अपने सुखों का कितना सान्निध्य है.........

राज्यश्री का मन एक अव्यक्त घृणा से भर गया।

घृणा क्यों ? जुगुप्सा क्यों ? वही रोम जो सिहर रहे थे जो कॉप रहे थे, वे अंग-अग में कॉटे बन कर क्यों चुभ रहे हैं।

राज्यश्री प्रकोष्ठ में लौट आई।

फिर कहीं दुरभिमानिनी कोयल ने कहा : कुहू !

अर्थात् पिया। और फिर पुंस्कोकिल चिल्लाया : आओ। कुहू !

राज्यश्री का जी चाहा वह पत्थर पर टकरा कर अपने आपको चूर-चूर कर दे, अपने को मिटा दे। उसके जीवित रहने से लाभ ही क्या है ? कौन जानता है उसकी कथा को ?

और प्रेम के लिये भूखा हृदय जो सम्मान, सम्मान की आर्त्त क्षुधा से अपने आपको बहला लेना चाहता था, अपनी भीतरी व्याकुलता से डरने लगा। एकांत अज्ञात सघन वन में जैसे डूबता चाँद अब पेड़ों के पीछे हो गया है, और कोई भूखा हिंस्र पशु अपनी ही छाया से डरता हुआ, किसी निर्जन, दुर्गम पर्वत की भयंकर गुहा में बार-बार गुर्रा रहा है, फिर वह कभी गुहा के अंधकार में छिप कर सो जाना चाहता है।

किन्तु क्या अहेर के बिना उस सिंह की तृष्णा फिर सदा के लिये नहीं जागेगी ? जब जागेगी तब वह हाथियों के यूथ को फाड़ देगी। फूटेगी तो ज्वालामुखियों के समान ! क्यों ? क्या वासना के हाथी की निर्मम सूँड़ में फँस कर सिंह अपने जीवन की रक्षा कर सकेगा ? क्या उसे वही हाथी अपने पॉव के नीचे धर कर कुचल नहीं देगा और उसकी विजयोन्मत्त चिंघार जब बार-बार दिगन्त तक सघन कान्तार को प्रतिध्वनित करके कँपाने लगेगी, तब क्या होगा ?

फूट जा रे ज्वालामुखी। धधक ! धधक कर फूट ! अंगार। पिघले हुए पाषाणों निकलो। फिर ? फिर सब शान्त। धरती का हुमकता वक्ष अपनी धड़कन बन्द कर देगा।

राज्यश्री पृथ्वी पर उल्टी गिर कर वेदना से रोने लगी। संसार के

इतने स्त्री-पुरुष हैं। भगवान तू ने सब कुछ दिया, पर एक सुख नहीं दिया प्रेम का सुख। जिसके प्राप्त होने पर मनुष्य का भीतर ही भीतर सुलगाना बन्द हो जाता है। दारिद्र्य में भी मनुष्य अपने जीवन को सार्थक समझता है।

क्या है वह प्रेम ? क्या वह मनुष्य की निर्बलता है ?

और तब राज्यश्री के सामने उठी एक प्रतिमा। बुद्ध का सुन्दर रूप जागा। अहा ! कितना लावण्य है, कितना पौरुष है ! कैसे यह व्यक्ति यशोधरा को छोड़ कर चला गया था ?

जनकल्याण के लिये ?

परन्तु उसकी वासना तो संभवतः बुझ चुकी थी।

और गोपा ?

राहुल तो था न उसके पास ?

हाँ था तो।

क्या मैं यशोधरा हूँ। मैं सो रही हूँ। मुझे छोड़ कर कोई चला गया है। परन्तु मेरा राहुल कहाँ है ?

पुरुष जब वासना में व्याकुल होता है तो उसमें पिता का भाव वेदना नहीं जगाता। स्त्री की वासना पुकार पुकार कर अपनी सन्तान का अभाव रोती है।

राज्यश्री उठ बैठी। क्या सचमुच निर्वाण का पथ इतना कठिन है ? और हठात् उसे स्मरण हुआ। विजया ! विजया कहती थी निर्वाण सरल है।

सरल है, मन ने दुहराया। इच्छा हुई उसके पास जाकर सब पूछे। किन्तु किस प्रकार ! विजया की और बात है, राज्यश्री की बात और है ! राज्यश्री किस साधक की शक्ति बनेगी ? उसकी साधना तो जगत-प्रसिद्ध हो जायेगी ?

नहीं होगी, मन ने समझाया। क्यों न निर्वाण का वह सहज रूप

अपनाया जाये जिसमें कष्ट भी नहीं और प्राप्ति भी है। किसी को ज्ञात भी नहीं होगा।

राज्यश्री उठी। उठ कर चली। उसका श्वास तीव्र हो गया। किन्तु इसी समय किसी ने पुकारा : भगिनी।

स्वयं सम्राट् हर्षवर्द्धन थे। इस समय राज्यश्री डर गई। साथ में दो दास उल्का लिये हुये थे।

'भइया! इस समय,' राज्यश्री ने सहम कर कहा।

'राज्यश्री', हर्षवर्द्धन ने कहा, 'मैंने अभी बैठे बैठे एक नाटक समाप्त किया है।'

'तो तुम सोये नहीं थे?'

'तुम सोईं थीं?'

'नहीं तो।'

'क्यों?'

राज्यश्री ने झूठ कहा : चिंतन कर रही थी।

हर्षवर्द्धन ने गौरव से कहा : जिसकी छोटी बहिन अर्द्धरात्रि तक गहन चिंतन और दार्शनिक उलझनों में डूबी रहे, उसका भइया कवि है, वह क्या एक नाटक भी नहीं लिख सकता। फिर जैसे उसे ध्यान आया : ओह हाँ! रात है। मुझे 'नागानंद' सुनाने दिन में आना चाहिये था। भूल हो गई भगिनी। इसे समाप्त करके हृदय जैसे तृप्त हो गया। फिर हठात् तुम्हारा ध्यान आया।

राज्यश्री ने सोचा। कोई सफलता होने पर अपने प्रिय व्यक्ति को सुनाने की आतुर लालसा मनुष्य मात्र में होती है।

'दास!' राज्यश्री ने कहा, 'दीपाधार निकट ले आ। महाकवि बाणभट्ट को बुला ला। मै सुनूँगी।'

'अभी?' हर्ष ने पूछा। अब उसे कुछ सकोच हुआ।

'हाँ, हाँ,' राज्यश्री ने कहा, 'जा।' दूसरे दास से कहा : भाभी को भी बुला ले आ।

दूसरा दास भी चला गया।

राज्यश्री को एक विचित्र सुख हुआ। वह नहीं सोती, तो कोई क्यों सोये? उसे नींद नहीं आती तो सब जगें।

जब सब आ गये उसका भर हल्का हो गया। चयनिका भी जाग रही थी।

'तुम कैसे नहीं सोईं भाभी!' राज्यश्री ने पूछा।

'स्वप्न में तेरे भइया को देखा तो आँख न लगी फिर!'

राज्यश्री का हृदय झुलस गया। उसने मन में कहा : सारा संसार व्याकुल है। और वह तब चौंकी जब उसने सम्राट् का शांत मुख देखा। उस पर कोई भय नहीं। एक त्याग की ही क्षमता थी। घुटन थी किन्तु मर्यादा ने कहा था—हर्ष! समुद्र की भाँति रह। नदी की भाँति मत बन...नदी की भाँति मत बन......

राज्यश्री ने सिर झुका लिया।

३२

काफ़ी रात हो गई थी। सम्राट् सुना रहे थे। उनका नाटक अत्यंत करुण था। यह व्यक्ति सम्राट् था!

पाँचवें अङ्क में राजा को गरुड़ ने अपने सामने रख दिया और देखा। गरुड़ आश्चर्य से कह उठा : जन्म से आज तक तो सर्प खाते हुए ही बीत गये। परन्तु ऐसा आश्चर्य नहीं देखा। मृत्यु को संमुख देख कर तो सब डरते हैं। दुखी होते हैं। परंतु मृत्यु के निकट हुआ यह महात्मा! अद्भुत है। केवल दुख सहन ही किये हो-यही नहीं। इसके तो मुख पर कुछ प्रसन्नता भी है।

सब पर एक जादू-सा छा गया। बाणभट्ट के मुख पर आत्मसंतोष-सा झलक आया। परमभट्टारिका चयनिका ने आँसू पोंछे। राज्यश्री जैसे जड़िमा में पड़ गई।

हर्षवर्द्धन फिर पढा। गरुड़ कहता है : मैंने अपनी चोंच से तेरे हृदय को खींच खींचकर तेरा रक्त पिया सही, किन्तु तेरी धीरता से जैसे अब तू मेरा रुधिर पी रहा है। कौन है तू, मैं जानना चाहता हूँ।

राजा कहता है : तू भूख से ऐसा व्याकुल हो रहा है कि मैं अभी तुझे इस योग्य नहीं पाता कि तू सुन सके। मैं तुझे सुना सकूँ। इसलिये मेरा रक्त पी और मांस और खाकर पहले तू तृप्त होकर सुस्थिर हो ले।

चयनिका की आँखों से आनन्द और व्यथा के आँसुओं की झड़ी लग गई।

'अमर! हर्षवर्द्धन अमर हो गया', बाण ने उठ कर कहा, 'मैं निश्चय से कहता हूँ नागानन्द संसार की एक महान् रचना है।'

कवि के रूप में 'हो गया' कह कर जो बाणभट्ट ने अपनी आत्मा की अभिव्यक्ति का स्वातंत्र्य दिखाया सम्राट् गद्‌गद् हो गये! उठ कर बाण से गले मिले। पूछा : महाकवि सच?

आनन्द के कारण उनका गला रुँध गया!

चयनिका ने आँसू पोंछ कर कहा : देवर! तो इसलिये रातों की नींद छूट गई है।

बाणभट्ट हँसा। कहा : परमभट्टारिका! आप मुझ पर ही हँसती थी। देवर पर भी हँसे। इस समय वह कवि हैं, सम्राट् नहीं। कवि तो ऐसा ही बंधनहीन होता है।

सब हँसे।

राज्यश्री चुप रही।

'भगिनी', हर्ष ने कहा, 'तूने कुछ नहीं कहा।'

'भइया मै भगवान के लोक-कल्याण के विषय में सोच रही थी।'

'देवी,' विजया ने कहा, 'कुण्डलि भी जाग्रत करनी होती है। देह में ही पञ्चामृत हैं।'

पञ्चामृत के विषय में राज्यश्री सुन चुकी थी। मल, मूत्र, मज्जा इत्यादि का ही यह सुन्दर नाम था।

विजया कहती रही, राज्यश्री सुनती रही। फिर कहा: किंतु स्त्री का निर्वाण क्या है?

'स्त्री तो पुरुष की साधना में सहायता देती है।'

'उसी से वह भी निर्वाण प्राप्त करती है?' राज्यश्री ने फिर कहा। फिर वह एकदम उससे कह उठी: अकेली स्त्री?

'शक्ति अकेली नहीं रहती परमभट्टारिका।'

राज्यश्री का मन खट्टा हो गया। जो कुछ है वह पुरुष निर्मित है, पुरुष के लिये है। स्त्री एक साधन है। स्त्री अपनेपन में कुछ नहीं है।

उसने कहा: नहीं भिक्षुणी यह ठीक नहीं है।

विजया चली गई। राज्यश्री फिर सोचने लगी। फिर विचार आया कि मन को क्रोधित करने से सुख प्राप्ति होती है। वासना का दमन उसका निराकरण है। विजया की बात याद आई। मूलाधार से शक्ति उठती है। राज्यश्री ध्यान केन्द्रित करने लगी। उसे लगा उसके उदर के अधःप्रदेश से शक्ति रीढ़ में चढ़ने लगी, फिर स्फुरित होती हुई वह उसके मस्तिष्क में लय हो गई।

जब वह स्वप्न टूटा वह हड़बड़ा कर खड़ी हो गई। यह भी एक झूठ था।

फिर सत्य क्या है?

दूसरे दिन के समय राज्यश्री देखने लगी। मोर पंख धारण करने वाले साधु आये। फिर नरकपालधारी आये! कुछ घास पहनते थे, केश-लुञ्चक थे, कुछ जटाधारी थे। एक शास्त्र की व्याख्या करने वाले भिक्षु आये जो संघस्थविर की सेवा करने से मुक्त थे। तीन शास्त्रों का व्याख्याता

बौद्ध भिक्षुओं के साथ आया। वह सेवक बन कर उसकी सेवा करते थे। चार शास्त्रों के व्याख्याता भिक्षु आये जिनके सेवक बन कर बौद्ध गृहस्थ उपस्थित थे। पाँच के व्याख्याता हाथी पर से उतरे। छः शास्त्रों की व्याख्या करने वाले भिक्षु के साथ हाथी ही नहीं जुलूस भी आया।

एक दिगम्बर आ घुसा। राज्यश्री ने आँखे फेर लीं। जब वह लौट रहा था उसने देखा वह कपड़ों से ढँक दिया गया था। उसके मुख पर अनेक तरुणों ने लाल और सफेद मिट्टी पोत दी थी। उसे धूल से भर कर उन लोगों ने उसे बाहर फेंक दिया।

कुछ नहीं। यह तो नित्य का खेल था। राज्यश्री लौट आई।

उसने दर्शन के ग्रंथ निकाले।

धीरे-धीरे चित्त शात हुआ।

जो कुछ है दुख ही है। प्रवृत्ति से दुख बढ़ता है। और फिर वह वही आम्रपाली मे का गीत गाने लगी। उसके वक्ष की कसक निकल कर भागने लगी।

राज्यश्री सुख की नींद सो गई। जब वह जगी वह सुस्थिर थी।

दूसरे दिन वह जब दान के लिये चीवर पहन कर खड़ी हुई उसके मुख का भव्य सौंदर्य देख कर याचकों में सम्मान जागा।

जब दान हो गया राज्यश्री ने वृद्ध भिक्षु से कहा : भन्ते! आज भिक्षुणी राज्यश्री भिक्षा लेने जायेगी।

'क्यों?' भिक्षु ने चौंक कर पूछा।

'मैं जाऊँगी। मैं सम्यक् सम्बुद्ध के शासन का पालन करूँगी।'

राज्यश्री पथ पर आ गई। कान्यकुब्ज पागल हो गया। महाश्रेष्ठियों में होड़ मच गई।

राज्यश्री ने उतना ही लिया जितना उसके पेट के लिये काफी था। उसे उस अन्न में जो तृप्ति हुई वह आज तक क्यों नहीं मिली?

दासी तरला ने प्रवेश किया।

'परम भट्टारिका,' उसने कहा, 'अवकाश निकाल सकेंगी ?'

'क्यों ?' राज्यश्री ने पूछा।

'सम्राट् ने स्मरण किया है। वे परमभट्टारिका चयनिका देवी के प्रासाद में प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'तू चल। मैं आती हूँ।'

राज्यश्री ने पहुँच कर देखा। हर्षवर्द्धन गम्भीर था।

'भैया,' राज्यश्री ने पूछा।

'भगिनी,' सम्राट् ने कहा, 'आज बुद्ध शासन पालन हुआ ?'

'हुआ तो ?'

'कल भी होगा ?'

राज्यश्री क्या उत्तर दे! वह चुप रही।

सम्राट् ने कुछ नहीं कहा। वे चले गये जैसे पहले से तय था, आगे की बात चयनिका संभाल लेगी।

चयनिका ने कहा : राज्यश्री!

'भाभी क्या हुआ ?'

'अच्छा नहीं लगा।' केवल इतना कहा और वे भी चुप हो गईं।

'यह तो अनेक स्त्रियाँ कर चुकी हैं।' राज्यश्री ने टोका।

'पर क्या वे सम्राट् की बहिनें थीं ?' चयनिका ने कहा, 'तुम चाहे जितना दान दो राज्यश्री। मैं तुम्हें अपनी बच्ची समझती हूँ। तुम नहीं जानती, भिक्षा लेने से बढ़ कर भिक्षा देना है।'

राज्यश्री चुप रही। चयनिका ने कहा : परमभट्टारिका!

'नहीं भाभी! मेरा नाम लो। नहीं तो भिक्षुणी कहो!' राज्यश्री ने काटा।

'तो अपने को दुखी न करो। लोग समझेंगे सम्राट् के यहाँ राज्यश्री को सुख नहीं है।'

उफ ! राज्यश्री चौंकी । वह यह क्यों भूल गई थी । मर्यादा ! और फिर संसार !

'सामंत अर्जुन ने बताया था कि लोग आज की घटना के अनेकानेक अर्थ लगा रहे हैं । कोई कहता था भाई ने बहिन का राज्य तो ले लिया किन्तु खाने को उसे देता नहीं ।'

'भाभी वे नीच हैं,' राज्यश्री ने कहा । फिर उसे खेद हुआ । वह क्षमा करने के स्थान पर क्रुद्ध क्यों हो गई ?

'नहीं जाऊँगी,' उसने कहा । चयनिका प्रसन्न हो गई ।

जब वह चली गई उसने तरला से कहा : बेचारी को क्या सुख मिला ? फिर जैसे याद आया, 'हाँ तो,' उन्होंने कहा, 'क्या हुआ उसका ?'

तरला समझ गई । कहा : मागधी ठीक रहेगी, समझा था । किन्तु क्या हुआ ? कुछ नहीं ! देवी !

वह अत्यन्त सुन्दरी थी । फिर उसने चयनिका को देखा । वह चुप थी । तरला ने सोच कर कहा : नही रहेगी कोई । नहीं रहेगी ।

'क्यों ?' चयनिका ने कहा, 'ठीक ? नहीं, हाँ नहीं रहेगी ।'

तरला नही समझी । चयनिका ने कहा : नही री सब प्रयत्न व्यर्थ है । वह तो करेगा ही नहीं । पुष्यभूतिवश तो आगे नहीं चलेगा अब ।

उन्होंने एक लम्बी साँस लेकर कहा : क्या होगा फिर इस साम्राज्य का ? भगवान् वराह ही इस पृथ्वी का उद्धार करेंगे तरला । और कौन करेगा ? परन्तु एक बात सोचती हूँ । राज्यश्री यदि कहे तो, फिर सोच कर कहा : उस बेचारी ने तो कोई कसर छोड़ी नहीं । भाग्य है ! भाग्य ! जाने दे री । कौन क्या कर सकता है ?

वह अपने आप बुड़बुड़ाती रही । तरला अपने दौवारिक से बीच में दो बार ठिठोली कर आई । राज्यश्री शमी वृक्ष की भाँति खड़ी थी । देवताओं के अतिरिक्त कौन जान सकता था कि उसके भीतर अग्नि छिपी हुई है । ऊपर से वह शांत लगती थी ।

३४

काश्मीर से संवाद आया था। दन्तस्मारक देने को पहले तो काश्मीर राज्य तत्पर नहीं हुआ किन्तु जब उसे ध्यान दिलाया गया कि यदि सम्राट् हर्षवर्द्धन की वाहिनी इधर आ गई तो पर्वतों के उन्नतशृङ्गों को चकनाचूर कर देगी। वह भयभीत हो गया और उसने स्वीकार कर लिया।

चयनिका ने सुना तो फूट पड़ी। आनन्द से जैसे हृदय भर गया। उसने तरला को बुला कर कहा : अब मन की एक साध तो पूरी हुई। तरला नहीं समझी। केवल आश्चर्य से स्वामिनी को देखती रही। क्या स्वामिनी को बौद्धों में इतनी श्रद्धा थी ?

'सुना राज्यश्री ?' चयनिका ने राज्यश्री के प्रासाद मे प्रवेश करते हुये कहा।

'क्या भाभी ?' भिक्षुणी ने पूछा।

'काश्मीर राज्य दन्तस्मारक देने को तैयार हो गये। अब वह यहाँ ले आया जायेगा, कान्यकुब्ज आज धन्य हो गया। तेरे भैया ने सद्धर्मियों की पताका कितनी उठा दी।'

राज्यश्री ने जैसे नहीं सुना। वह चुपचाप बैठी रही। चयनिका के मुख से निकला : अरे !

बात समाप्त हो गई। दोनों ने बिना कुछ कहे भी एक दूसरी को अपनी आँखों से ही जैसे बहुत कुछ समझा दिया।

'मैने तुम्हें दुख दिया राज्यश्री ?' चयनिका ने अप्रतिभ होकर पूछा।

'नहीं भाभी', राज्यश्री ने चीवर संभालते हुये उत्तर दिया, 'आज तक जो नहीं किया वह क्या अब करोगी ?'

चयनिका चली गई। बाहर भिक्षुसमुदाय सम्राट् की प्रतीक्षा में

खड़ा था। उत्सुक। सम्राट् को देख कर भिक्षु गद्‌गद् हो गये। राज्यश्री सम्राट के साथ थी। भिक्षु अत्यन्त प्रसन्न थे।

एक ने बढ़ कर कहा : सम्राट्! अशोक देवानाम प्रियदर्शी के उपरांत हमें आपमें एक सम्राट् प्राप्त हुये। अब आशा है, शीघ्र ही सद्धर्म पहले की भाँति पुनरुत्थान को प्राप्त करेगा। बहुत दिन से ये ब्राह्मण सद्धर्म्म के वक्ष पर यज्ञ यूपों की कीलें गाड़ते रहे हैं।

सब प्रसन्न हुये। सम्राट केवल मंद-मंद मुस्करा दिये।

राज्यश्री प्रसन्न नहीं हुई। उसका मन जाने कैसा-कैसा होने लगा। यह सब क्या हो रहा है? शास्ता ने बल प्रयोग की आज्ञा कब दी थी? फिर उसे याद आया। लिच्छविगण में शास्ता का अपूर्व सम्मान था। जब वे कुछ इंगित कर देते थे, तुरन्त उनकी इच्छा पूर्ण कर दी जाती थी। क्या वह भी बल प्रयोग था!

किन्तु उसने अपना भाव छिपा लिया। यदि वह भिक्षु संघ के सामने यह सब कह दे तो? जाने क्यों साहस नहीं हुआ। व्यक्ति की निर्बलता अपने आप कसमसा उठी। उस दिन पहली बार राज्यश्री को लगा कि वह धर्म से भतभीत थी। इस विचार ने उसे विद्रोह की भावना दी। जिस पथ में केवल आत्मा का उद्धार था, उस पर यह बंधन क्यों?

वह इसे स्वीकार नहीं कर सकी।

धीरे-धीरे साँझ हो गई। अंधेरा हो गया। मंदिर में अनेक-अनेक दीपक जल उठे। उनके मंदिम प्रकाश में एक नीरव गंध भारिल होकर झूमने लगी। रात को उसने बुद्ध प्रतिमा के संमुख झुक कर कहा : शास्ता! क्या संसार तुमको भूल गया है?

बुद्ध प्रतिमा पर आलोक थिरकने लगा। राज्यश्री ने देखा, वह स्निग्ध शांति। हिल हिल कर आलोक ने इगित किया : मैंने यह नहीं कहा था, वत्से मैने यह नहीं कहा था। राज्यश्री आँख फाड़ कर देखती रही।

उसकी बात किसी ने नहीं सुनी। केवल बुद्ध प्रतिमा का दिया हुआ अभयमन्त्र उसके भीतर समा गया। वह उस सुन्दर रूप को देर तक देखती रही।

राज्यश्री बाहर आई तो मन हल्का था। रात शाति से व्यतीत हो गई।

दूसरे दिन धार्मिक जनता में सवाद फैल गया। सद्धर्म्म की इस उन्नति को देख कर ब्राह्मण मन ही मन जल उठे।

भिक्षुसंघ में विवाद हो रहा था! किस प्रकार दन्तस्मारक को प्रतिष्ठापित किया जाय? किस प्रकार का उत्सव होना चाहिये कि शत्रुओं की प्रतिस्पर्धा फिर नतशीश हो जाये। बहुत दिन बाद ऐसा अवसर आया था। कोई साधारण बात नहीं थी। अब तीर्थ करने सहस्रों योजनों से सद्धर्म्मी आयेंगे और कान्यकुब्ज में आकर उपासना किया करेंगे। कान्यकुब्ज में संघ की आय तो इतनी बढ़ जायेगी कि संघ अपनी समृद्धि की कल्पना भी नहीं कर पाता था।

उस रात भिक्षुसंघ में बाइस भिक्षुओं ने साधना की। कोई वज्रतारा, कोई आर्य जागुली और कोई हेरुक की उपासनारत था। केवल दक्षिण के तीन प्रकोष्ठ में साधिकाएँ भी बुला ली गई थी।

इसी प्रकार एक सप्ताह बीत गया।

आज दन्तस्मारक का महोत्सव था। चारों ओर महानगर में आनंद ही आनंद दीख रहा था। स्त्रियाँ उबटन कर करके स्नान कर रही थीं। पुरुष स्नान के बाद अपने शरीरों पर गन्धालेप कर रहे थे। सुन्दरियाँ अपनी केशसज्जा में तल्लीन थीं। आज उनमें जैसे होड़ पड़ गई थी। ऐसे उत्सवों में ही तो स्त्री अपने सौंदर्य की पताका फहराती थी। वृद्धाएँ युवतियों को देखतीं, अपनी पुत्रियाँ होतीं तो मुस्करा कर उनसे कहतीं तू भी तैयार हो जा न? और पुत्रवधू होतीं तो उन पर व्यंग्य कसतीं।

पथों पर अब नागरिक स्वच्छ और गन्धित वस्त्र पहन कर निकलने

लगे। माला बेचने वाली स्त्रियाँ आ गईं और वेश्याएँ अपने शरीर के अधिकाधिक प्रदर्शन में होड़ करतीं। कटाक्षों से समस्त पथ को ऐसे बींधने लगीं जैसे पुरुष एक पुष्प था और दृष्टि एक सूत्र थी, यह नवीन आकर्षण की माला उनकी सिद्धि थी।

गलियों में आज द्वारों पर चित्र बन गये थे। छोटे-छोटे बालकों के सिर पर माला गूँथ दी गई थी और लड़कियों को छोटे-छोटे रेशमी लहँगे पहना दिये गये थे। बच्चियाँ तो जैसे आनंद से समाती ही नहीं थीं। उन्हें क्या मालूम था कि क्या हो रहा था। बालक-बुद्धि उत्सव प्रिय होती है। किन्तु वृद्धों में भी आज विवाद छिड़ गये। वे पुरानी बातों का वर्णन करते, कुछ सच, अधिक झूठ, क्योंकि वह सब भुला दिया गया था। वृद्ध को अतीत का गौरव और वर्त्तमान का दुख और भविष्य का अंधकार कभी नहीं भूलता। सदियों से वृद्ध की यही स्थिति है। और वृद्धाएँ जीवन के अंतिम पलों में अधिक कोलाहलप्रिय होकर भर्राए स्वर फैला रही थीं।

प्रासाद में दास-दासियों ने नये वस्त्र धारण किये थे। प्रभुवर्ग की स्त्रियों का प्रसाधन तो जैसे समाप्त ही नहीं होने का था। कभी कंठ सूखने पर गौड़ीय मदिरा के दो घूँट पिये जाते, कभी पारसीक मदिरा के। और चीन के रेशमी वस्त्रों की स्निग्धता से गन्ध फूटी पड़ती।

सैनिक अपने आयुध चमका कर पहन रहे थे। आज उनकी विशेष महत्ता थी। गुल्माधिपति इस समय उत्सव के लिये तैयारी करते जाते थे और नर्त्तकियों से हास-विलास करते जाते थे। उच्च पदाधिकारियों के चारों ओर एक नहीं, अनेक दासियाँ खड़ी रहती थीं। कोई पाँव धोती, कोई केश सँवारती, उनका शृङ्गार करती।

और धीरे-धीरे दिन चढ़ने लगा। राज्यश्री की आराधना और ध्यान आज नहीं हो सके। प्रातःकाल से ही इतना काम आ पड़ा कि पल भर भी विश्राम नही मिला। कितने ही भिक्षुओं के साथ प्रातः ही

संघस्थविर आ गये। उनकी सेवा में ही काफ़ी समय व्यतीत हो गया था। उनके जाने के बाद वह कुछ क्षण विश्राम के लिये भीतर चली गई, पर फिर बाहर आना पड़ा।

कान्यकुब्ज में अब उत्सव पथों पर आ गया। पुरुष और स्त्रियों की भीड़ें अब कोलाहल करने लगीं। राजकीय प्रबंध की कोई कमी नहीं थी।

सम्राट् हर्षवर्द्धन अपने विशाल हाथी पर स्थित थे। कुमारामात्यों और महामात्यों के तुरंग उनके हाथी को घेरे हुए थे। उनके स्वर्णाभूषण देख कर प्रजा की आँखें कौंधने लगती थीं।

दिगन्तनादिनी पटह ध्वनि से अंतराल काँप रहा था। अनेक प्रकार के वाद्य बज रहे थे। उनके स्वर ने दिशाओं में जय-जयकार-सा मुखरित कर दिया था। सम्राट् का यशोगान अब दूर-दूर तक गूँजने लगा था।

आगे-आगे हाथी सुनहली झूलों में मंथर गति से चल रहे थे। उनके पीछे स्वर्णाभूषणों से सज्जित भव्य तुरंग चल रहे थे। उनके पीछे पदातिक अपने चमचमाते शिरस्त्राण पहने चल रहे थे। उनके पीछे फिर तुरंग, फिर भव्य ऊँचे पर्वत खडों के से हाथी थे। उनमें से जो सबसे ऊँचा था उस पर दन्तस्मारक रखा था। असख्य भिक्षु उस हाथी को घेरे हुए थे। ऊँचे हाथी ने सूण्ड उठा कर एक बार अपनी चिंघार सुनाई जिसको सुन कर शरीरों में एक उद्वेग पैदा हुआ। फिर पीछे के हाथी और तुरंगों ने दृष्टि को विह्वल कर दिया।

उस विराट् जुलूस को देख कर लगा जैसे सुवर्ण और लौह की एक प्रचण्ड धारा अब धरती के वक्षस्थल को अपने वज्राघात से रौंद रही थी। बुद्धंशरणं, धर्म्मंशरणं, संघंशरणं गच्छामि का मंदिम नाद असंख्य कठों से निकलने के कारण संयत हो गया और वह वातावरण पर अभी अपना गम्भीर प्रभाव डाल भी नहीं पाया था कि सैनिकों ने

भिक्षुसंघ, सम्राट् और राज्यश्री का प्रचण्ड स्वर से जय-जयकार करना प्रारंभ किया।

ऊँचे सुवर्णमंडित मंच पर खड़ी राज्यश्री ने सुना और सुना जैसे समुद्र की लहरें उसके चरणों से टकरा रहीं थीं। उस गर्जन और जनता के तुमुल निनाद से अहम्मन्यता की तुष्टि उसके होठों पर क्षण भर काँप उठी, फिर जैसे वह सँभल गई! वह दिगन्त को बहरा करने वाला शब्द आज उसी के चरणों पर केन्द्रित होकर भँवर मार रहा था। क्या राज्यश्री इस भँवर में डूब जाएगी? भँवर में कौन बच सका है?

दंत का जुलूस जब समाप्त हुआ भिक्षुसंघ ने राज्यश्री और हर्षवर्द्धन को घना आशीर्वाद भेजा। राज्यश्री सुनती रही। स्वयं संघस्थविर फिर आ गये। उनके वृद्ध मुख पर एक अद्भुत् उल्लास था जिसे राज्यश्री ने उनके मुख पर आज पहली बार देखा था!

'भन्ते!' सम्राट् ने कहा, 'आपका आशीर्वाद है। जो कुछ है भगवान की ही महिमा है।'

राज्यश्री घबराने लगी।

राज्यश्री के प्रासाद में आते ही जी में आया कि वह सबसे कहे कि जो आज हुआ है वह स्वयं उससे प्रसन्न नहीं है। जो कुछ आज हुआ है, वह सब तथागत ने कभी नहीं कहा था। कभी नहीं कहा था। फिर यह सब क्यों हुआ!

जब नदी की नाव को आदमी किनारे पर ढोने लगता है तब क्या होता है?

वह एक बार हँसी।

पर विचार आया। बुद्ध स्वयं संसार में आलोक पहुँचाने आये थे। सम्यक् संबुद्ध ने मृगदाव में आकर उपदेश क्यों दिया था? क्या वह यही नहीं चाहते थे?

'यह झूठ है', मन ने कहा।

फिर सत्य क्या है ?

राज्यश्री का हृदय थर्रा उठा।

क्या वह अकेली ही ठीक सोच रही है। समस्त भिक्षुसंघ, असंख्य नागरिक और स्त्रियाँ क्या सब मूर्ख हैं ? कहीं राज्यश्री अपने दुराभिमानी अहंकार में तो इस सबका विरोध नहीं कर रही है ? आखिर कोई भी विरुद्ध नहीं है। क्यों ?

फिर वह काँप उठी।

वह बाहर चली। उसने देखा विजया भिक्षुणी अपने प्रकोष्ठ में धारिणी दुहरा रही थी। राज्यश्री ने देखा विजया जैसी थी वैसी ही है। वृद्धा ने देखा और कहा : आओ भट्टारिका !

राज्यश्री भीतर गई। उसने इधर-उधर देखा।

विजया भिक्षुणी की भक्ति अपार थी। उसने कहा : भट्टारिका ! आज कैसा जी है ? इतनी उद्विग्न क्यों हो ?

'मैं ?' राज्यश्री ने कहा, 'क्यों ?'

'देवी ! मैंने संसार देखा है। मनुष्य का स्वभाव थोड़ा-बहुत तो मैं भी जानती हूँ', वह कहने लगी, 'मनुष्य साधना करता है, किन्तु फिर भी उसका मन अपने लिये एक शांति खोजता है।'

'वह शांति क्या है ?' राज्यश्री ने सरलता से पूछा।

'वह शांति ?' विजया अकचका गई। जैसे जो कहना चाहती है, वह कह नहीं सकती। राज्यश्री ने आँखें फाड़कर देखा। परन्तु वह समझ नहीं सकी।

'शांति भ्रम है विजया ?'

'नहीं देवी, शांति, प्रकृति का सौंदर्य है, उसकी अनुभूति है, उसका तदात्म्य है।'

'और अशांति क्या है ?'

'अशांति प्रकृति से विद्रोह है।'

'प्रकृति से तो हम प्रति पल विद्रोह करते हैं ?'

'मन को बहलाते हैं देवी।'

राज्यश्री का मन नहीं भरा। कहा: तो हम सब झूठा जीवन बिताते हैं। शास्ता का जीवन मिथ्या था ?

'छिः-छिः देवी ! आप क्या कह रही हैं ?' विजया ने दाँतों में जीभ काट ली। राज्यश्री सकपका गई।

नालंद के विद्यार्थी आये थे। वे अपनी शिक्षा को समाप्त करके आये थे। राज्यश्री के सामने लाये गये। राज्यश्री ने उन्हें कर्म सचिव के समीप भेज दिया ताकि वह उन्हें काम दे सके। राज्य में विद्वानों की कमी नहीं होने पावे।

फिर वह उठी।

परिचारकों की देखरेख मे काफी समय व्यतीत हो गया। अभी वह थककर बैठी ही थी कि उसे अचानक याद आया। उसे तो आज जाना था !

आज कुमारामात्य रविसेन के यहाँ उनकी पुत्री का विवाह था। राज्यश्री भी गई। उसने आशीर्वाद दिया। कुलीन परिवार वहाँ स्थित थे।

वर और वधू दोनों बहुत सुन्दर थे। उस सुन्दरता को देख कर न जाने राज्यश्री के हृदय में छिपी कौन सी अपूर्णता को तृप्ति मिली।

लौटी तो वह प्रसन्न थी।

मन ने कहा : परम्परा।

परम्परा में अपनी असफलता की तृप्ति है ?

प्रश्न ने प्रश्न किया : तृप्ति का व्यक्तित्व क्या एक देह से दूसरी देह मे पूर्ण हो सकता है ?

'क्यों नहीं ?' तर्क ने उत्तर दिया।

'सम्यक सम्बुद्ध की शरण', शास्ता की शरण, धर्म ने कहा।

'दीपक से दीपक जलता है। अग्नि अपने आप में अभिन्न है। प्रत्येक देहधारी दीपक में भिन्न होकर भी अभिन्न होकर जलती है। अग्नि एक है, 'वह खंड भी अखंड है।'

मन ने पथ खोज लिया था।

तर्क ने फिर पूछा : क्या यह तृप्ति एक पराजय नहीं है?

'है!' ममता ने स्वीकार किया। ममता! नारी की मातृत्व की बुभुक्षा।

'फिर?'

फिर कोई तर्क नहीं। फिर अनुभूति ने सब कुछ छा लिया। वही अब सुखकर था।

राज्यश्री ने कहा : महायान ही सत्य है।

विजया भिक्षुणी चौंकी। पूछा : क्यों?

'निर्वाण जो सहज है इसमें?'

'ठीक ही तो देवी हीनयानी तो एक प्रकार से शरीर के शत्रु हैं।'

'हूँ।' राज्यश्री ने सोचते हुए कहा।

विजया भिक्षुणी समझी अगली मंजिल भी पास है जब देवी कहेंगी—वज्रयान परम सत्य है।

वह चली गई। राज्यश्री बैठी-बैठी सोचती रही। क्या निर्वाण सचमुच इतना सहज है? यदि ऐसा है तो फिर संसार में अब तक दुःख क्यों है?

विजया की इतनी हिम्मत फिर भी नहीं हुई कि वह साधना के विषय में कुछ राज्यश्री को बताती। आखिर तो राज्यश्री सम्राट् की भगिनी, परमभट्टारिका थी।

राज्यश्री का अध्ययन बढ़ गया। वह खूब पढ़ती। चीनी भिक्षु जो दो-चार थे उनसे भी परिचय था। वे आते और अपने देश की बातें सुनाते।

करुणा का संदेश सचमुच इतना व्यापक होकर भी क्यों पूर्ण नहीं था, राज्यश्री इस विषय पर बार-बार सोचती किन्तु पथ नहीं पाती।

जीवन अब फिर उलझा नहीं रहा। अब वह बाहर के काम-धन्धों में अपना अधिक समय व्यतीत करती। सार्वजनिक जीवन वही व्यक्ति अधिक अच्छा बिता सकता है, जो अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को जितना अधिक कम कर सके। जो अपने आप में बद्धमुखी हो जाता है वह स्वार्थी होता है। कभी कोई कभी कोई, कोई न कोई आता ही रहता।

गाधार के शिल्पी चले जाते, तो उद्यान के व्यापारी आते। नहीं तो दमिल आ जाते जो दक्षिण के हीरक और सुवर्ण लाते। सम्राट् खरीदते सब से थे और असंख्य धन इन वस्तुओं पर बहा देते। सप्ताह में एक दिन वे स्वर्ण और हाथी दाँत की पालकी में बैठ कर बाजार जाते और प्रायः बाजार ही खरीद लाते।

राज्यश्री अब इन कार्यों में भी थोड़ा-बहुत भाग लेने लगती, कभी नहीं लेती। ऐसे ही चलता। किन्तु कोई विशेष बात होती तो सम्राट् उसे अवश्य बुलवा लेते। उस दिन राज्यश्री को वे नहीं बुला सके थे यद्यपि दूर समुद्र पार से ब्राह्मण आये थे। उन्होंने बताया कि अब समुद्री दस्यु भी बढ़ गये हैं, वे जहाजों को लूट लेते हैं, तब चयनिका ने कहा : और व्यापारी पोतों पर सैनिक नहीं रखते ?

'रखते हैं देव ! किन्तु दस्यु भयानक हैं।'

'जलचर ही जो हैं !' चयनिका ने स्वीकार किया।

हर्षवर्द्धन ने सुना और चयनिका से कहा : भाभी। क्या समुद्र का प्रबन्ध नहीं किया जा सकता ?

'उपहास न करो देवर', चयनिका चौंकी। उसने फिर अपनी आँखें फैलाकर कहा : यह कैसे हो सकता है ?

'नहीं हो सकता ?'

'इतना बेड़ा अपने पास है कहाँ और वह भी यव तक,' सम्राट् ने

सुना और वे झुके। चयनिका ने धीरे से कहा : अब अरब व्यापारी ब्राह्मणों और आर्यों की जगह ले रहे हैं।

'यह सत्य है ब्राह्मण देवता ?' सम्राट् ने पूछा।

'देव ! यह सत्य है।'

बात बढ़ी नहीं। चयनिका तरला को लेकर अपने प्रासाद की ओर चली गई। सम्राट् राज्यश्री के पास चले गये थे।

३५

राज्यश्री पढ़ रही थी। नागार्जुन की युक्तिषष्ठिका बगल में रखी थी। सामने विग्रहव्यावर्त्तनी थी। वस्तुओं के भीतर, दार्शनिक ने प्रमाणित किया था, कोई स्थिर तत्त्व नहीं है। वह एक विच्छिन्न प्रवाह मात्र है।

राज्यश्री को लगा वह अब शून्यता का अर्थ समझती जा रही थी ! तो यह थी वास्तविकता ?

भिक्षु मग्न था। वह बैठा कुछ दूर पर पढ़ रहा था।

विजया चुप थी। एकाएक वह कह उठी : देवी दार्शनिक हो जाने से ही, शास्ता की बात समझ में नहीं आ जाती।

राज्यश्री ने पूछा : तो फिर ?

'प्रयोग !' भिक्षु ने कहा, 'कथनी और करनी का सम्मिलन भी आवश्यक है।'

'हाँ देवी,' विजया कहने लगी, 'शास्ता के जीवन से स्वयं यह प्रगट होता है।'

पाठ रुक गया। दास मीलक आया और उसने प्रणाम किया। राज्यश्री ने सिर हिला दिया।

मीलक ने कहा : देवी ! द्वार पर अतिथि हैं।

'बिठा दो', राज्यश्री ने कहा, 'पाठ करके मिलेंगे।'

मीलक चला गया। किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। एक न एक दर्शनों का इच्छुक आता ही था।

राज्यश्री ने फिर कहा : व्यवहार का आधार यदि चिंतन में नहीं है, तो फिर है कहाँ?

इसी समय दंडधर ने आकर अभिवादन किया और वह अपना दंड झुका कर खड़ा हो गया।

राज्यश्री ने सिर उठाया। भिक्षु का ध्यान पुस्तक पर से हट गया।

'क्या है?' विजया भिक्षुणी ने पूछा।

'देवी!' दंडधर ने राज्यश्री को देख कर कहा, 'भिक्षु संघ से एक भिक्षु उपस्थित है।'

'ले आओ।' राज्यश्री ने कहा।

दंडधर चला गया। कुछ देर में वह एक भिक्षु के साथ उपस्थित हुआ।

'परमभट्टारिका!' भिक्षु ने कहा, 'भिक्षुसंघ से?' वह आश्चर्य में था।

'मैं भी सोचती थी।'

'सभवतः संघस्थविर ने भेजा हो।'

'क्यों?'

'संघस्थविर?' विजया ने कहा।

अकस्मात् व्याघात हुआ था। अप्रत्याशित था।

दासी रुद्रा भीतर आयी।

'रुद्रा!' राज्यश्री ने कहा, 'अभी एक दंडधर आया था न......'

'देवी! वह बाहर गया है, अभी आता ही होगा', रुद्रा ने व्यस्त भाव से कहा।

'बुला ला', विजया ने कहा।

'जाती हूँ।' वह चली गई।

एक और दंडधर ने आकर कहा : देवी! संघस्थविर उपस्थित हैं।

'संघस्थविर ! चलो ।'

दंडधर चला गया। सबको अत्यन्त विस्मय हुआ। वे वृद्ध संघ-स्थविर जो भिक्षुओं की भीड़ लेकर हाथी पर आते थे, आज वे इतनी निस्तब्धता कैसे कर सके हैं। उनको अत्यन्त कौतूहल हुआ। राज्यश्री उठ खड़ी हुई। भिक्षु और विजया भी। वे निकल कर विशाल प्रकोष्ठ में आ गये।

संघस्थविर कान्यकुब्ज के साधारण व्यक्ति नहीं थे। इस समय उनको नालंद और उत्तरापथ के समस्त भिक्षुसंघों के संघस्थविरों से अधिक सम्मान प्राप्त था, क्योंकि कान्यकुब्ज में रहने के कारण वे वास्तव में इस समय सद्धर्म को राज बल से संबंधित रखते थे और यह उनके प्रभाव का एक बहुत बड़ा कारण था।

आज ही प्रातः काल जब संघाराम में वृद्ध संघस्थविर बैठे थे तब चारों ओर शांति ही शांति विराज रही थी। दो भिक्षुओं में झगड़ा हो गया था। उन्हें अनुशासन पर उपदेश दिया था। एक भिक्षुणी पर आरोप था कि वह अपने साथी भिक्षुओं को कामी बना रही थी। उसे भी आदेश दिया गया था। परन्तु उस आदेश का प्रभाव नहीं पड़ा था। बात यों साबित हुई थी कि वह वज्रयानी भिक्षुओं की शक्ति थी। संघस्थविर प्रसन्न थे।

इसी समय कोई भीतर घुसा और बाहरी द्वार के पास खड़ा हो गया।

'संघस्थविर कहाँ हैं ?' उस व्यक्ति ने पूछा।

दूसरी बार पूछने पर वहीं बैठे एक भिक्षु ने उसकी ओर देखा और धीरे से कहा : कहाँ से आये हो ?

'संघस्थविर कहाँ हैं ?' उस व्यक्ति ने कुछ इंगित किया।

भिक्षु ने समझ कर कहा : दूसरे खंड पर।

दूसरे खंड पर पहुँच कर उस व्यक्ति ने वृद्ध संघस्थविर को देखा और साष्टांग दंडवत की।

वृद्ध संघस्थविर ने आशीर्वाद दिया।

आगंतुक खड़ा रहा। दो तीन भिक्षु इस समय वहीं आकर खड़े हो गये।

वृद्ध संघस्थविर ने कहा : उपगुप्त !

'भन्ते !' एक भिक्षु ने कहा !

'तुम अपना कार्य कर चुके ?'

'कर चुका भन्ते।'

'तो जाओ।' और फिर उन्होंने आगन्तुक को देखा, जो उन भिक्षुओं के चले जाने पर धीरे से बोला : मैं समाचार लाया हूँ।

'कहो।'

'भन्ते, अनर्थ हो गया।'

वृद्ध संघस्थविर चौंक उठे। बोले : ऐं !

'हाँ भन्ते।'

'शीघ्र कहो।'

'भन्ते, समाचार गोपनीय है।'

'कहो।'

आगन्तुक ने इधर उधर चकित नेत्रों से देखा जैसे अब भी उसे विश्वास नहीं हुआ था। फिर उसने बहुत धीरे-धीरे कुछ कहा। बात का असर एकदम बिजली का-सा हुआ।

संघस्थविर स्तब्ध रह गये।

'यह सत्य है ?'

'भन्ते ! मेरा वध करवा दें, यदि यह असत्य हो।'

वे देर तक सोचते रहे। उनकी मुख-मुद्रा अत्यन्त कठोर हो गई।

उन्होंने कहा : एक बार फिर सोच लो, संभव है तुम्हें असत्य संवाद मिला हो।

'भन्ते ! यह सत्य है।'

'जानते हो न, राजा बौद्धों का मित्र है। यदि यह सत्य है तो इसका परिणाम क्या होगा ?'

'भन्ते ! मै जानता हूँ।'

कुछ देर बाद वे उठ खड़े हुए। कहा : मेरे साथ चलो।

'जैसी आज्ञा', आगन्तुक ने दृढ़ स्वर से कहा।

संघस्थविर ने पुकारा : उपगुप्त !

उपगुप्त ने आकर प्रणाम किया।

'रथ तैयार कराओ। मैं प्रासाद जाऊँगा।'

उपगुप्त चौंक कर देखने लगा।

बाहर आकर उन्होंने देखा भिक्षु आपस में बातचीत कर रहे थे। ऐसा यह व्यक्ति क्या संवाद लाया था कि संघस्थविर एकदम राजप्रासाद चल पड़े।

'तुम जानते हो उपगुप्त ?' सरोरुहगुप्त ने पूछा।

'मुझे क्या मालूम ?'

संघकीर्त्ति ने सिर हिला कर कहा : होगा कुछ !

बात टली नहीं। फैलती गई। जब तक संघस्थविर नीचे के खंड में आये, तब तक बात सिंहद्वार के बाहर चली और कानों में घुस कर जब जीभ पर फिसलती वह हवा पर चली, महानगर मे एक हल्की-सी सनसनी फैल गई।

रथ सिंहद्वार में से घुसा और पहले खंड के उत्तरद्वार पर जा पहुँचा। वृद्ध सघस्थविर धीरे-धीरे बाहर आ गये और उन्होंने आगंतुक से कहा : तो फिर चलना ही पड़ेगा।

स्वर्ण रथ पर चढ़ कर जब संघस्थविर और वह नया व्यक्ति बाजार

में से निकले, दूकानदार दोनों ओर उठ कर खड़े होकर अभिवादन करने लगे। राह चलते लोग प्रणाम करते। किंतु ब्राह्मण और जैन केवल दूकानदार होने पर ही नमस्कार करते। अन्यथा नहीं। सामन्त अर्जुन का रथ दूसरी ओर से आ रहा था। इस समय संघस्थविर का रथ जा रहा है, सुन कर उसके सारथी ने रथ को एक गली में मोड़ दिया। सामन्त ने क्रोध से अपने होंठ दांतों से चबा लिये। परन्तु वह क्या करता। संघस्थविर का पद उससे ऊँचा था।

रथ जाकर प्रासाद के संमुख रुका। वृद्ध संघस्थविर चुपचाप उतर पड़े। आश्चर्य से संमुख खड़ा दंडधर पीछे हट गया। उसने संघस्थविर का राजसी ठाठ देखा था।

एक पल में हलचल मच गई।

इस समय संघस्थविर स्वर्ण की पीठिका पर बैठ गये। राज्यश्री सम्मुख खड़ी हो गई। उसने पूछा : भन्ते ! आज ?

वह कह नहीं सकी। वृद्ध संघस्थविर ने कहा : सद्धर्म पर विपत्ति आई है।

'विपत्ति !' राज्यश्री के मुख से बरबस निकला।

शब्द घहरा। बड़ा हो गया। वृद्ध संघस्थविर के मुख पर एक अनोखी दृढ़ता खेल गई। उनके साथ आने वाला व्यक्ति अब पृथ्वी पर बैठ गया था।

वृद्ध संघस्थविर की ओर सब की दृष्टि केन्द्रित हो गई थीं। उन्होंने आतुरता से पूछा : सम्राट् कहाँ हैं ?

'सम्राट ? अपने प्रासाद में होंगे,' विजया भिक्षुणी ने कहा।

'आवश्यक कार्य है ?' राज्यश्री ने पूछा।

'देवी उन्हें बुला लो,' वृद्ध ने कहा। उन्होंने यह नहीं कहा कि वे स्वयं उठ कर वहाँ चले जायेंगे। तब, कोई विशेष बात होगी। है तो, क्योंकि वृद्ध के मुख पर जो व्यग्रता है वह साधारण नहीं है।

दंडधर दौड़े।

पल भर में संवाद फैल गया। कोट्टपाल ने नगर के द्वार बन्द करवा दिये जैसे न जाने क्या होने वाला है।

जब दंडधर ने दासी अमिया से जाकर कहा और अमिया भीतर चली गई तब लौट कर बोली कि सम्राट् हर्षवर्द्धन स्नानागार मे थे।

'तो शीघ्र सूचना दो कि कान्यकुब्ज के संघस्थविर परमभट्टारिका देवी राज्यश्री के प्रासाद में प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'आते हैं', दासी ने इठला कर कहा, जैसे यह न भूलो कि किसे बुला रहे हो? सम्राट् जल्दी नहीं किया करते। दंडधर ने लौट कर यह समाचार सुना दिया। संघस्थविर अब आतुरता से प्रतीक्षा करने लगे।

प्रायः एक-चौथाई प्रहर व्यतीत हो गया। संघस्थविर ने फिर कहा: देवी! बहुत विलम्ब हुआ।

'दंडधर भेजा है फिर।' राज्यश्री ने आश्वासन दिया।

'तो ठीक है।' फिर भी जैसे वे ठीक नहीं थे।

'प्रस्तुत हूँ', सम्राट् ने प्रवेश करते हुए कहा, विलम्ब के लिये क्षमा प्रार्थना स्वीकृत हो।

सबने आश्चर्य से देखा कि वृद्ध संघस्थविर उस समय सम्राट् का कंठस्वर सुन कर ऐसे उठ खड़े हुए जैसे बालक अधीर हो उठा हो।

सम्राट् ने संघस्थविर को प्रणाम किया। वे बैठ गये और फिर उन्होंने कहा: राज्यश्री!

'भैया,' राज्यश्री ने उत्कंठा से कहा।

'बैठो', सम्राट् ने कहा, 'आज कुछ व्यग्रता है?' फिर जैसे वे धैर्य के प्रतिरूप बन कर मुस्कराए, जैसे मेरे रहते किसी को कोई भय नहीं है।

वृद्ध संघस्थविर बैठ गये।

'कहें भन्ते ! कैसे कष्ट किया ?'

'आज भन्ते ...' विजया ने प्रारम्भ किया किन्तु संघस्थविर ने जब आँखें उठा कर उसकी ओर देखा, वह चुप हो गई।

संघस्थविर ने कहा : विशेष कारण की उपस्थिति में ही विशेष कार्य करने का साहस कर सका हूँ।

'क्या हुआ भन्ते ?' सम्राट् ने कुछ झुक कर, कुछ मस्तक ऊपर उठा कर कहा।

संघस्थविर ने धीरे से कहा : देव ! सद्धर्म की जड़ कट गई। आज आर्यावर्त्त मे जो अनर्थ हुआ है, ऐसा कभी नहीं हुआ। शताब्दियों का गौरव आज धूलि में लुण्ठित हो गया है, आज संसार में सद्धर्म्म का सम्मान पददलित हो गया है। आज मेरा हृदय फटा जा रहा है।

सब चौंक उटे। सम्राट् के मुख पर शौर्य झलका। राज्यश्री गम्भीर से गम्भीरतर हो गई। विजया भिक्षुणी का मुख आश्चर्य से फट गया। आगन्तुक नया व्यक्ति धरती पर बैठा-बैठा अब उँगलियों से कुछ रेखायें खींचने लगा। दास-दासियाँ पीछे हट गये। दंडधर सजग दिखाई देने लगे। वृद्ध संघस्थविर का सिर यह कह कर झुक गया।

कुछ देर एकदम सन्नाटा छाया रहा। फिर जैसे एक नवीन कौतूहल आया।

सम्राट् ने अत्यंत धैर्य से अपना बायाँ हाथ अपनी फलका पर टेक कर कहा : क्यों भन्ते !

संघस्थविर ने आगन्तुक की ओर देखा। आगन्तुक ने एकदम कहा : सम्राट् की जय। बंगराज शशांक नरेन्द्रगुप्त ने बुद्ध गया में बोधिद्रुम को जड़ से काट कर फेक दिया।

नरेन्द्रगुप्त ! वह जघन्य व्यक्ति ?

और बोधिद्रुम ! वह पवित्र वृक्ष जिसके नीचे स्वयं गौतम सिद्धार्थ को बोधी प्राप्त हुई। वह कट गया।

क्या यह सत्य है !

ऐसा लगा जैसे भयानक विस्फोट हुआ। उस विस्फोट ने सबके हृदय को छार-छार कर दिया। सम्राट् उठ खड़े हुए। जैसे इस झटके को सहने के लिये यह आवश्यक था। शताब्दियों से अपनी गौरव गाथा को कहने वाला पवित्र बोधिद्रुम काट दिया गया ! क्या आर्य्यवर्त्त मे अब वह ज्ञान का प्रतीक नष्ट हो गया ? मदान्ध शशाक ! क्या तेरी प्रतिहिंसा इतनी बर्बर थी कि तूने उस महिमा का ध्वंस कर दिया जिसके सामने सिर झुकाने संसार आता था।

राज्यश्री रोने लगी। नारी का हृदय यह भीषण आघात नहीं सह सका। वह सिसकने लगी। विजया ने सांत्वना देने को उसके कंधे पर हाथ रखा। राज्यश्री को जैसे विश्वास नहीं हुआ।

'क्या यह सत्य है ?' उसने आगन्तुक से पूछा ?

'देवी ! मैं बुद्ध गया से आ रहा हूँ', आगन्तुक ने उठ कर कहा।

सम्राट् बैठ गये। उनके मस्तक पर चिंता की रेखा थी।

'ब्राह्मणों का विद्वेष असह्य हो चला है', संघस्थविर ने कहा, 'वे अब सद्धर्म पर ऐसा प्रहार कर रहे हैं ? शशांक गुप्तवंश का वैष्णव मतानुयायी है। वह फिर से गौ, ब्राह्मण और देवताओं की प्रतिष्ठा स्थापित करना चाहता है। वह बर्बर है।'

'नितात', सम्राट् ने केवल एक शब्द कहा।

'तो सम्राट् !' संघस्थविर ने कहा, 'फिर ?'

सम्राट् चुप रहे।

राज्यश्री ने चिल्ला कर कहा: यह भयानक है भैय्या ! क्या इतिहास भविष्य में यह कहेगा कि हर्षवर्द्धन के सामने बोधिद्रुम कट गया और वह चुप बैठे रहे !

'देवी ?' हर्ष ने कहा।

'सत्य ही तो। शशांक नराधम है', राज्यश्री ने फूत्कार किया, 'वह मनुष्य नहीं है, वह राक्षस है।'

हर्षवर्द्धन ने धीरे से कहा : भगिनी! आतुर न हो। राजनीति खेल नहीं है। शत्रु कैसा भी हो सँभल कर उस पर आक्रमण करना चाहिये। पहले आर्य्यावर्त्त के समस्त भिक्षुसंघों को एकत्र करना चाहिये और तब निर्णय करना उचित होगा।

'तो क्या इतने दिन चुप रहना होगा ?'

'विजय क्या एक दिन में होती है ?'

'नहीं', राज्यश्री ने फिर फूत्कार किया, 'सद्धर्म्म पर आघात नहीं सम्राट्। यह मेरे जीवन की अंतिम दुखद घटना है। भगवान्! जो कुछ होता है मेरे साथ एकदम ऐसा अकस्मात् और ऐसा दारुण क्यों होता है ?' उसके स्वर की आर्द्रता और कंपन सुन कर सम्राट् आतुर हो उठे विजया आगे बढ़ आई।

'तो', सम्राट् ने कहा, 'मैं बुद्ध शासन का प्रचलन करूँगा राज्यश्री। शशांक ने दूसरा जघन्य अपराध किया है। पहला अपराध भी मैं भूला नहीं था। उसके लिये उपयुक्त अवसर ढूँढ़ रहा था। आज वह आ गया है। मैं उसे नष्ट कर दूँगा, गुप्त साम्राज्य का यह ध्वंसावशेष ऐसे मिटा दूँगा कि उसके खंडहरों पर कुत्ते, गीदड़ और उल्लू दिन में बोला करेंगे। अपमान का प्रत्युत्तर है, दंभी की मृत्यु।' '

बात समाप्त होने के पूर्व ही प्रासाद के ईशाण कोण में भेरी बजने लगी। उसका नाद हृदय के रक्त को धकधकाने लगा। बाहर फिर शिरस्त्राण और वर्मों के बजने का शब्द हुआ, जैसे शस्त्र खड़खड़ाये। भेरी बज चुकी तब मर्दल बजने लगा। उसका धकधकाता शब्द तो रक्त को खौलाने लगा।

सेना तत्पर होने लगी। सम्राट् के नाम का जय-जयकार होने

लगा। उस तुमुल शब्द को सुन कर प्रजा चौंक उठी। जगह-जगह लोग निकल-निकल कर झुंड बना कर बातें करने लगे।

नगर में संवाद फैल गया। बौद्धों की भीड़ जमा होने लगी। सहस्त्रों क्रुद्ध स्त्री-पुरुष चिल्लाने लगे : सम्राट् की जय। वे ही रक्षा करेंगे, वे ही रक्षा करेंगे। कान्यकुब्ज की ओर उत्तरा पथ की आँखें लगी हैं।

संध्या हो गई।

राज्यश्री ने सेना को जाते देखा और कहा : विजया!

'देवी।'

'भैय्या! कितने महान् कार्य के लिये जा रहे हैं।'

विजया ने देखा और कहा : महान् व्यक्ति महान् कार्य ही करते हैं।

राज्यश्री चुप हो गई।

जय-जयकार से अब नगर गूँजने लगा था। प्रजा भी रणोन्मत्त दिखाई दे रही थी। सेना के ऊपर फूल फेंके गये। ब्राह्मणों के दल ने सम्राट् के संमुख अपनी स्वामिभक्ति को प्रगट किया कि यह शशांक का अनाचार है। सम्राट् ने उन्हे अभय दिया।

सेना का अंतिम दल आ पहुँचा।

भाण्डी ने कहा : सम्राट् प्रस्थान करें।

सम्राट् ने घोड़ा बढ़ाया।

महाबलाधिकृत भाण्डी ने श्वेत तुरंग आगे करके कहा : सम्राट् आगे न चलें।

'क्यों?' सम्राट् ने पूछा।

'शत्रु छद्म वेश में होंगे।'

'वर्द्धन के सामने?' उन्होंने आँखें तरेर कर कहा और घोड़ा फिर आगे बढ़ाया।

सम्राट् चले गये। उनके पीछे असंख्य चमचमाते शिरस्त्राण पहने

योद्धा और अश्वारोही चले। देखते-देखते उनके पाँवों से उठी धूलि ही रह गई।

राज्यश्री खड़ी रही।

'चलो देवी', विजया ने कहा।

राज्यश्री नहीं बोली।

'देवी ! सम्राट् विजयी होंगे', विजया ने फिर कहा।

राज्यश्री देखती रही। उसके मन मे आग जल रही थी। वह लौट कर आई और बुद्ध प्रतिमा के संमुख बैठ कर रो पड़ी।

क्या मनुष्य अब ज्ञान का ऐसा सर्वनाश करेगा ? और उसे याद आया—संघमित्र जिसने सब कुछ त्याग कर अपने को तन, मन, धन से बुद्ध शासन में लगा दिया था।

'भगवान्', राज्यश्री ने कहा, 'सम्राट् को बल दो।'

बुद्ध प्रतिमा शांत थी। उसमें अब भी कोई विकार नहीं था। राज्यश्री को लगा जैसे कोई लोहे के हथौड़े से प्रतिमा पर आघात कर रहा था।

वह चिल्ला उठी।

३६

सम्राट् के जाने के उपरान्त राज्यश्री विकल हो उठी। उसे किसी भी काम मे अब रुचि नहीं रही। वही दान, वही अध्ययन, वही नीरवता। जैसे सब कुछ अब उसे उबाने लगा। शशांक के प्रति घृणा ने उसे जो उत्तेजना दी। उसने उसे एक नया क्षोभ दे दिया। वह अब कुछ नयापन चाहती थी, जिससे जीवन में एक प्रकार का परिवर्तन आये। वह इस विषय पर सोचती रही। कई दिन ऐसे ही बीत गये।

उसने विजया से कहा : मै नालंद जाऊँगी।

विजया ने सुना। देवी के मुख की ओर देखा। राज्यश्री के मुख पर बालक के हठ के से चिह्न विद्यमान थे।

'क्यों देवी?' उसने पूछा।

'ऐसे ही', राज्यश्री ने कहा।

विजया नहीं समझी।

'तू भी चल', राज्यश्री ने कहा।

विजया सिहर उठी। राज्यश्री ने देख लिया। कहा: क्यों क्या बात है?

विजया नालंद से डरती थी। फिर भी कहा: कुछ नहीं। चलूँगी।

'तो फिर प्रबन्ध कर।'

'करूँगी।'

विजया जानती थी नालंद इस समय तान्त्रिकों का केन्द्र है। कहीं ऐसा न हो कि देवी को उस तंत्र साधना का ज्ञान हो जाये और उनके ऊपर उल्टा प्रभाव पड़े।

पर कोई चारा भी न था। वह प्रबन्ध में लग गई।

एक गुल्म के साथ वे लोग चल दिये। राज्यश्री और विजया एक रथ पर बैठीं।

'मुहूर्त्त तो शुभ है', विजया ने कहा।

'भगवान् रक्षक हैं,' राज्यश्री ने आश्वासन दिया।

सम्राट् हर्षवर्द्धन गौड़ पहुँच चुके थे। उनकी सेना के आगमन का समाचार सुन कर राह के राजा और अधिपति उनके चरणों पर भेंट ला ला रखते और सम्राट् के उन्हें स्पर्श कर लेने पर वे कृतार्थ होकर स्वामिभक्ति की शपथ खाते।

सेना वर्षाऋतु के जलप्लावन की भाँति बढ़ चली। जहाँ आवश्यकता होती वहाँ आतंक भी दिखाया जाता। सब कुछ हुआ परन्तु मुख्य बात पूरी नहीं हुई। नरेन्द्रगुप्त नहीं मिला। उसने जब सुना कि सम्राट्

हर्षवर्द्धन इतनी विशाल सेना लेकर आ रहे हैं, वह अपनी सेना लेकर कहीं जङ्गलों में भाग गया। बंग देश में स्थान-स्थान पर नदियाँ थीं, छोटे-छोटे ताल-तालाब थे, उनमें बहुत दिन रहना व्यर्थ ही था, क्योंकि उसके निवास का पता भी नहीं था।

सम्राट् लौटने की सोच रहे थे।

'महाबलाधिकृत भाण्डी ने कहा : सम्राट्! एक भाग सेना का यहीं छोड़ कर चला जाये तो?

दंडधर ने सूचना दी : सम्राट्! एक चीनी भिक्षु उपस्थित है।

'कौन है?' भाण्डी ने कहा, 'पूछा?'

'देव, वह बहुत दूर से आया लगता है।'

'आने दो', सम्राट् ने कहा।

एक दंडधर के साथ कुछ क्षण बाद एक चीनी भिक्षु ने प्रवेश किया।

चीनी भिक्षु को देख कर सम्राट् आदर से उठ खड़े हुए। उन्होंने भिक्षु को प्रणाम किया। भिक्षु ने गद्गद होकर शुद्ध संस्कृत उच्चारण करके समाट को आशीर्वाद दिया। सम्राट् ने उसे आसन दिखा कर कहा : स्वागतं! आगम्यताम्! इन्द आसनम्।

भिक्षु बैठ गया।

'मेरा नाम युआन-च्वाग है सम्राट्', भिक्षु ने कहा, 'और मैं आपका यश सुन कर आपके दर्शनों की अभिलाषा से उपस्थित हुआ हूँ।' एक तो चीनी स्वयं नम्रता के प्रतीक, दूसरे वह भिक्षु। सम्राट बातें करने लगे। चीनी भिक्षु भी उत्तर देता रहा। दो एक दर्शन शास्त्र की भी बात की। चीनी पंडित सहज ही उत्तर दे गया जैसे यह उसकी दैनिक बातचीत का विषय है। उसके उद्भट पाडित्य से सम्राट् चकित रह गये।

'भिक्षुप्रवर!' सम्राट् ने कहा, 'आपसे मिल कर अत्यन्त हर्ष हुआ। कभी-कभी ही ऐसा भाग्य होता है।'

उन्होंने निमंत्रण दिया : कान्यकुब्ज पधारेंगे न ?

'अवश्य,' युआन-च्वाग ने कहा। उसका शीश मुन्डित था। दाढी मूँछ भी साफ थीं। उसकी गालों की हड्डी उठी हुई थी, आँखें छोटी थीं। वह भिक्षुवस्त्र पहने था। सम्राट् मुस्कराये।

युआन-च्वाग प्रसन्न-सा दिखाई दिया।

उसके जाने पर सम्राट् ने कहा : असाधारण व्यक्तित्व है।

भाण्डी ने कहा : पंडित तो है।

'बहुत यात्रा करके आया है।'

भाण्डी ने सिर हिलाया। फिर कहा : सम्राट्! विलम्ब हो रहा है।

सम्राट् सेना देखने चले गये।

दूसरे दिन भाण्डी ने कहा : देव ! आज्ञा दें।

'हाँ, अब यहाँ रहना व्यर्थ लगता है। वर्षाकाल के बाद आना ठीक होगा। शशांक के पास नौकाएँ होंगी। हम नौसेना से युद्ध कैसे करेंगे ?'

सेना चल पड़ी। सम्राट् का हृदय व्यथित-सा था। जिस काम से आये थे, वह नहीं हुआ। दूसरी बार शशांक नरेन्द्रगुप्त हाथ में आने की बजाय साफ निकल गया। तो क्या इतनी शक्ति इतना बल व्यर्थ है ! उनका शत्रु तो अभी भी मुक्त है और अपने को शासक ही कहता है। वे सोचते रहे।

एक रथ के पीछे कुछ अश्वारोही आ रहे थे। पहियों की गड़गड़ाहट सुनाई दे रही थी।

सारथि ने पुकारा : बाकी रथ कहाँ हैं ?

'पीछे रह गये हैं', कोई चिल्लाया।

'आ जाने दो। बन प्रांतर है।'

'कोई भय नहीं।'

रथ में राज्यश्री थीं। पूछा : विजया ! पूछो तो अब हम कहाँ हैं ?

'देवी वन मे हैं।'

'सैनिक छूट गये हैं?'

घोड़े दौड़ते हुए पास आ गये थे।

'नहीं देवी', विजया ने कहा।

'आ तो गये?' राज्यश्री ने कहा।

'हाँ देवी,' अभी विजया कह कर चुप भी नहीं हुई थी कि पास ही कहीं एकाएक घंटे बजने का शब्द सुनाई दिया। उस एकांत वन की वृक्षों-लताओं की उलझन मे सघनता में, यह शब्द सुन कर राज्यश्री को बड़ा विस्मय हुआ। यहाँ आखिर कौन है?

राज्यश्री ने कहा : विजया!

'देवी।'

'यह क्या है?'

रथ धीमा हो गया था। सैनिक अब सतर्क-से चलते दिखाई दे रहे थे। भिक्षुणी विजया कुछ नहीं कह सकी।

राज्यश्री ने फिर पूछा : तुझे नहीं मालूम?

'जानती तो हूँ।'

'तो कहती क्यों नहीं?'

'देवी यह कापालिको का स्थान है।'

'आज मैं इनकी साधना देखूँगी।'

विजया चौंकी।

'देवी,' उसके मुख से निकला।

'क्यों?'

'देवी! वह स्थान ठीक नहीं है।'

राज्यश्री नहीं समझी। पूछा : क्या बात है?

'वहाँ नरबलि होती है।'

'नरबलि !' राज्यश्री को झटका लगा। कहा : यह तो अत्यंत जघन्य कार्य है।

'देवी अपना-अपना धर्म है।'

'यह भी धर्म है ?'

वन के भीतरी भाग मे एक मंदिर बना हुआ था। मंदिर क्या था, दो प्रकोष्ठ थे। वह चारों ओर घने पेड़ों मे छिपा था। एक इमली का विशाल वृक्ष था। राज्यश्री ने गौल्मिक को इंगित किया। वह समझ गया। तुरन्त सैनिक घोड़ों पर से उतर पड़े और उन्होंने उस स्थान को चारों ओर से घेर लिया।

राज्यश्री उतर गई। विजया भी। राज्यश्री आगे-आगे चली, विजया उसके पीछे-पीछे। दोनों अत्यंत सतर्कता से चल रही थीं।

'कहीं, देवी आपका आना', विजया ने कहा, 'उन्हें मालूम न पड़ जाये।'

'क्यों ?'

विजया उत्तर नहीं दे सकी। वे झाड़ी के पीछे पहुँच गईं। राज्यश्री ने झाड़ी में से झाँका। उसने देखा मंदिर में कुछ नहीं था। सम्भवतः बाईं ओर महाकाली की मूर्ति थी क्योंकि सब कुछ उसी को लक्ष्य करके हो रहा था। बाहरी प्रकोष्ठ में से दूसरे प्रकोष्ठ का भीतरी भाग दिख रहा था।

राज्यश्री का हृदय काँप गया। एक अद्भुत वीभत्सता सी छा रही थी।

एक कापालिक खड़ा था। उसके सिर पर जटाजूट थे। गले मे मुँडमाला थी। वह सिंहचर्म पहने था। उसका शरीर अत्यंत सुदृढ़ था। दाढ़ी और मूँछें बड़ी-बड़ी थीं। उसके नेत्र लाल थे और बाहर निकले हुए से थे। वह देखने में डरावना लगता था।

पत्थर काट कर ऊपर से फूल की भाँति बनाया गया था, उस फूल

में केवल दो दल थे। बीच में उसके इतनी जगह थी कि उस पर मनुष्य-ग्रीवा रखी जा सके। एक व्यक्ति बँधा हुआ था। वह चीनी प्रतीत होता था।

'क्या वह भिक्षु है?' राज्यश्री ने पूछा।

'कौन जाने!' विजया ने काँपते स्वर मे कहा।

'वह कौन है?'

एक स्त्री के शरीर पर कई जगह सिंदूर लगा था। वह भीतर से निकली थी। वह बिल्कुल नग्न थी किन्तु उसकी कटि पर इतनी मुंडमाला लटक रहीं थीं कि उन्होंने उसके कटि के नीचे वस्त्र का सा काम किया था। उसके गले मे भी नरमुंड की माला पड़ी थी। बाल खुले हुए थे। वह एक हाथ में मदिरापात्र और दूसरे में चषक लिये हुए थी। स्यात् पीकर निकली थी क्योंकि वह रक्तनेत्रा और विह्वल थी।

राज्यश्री काँप उठी।

कापालिक मंत्रोच्चारण करने लगा। फिर उसने कहा: भैरवी!

स्त्री हँसी। उसके बलिष्ठ शरीर में एक मस्ती-सी छा गई।

'क्या है वज्रघन्ट?'

'समय निकट आ रहा है,' कह कर कापालिक उठा और प्रकोष्ठ में लटके घंटे हिलाने लगा और घंटे फिर भयानक शब्द करने लगे। उस समय उसके सफेद दाँत चमक उठे, भृकुटियाँ खिंच गईं, वह एक अपूर्व शक्ति से स्फुरित-सा दिखाई पड़ने लगा। स्त्री उठी और पहले तो उसने दिगन्तों में शंखनाद भर दिया और फिर अग्नि की प्रदक्षिणा की और वह आरती करने लगी। उसकी उन्मत्त मुद्रा, उसका अंगचालन, उसका विभोर उल्लास, सब कुछ राज्यश्री के हृदय में एक जुगुप्सा-सा भरने लगे।

विजया के नेत्र फैल गये। राज्यश्री ने देखा। अब स्त्री और कापालिक ने एक दूसरे का हाथ पकड़ कर गम्भीर स्वर में कुछ

मन्त्रोच्चारण किया। फिर दोनों ने दो-दो चषक मदिरा पी। एक-एक टुकड़ा मास का खाया।

'भैरवी!' पुरुष ने घंटे बजाना रोक दिया!

'क्या है?' स्त्री ने लड़खड़ा कर पूछा।

'होम ज्वाला बुझ रही है।'

'आज्य डाल दो।' वह बैठ गई और हँसने लगी। उस समय मदविह्वल पुरुष ने स्त्री को भुजाओं में बाँध कर पुकारा : मै शिव हूँ, तू भैरवी है।

स्त्री अट्टहास कर उठी। कहा : शव दे। मुझे शव ला दे।

पुरुष हँसा और फिर उन्होंने वही भयानक रव फैलाने वाला शंख बजाया, और उन्मत्त वेग से स्त्री ने नाचते हुए घंटे बजाये। पुरुष ने स्त्री के मस्तक पर चिता भस्म लगा दी। स्त्री झूमने लगी। उसने कहा : ठहरो।

वह भीतर गई और कई आभूषण निकाल लाई। उसने वे सब आभूषण पहन लिये। पुरुष तब तक होम ज्वाला को प्रदीप्त कर चुका था। स्त्री उठ कर फिर मदिरा से चषक भरने लगी।

तभी कापालिक आगे बढा। उसके हाथों मे एक बड़ा परशु दिखाई देने लगा। उसे देख कर बँधा हुआ व्यक्ति काँपने लगा।

विजया ने कहा : चलो देवी!

राज्यश्री ने कहा : चुप रहो।

और उसने कुछ इंगित किया। सैनिक पास आने लगे। विजया आश्चर्य से देखने लगी। राज्यश्री ने देखा स्त्री अब घुटनों के बल बैठ कर बँधे हुए व्यक्ति के मस्तक पर सिंदूर लगा रही थी।

एकदम सैनिकों ने मंदिर घेर लिया। कापालिक ने कहा : भैरवी! प्रसाधन हो गया?

'हो गया। यज्ञकुण्ड में स्रुवा से आज्य डालो। बलि दो।'

कापालिक दो पग पीछे हटा और 'जय भैरवी' कह कर जो उसने परशु ऊपर उठाया, एक सैनिक ने कापालिक का हाथ पकड़ लिया। कापालिक सँभल भी नहीं पाया था कि कई सैनिकों ने उसे पकड़ लिया। स्त्री भय से चिल्लाने लगी।

राज्यश्री बाहर आ गई। उसे देख कर कापालिक क्रोध से चिल्लाया: कौन है तू अधमे?

राज्यश्री ने कहा: उसे खोल दो।

सैनिको ने चीनी भिक्षु को खोल दिया। वह अब डरता हुआ-सा उठ खड़ा हुआ। क्या वह सममुच मरा नहीं था, अभी उसके नेत्रों से यह अविश्वास नहीं जा सका था।

कापालिक ने कहा: नीच स्त्री! तूने भैरवी की साधना में व्याघात डाला है। वह तुझे कभी क्षमा नहीं करेगी।

'तुम शैव हो?' राज्यश्री ने पूछा।

'नहीं, हम बौद्ध हैं', कापालिक ने कहा, 'तू कौन है?'

राज्यश्री चुप रही। उसने अपना परिचय नहीं दिया। उसका सिर घूम गया। क्या बौद्ध कापालिक भी होते हैं। उसने झाँक कर देखा, मंदिर में और भी खाने के लिये माँस रखा था। कुछ चने रखे थे।

राज्यश्री ने इंगित किया। सैनिकों ने परशु छीन कर रथ में रख लिया। गौल्मिक ने निकट आकर पूछा: देवी! कापालिक को क्या दण्ड दिया जाये?

'कुछ नहीं', राज्यश्री ने कहा।

'देवी! वह हत्या कर रहा था।'

'नहीं, वह धर्म के नाम पर कर रहा था। वह अंधविश्वास का दास था।'

कापालिक अब साधनाक्षीण होने पर गालियाँ दे रहा था और

स्त्री रो रही थी। अब शायद उसे ध्यान आ गया था कि वह नग्न थी। वह भीतर चली गई थी।

पथ पर आकर राज्यश्री ने कहा : तुम कौन हो भिक्षु!

'देवी! मै एक चीनी भिक्षु हूँ।'

'तो तुम यहाँ कैसे आ गये?'

'देवी! कापालिक मुझे बलि के उपयुक्त समझ कर पकड़ लाया।'

राज्यश्री सोचती रही। कहा : तुम्हारा नाम क्या है?

'युआन-च्वाग देवी', भिक्षु ने झुक कर कहा। राज्यश्री यह नाम सुन चुकी थी। चौंक उठी। भिक्षु ने गद्‌गद्‌ होकर कहा : तुम मेरी माता हो। तुमने मुझे प्राण दान दिया है।

३७

युआन-च्वाग चीनी बौद्ध पण्डित था। बाल्यावस्था में वह अपने भाई को भिक्षु होते देख चुका था। वह भी भिक्षु हो गया। उस समय चीन में थाङ् वंश शासन कर रहा था। अनेक स्थानों में विद्या-ध्ययन करने के उपरांत वह चङ्गन में रहने लगा। वहीं उसने अपने साथी एकत्र किये और सम्राट् क्यूसुआ से भारत यात्रा की प्रार्थना को पूर्ण करने की याचना की। प्रार्थना अस्वीकार कर दी गई किंतु वह चौबीस वर्ष की अवस्था मे भारत चल पड़ा। उसके साथ केवल दो व्यक्ति और थे। लाङ्चू में व्यापारियों ने उन्हें अत्यन्त सहायता दी। गोबी की भयानक मरुभूमि पार करते समय वह अकेला रह गया। गर्मी मे वहाँ अत्यन्त गर्मी और शीतकाल में भयानक ठंड पड़ती थी। हवा के झोंकों पर धूल एक स्थान से उड़ कर दूसरे स्थान पर बैठ जाती और पूरे सार्थ को दबा देती। असंख्य हड्डियाँ दूर से ही दिखाई देतीं। उस भीषण मरुभूमि को आज तक किसी ने भी पार

नहीं किया था। उसके एक किनारे से चल कर ही सार्थ जाते थे। उसके दोनों साथी यह कष्ट असहनीय समझ कर लौट गये। हामी पहुँचने पर वहाँ के शासक की आज्ञा से कुछ दिन धर्मोपदेश करके वह काशार राज्य के स्वागत सम्मान प्राप्त करके पठान देश में होता हुआ, समरकंद देख कर, वत्तुतीर पर पहुँचा। प्राचीन काल में उसे महानदी कहते थे। यहाँ एक भारत यात्रा कर चुकने वाला साथी मिला, जिसके साथ युआन-च्वांग बलख चला गया। बौद्धमठ और स्तूप देख कर उसे प्रसन्नता हुई। यात्रा की अनेक कठिनाइयाँ झेल कर वह हिंदूकुश पर्वत के निकटस्थ बामियग्न नगर में विश्राम करके, नगरहार होता हुआ पुरुषपुर आया। फिर सिंधु पार करके तक्षशिला गया जहाँ अब खंडहर हो चले थे। वहाँ से काश्मीर जाकर दो वर्ष एक बिहार में व्यतीत करके मथुरा और स्थाण्वीश्वर होता हुआ वह गौड से लौट कर कान्यकुब्ज जा पहुँचा। आज उसका आगमन कान्यकुब्ज में एक संदेश बन कर फैल गया था।

सामंत अर्जुन जब प्रातःकाल उठा उसकी अर्द्धनग्न दासी ने उसके सामने सोने की झारी में सुगंधित जल प्रस्तुत किया। सामत मुख धोने लगा। उसने दूसरा पात्र नीचे रख दिया।

'महाराज', दासी ने कहा, 'नगर में बड़ा कोलाहल है।'

'क्यों?' उसने मुँह पोछते हुए पूछा।

'भिक्षु। चीनी भिक्षु आया है न?'

सामंत अर्जुन का जी प्रातः ही खट्टा हो गया। यह भिक्षु क्या हुए, सारा धन खाये जा रहे हैं।

'मुंडी', उसने घृणा से कहा।

दासी चली गई। सामंत भी पर्यंक से उठ पड़ा। और अपने दिन के कार्यों में लग गया।

सभा का आयोजन होने लगा। विशालमञ्च बनाया गया था।

उस पर बहुमूल्य कालीन बिछाये गये थे। नीचे असंख्य प्रजा के बैठने का प्रबंध था। स्त्रियों को अलग बैठने की जगह थी। बालकों के रोने पर वे सहज ही आसानी से उठ कर बाहर जा सकती थीं।

धर्म महोत्सव का ढिंढोरा पीटा जाने लगा।

युआन-च्वांग आज विशेष आयुक्तों के साथ नगर की शोभा देखने निकला था। वह जिधर देखता उधर ही उसे कुछ नयापन दिखाई देता था। विस्तृत पथ पक्के थे। ठौर-ठौर पर सुन्दर कुएँ बने हुए थे।

जब वह बाजार पहुँचा और उसने वहाँ की दूकानें देखीं, देखी उनमें संसार भर की सामग्रियाँ तो उसकी उँगली दाँतों के बीच में जाकर दब गई।

नागरिक रेशमी वस्त्र पहने निकल आये थे। उनके हाथों में बहु-मूल्य हीरेजड़ी अंगूठियाँ थीं। कानों मे सुवर्ण कुडल थे और वक्षस्थल पर पानीदार मोतियों की मालायें हिल रही थीं। मस्तक पर मतानुसार टीका लगा हुआ था।

युआन-च्वांग नगर की शोभा देख कर दंग रह गया। कितना सुन्दर था वह सब। वह पृथ्वी के इतने बड़े भाग में जन्म लेकर भी, उसके समान ही फैले भाग में यात्रा करके भी, जो कहीं न देख सका था, वह गौरव उसने आकर यहीं देखा।

बीस राज्यों के सामंतो और राजाओं के आडम्बर से कान्यकुब्ज झुक सा गया। वे विराट् अट्टालिकायें, वे चिंघारते लौह शृङ्खलाओं में झूमते हाथी, वे हिनहिनाते घोड़े, वे हाथी दाँत की पालकियाँ और सैनिकों के गर्जन से विक्षुब्ध पथ देख कर वह विस्मित हो गया।

३००० महायानी और हीनयानी बौद्ध, नालद के १००० विद्वान और ३००० ब्राह्मण और निग्रंथ उपस्थित थे। सभा में इस विशाल

अनेक वाद्यों की ध्वनि जब गूँज रही थी, स्त्रियों के मंगल गीत जब उन्हें और भी वर्धित कर रहे थे, जब सैनिकों और प्रजा के जय-जयकार आकाश को भेद रहे थे, चारों ओर एक रव बँध गया था। उस जय-जयकार का, वैसे ही कहीं अंत नहीं दिखता था जैसे लम्बे जुलूस का। सम्राट् आज सिर पर मुकुट धारण नहीं किये थे। स्त्रियों की भीड़ के आगे चीवरधारिणी राज्यश्री नंगे पाँव चल रही थी। वे स्त्रियाँ त्रिपिटक के कुछ श्लोक गुनगुनाती जा रही थीं। जब जुलूस बाजार में पहुँचा, छतों पर से स्त्रियों ने फूल फेंकने प्रारम्भ किया। थोड़ी ही देर में पथ फूलों से ढँक गये। एक महान् स्फूर्ति थी और बीच-बीच में जय जयकार की प्रबुद्ध गर्जना जब रुकती तब किसी स्थल पर बाँसुरी बजती और नर्त्तक रास क्रीड़ा के से मंडल बना कर लकडियाँ बजाते, तब उसका सम्मोहन-सा छा जाता और फिर स्त्रियाँ अपने झंकारते वलयों को आपस मे टकरातीं, तालियाँ बजातीं और उनका समवेत स्वर जब गूँजता तब हाथी पर मर्दल बजता और फिर तूर्य निनाद होता और फिर उच्च स्वर से जय जयकार होता।

उस महान् उत्साह में सम्राट् और राज्यश्री अपने आपको भूल गये। राज्यश्री पथ पर दंडवत करने लगी, जिसको देख कर सम्राट् ने भी दंडवत की और फिर तो लक्षावधी प्रजा दंडवत करने लगी। आज बुद्ध प्रतिमा का उत्सव था।

युआन-च्वाग ने देखा और दोनों हाथ उठा कर आनन्द से जयजयकार किया।

धीरे-धीरे जुलूस समाप्त हो गया। अपनी-अपनी टोलियाँ बना कर लोग बिखर गये।

राज्यश्री ने आकर स्नान किया और फिर प्रबन्ध के लिये आ गई। वह सुवर्ण पीठिका पर बैठ गई। उसके आदेशों के लिये सब फिर

चंचल हो गये। परमभट्टारिका का सस्मित मुख प्रसिद्ध था। राज्यश्री किसी को भी कठोर वचन नहीं कहती थी।

'देवी,' कोई कहता, 'संघस्थविर का आसन कहाँ लगावें?'

'सम्राट् के निकट।'

भोज का आयोजन होने लगा। पहले उच्च कुल के लोग आये। उनके साथ बौद्ध श्रमण। एक ओर बौद्ध श्रमणों को बिठाया गया, दूसरी ओर ब्राह्मणों को। स्त्रियों का प्रबन्ध अलग था।

राज्यश्री से विजया ने कहा: देवी! कुछ खा लें।

'अभी तो लोग खा रहे हैं,' राज्यश्री ने चौक कर कहा।

'देवी, फिर मध्यान्ह हो जायेगा।'

'आज मै प्रायश्चित कर लूँगी भिक्षुणी।'

'यह क्या बात रही?'

'तो और मैं करूँ भी क्या? पहले कैसे अन्न ग्रहण कर लूँ?'

विजया चली गई। राज्यश्री वहीं बैठी रही। दासियाँ आती-जातीं उसके आदेशों को इधर-उधर पहुचाती। और भी लोग आते तो राज्यश्री उन्हें धैर्य से समझाती। उद्भट योद्धा और सेनापति युद्ध पर वार्त्तालाप करते हुए ही बुद्ध प्रतिमा के उत्सव में भोजन करने आये थे। उन्हे केवल एक उत्सव ही तो था।

फिर अगले दिवस माधव और युआन-च्वांग का विवाद प्रारम्भ हुआ। पंडितों में हूह छा गई।

सम्राट और राज्यश्री यथास्थान बैठ गये।

प्रचण्ड शास्त्रार्थ था। दोनों अपने-अपने पक्ष को खूब जानते थे।

युआन-च्वांग बौद्ध था। माधव ब्राह्मण। उनका विवाद आज साधारण विवाद नही था। यह उत्तरापथ के भाग्य का निर्णय करने वाला शास्त्रार्थ था।

पन्द्रह दिन बीत गये। जो महापण्डित उनके तर्कों की परीक्षा करने

बैठे थे, वे निर्णायक भी घबरा उठे। कभी तो लगता कि माधव मार गया। परन्तु जब वह समाप्त करता और सभा का कोलाहल भीषण हो जाता, तब सम्राट उठ कर शांति प्रार्थना करते और फिर चीनी भिक्षु युआन-च्वांग अपनी बात कहता। उसका स्वर जैसे-जैसे उठता जाता माधव का प्रभाव भी क्रमशः मिटता चला जाता, और फिर लोग समझते कि अब तो चीनी पंडित ही विजयी होकर रहेगा।

राज्यश्री चकित थी। मनुष्य में इतनी स्मरण शक्ति और इतना ज्ञान कहाँ से आ जाता है। जिस पर यह पंडित इतने साधन भी नहीं पाते। हमारी भाँति इन्हें सकल साधन कहाँ प्राप्त हैं? चीनी भिक्षु तो इतनी यात्रा करके आया है। कैसे यह लोग इतना सब कुछ याद रख लेने में समर्थ हो जाते हैं।

दूसरे दिन प्रातःकाल का समय था।

सामंत अर्जुन को देख कर दासी हँसी।

'क्यों?' सामंत ने पूछा, 'क्या हुआ?'

'कुछ नहीं,' दासी फिर हँसी।

'क्या बात क्या है?' उसने पूछा।

'बात? बात तो मुंडी की विजय की है।'

सामंत क्रोध से भर गया। उसने कहा: मुंडी कैसे जीत गया?

'पन्द्रह दिन तो हो गये?'

'तो क्या हुआ? माधव जीतेगा।'

'देखो,' दासी फिर मुस्कराई।

'मै तेरी हत्या कर दूँगा,' सामंत ने चिढ़ कर कहा।

'और स्त्री हत्या भी क्या कठिन है?' दासी दाँत निकाल कर चली गई।

ब्राह्मण असंतुष्ट थे ही। सामंत ने दो एक चुपचाप बुलवाये और कहा: कब तक?

ब्राह्मण समझ गये। कहा : उसे राजा का आश्रय है।

'तब ?'

'कोई राह नहीं है।'

'तो समुद्र में डूब जाइये।'

'वह तो भगवान की ही इच्छा है सामंत, तुम क्या बता रहे हो ?'

सांझ हो गई थी। एक व्यक्ति सामंत के प्रासाद के द्वार पर खड़ा था।

सामंत ने उसके कंधे पर हाथ रख कर कहा : भयभीत तो नहीं हो ?

'नहीं,' उसने कहा और चला गया।

रात हो गई थी।

एक व्यक्ति धीरे-धीरे चल रहा था। उसका सारा शरीर काले कपड़ों में ढँका था। वह कुछ देर इधर-उधर देख कर चीनी भिक्षु के आगार की ओर चला और फिर एक स्तंभ के पीछे छिप कर राह देखने लगा। उसी समय एक दंडधर ने उसे पकड़ लिया। उस व्यक्ति ने छूट कर भागने का प्रयत्न किया किन्तु दंडधर ने नहीं छोड़ा।

कोलाहल मचने लगा। अनेक दंडधर आ गये। समाचार फैल गया कि चीनी पंडित के आगार के पास एक आदमी हाथ में नंगी तलवार लिये पकड़ा गया। वह उनकी हत्या करने आया था।

सम्राट ने सुना तो क्रोध से दाँत भींच लिये। वे तुरन्त उठ कर राज्यश्री के पास गये। कहा : तुमने सुना ?

'सुना तो।'

'क्या किया जाये ? मैं दण्ड दूँगा।'

राज्यश्री ने सिर हिला कर सहमति प्रगट की।

सम्राट ने फिर फूत्कार किया : यदि पंडित की हत्या हो जाती तो हम कहीं मुँह दिखाने के योग्य नहीं रहते।

राज्यश्री ने कहा : वह सब की रक्षा करते हैं।

सम्राट चले गये। राज्यश्री ने बुद्ध प्रतिमा को सिर झुकाया।

सम्राट ने घोषणा करा दी कि 'चीनी पंडित पर यदि किसी ने उंगली भी उठाई तो उसका वध कर दिया जायेगा। वह ज्ञान का भंडार है, उस पर गर्व करना चाहिये।' लोगों ने सुना और प्रातःकाल उन्होंने पहले सैनिकों का एक दल और उस व्यक्ति का शव उनके भालों पर टँगा देखा जिसके गले में एक लोहे की बड़ी शृङ्खला पड़ी थी। वह हत्यारा था।

ब्राह्मणों में विक्षोभ भर गया।

सामंत अर्जुन के सामने दासी ने मदिरा पात्र लाकर रखा पर उसने देखा भी नहीं। तब उसने अपना नूपुर बजाया। सामंत फिर भी चुप रहा।

शास्त्रार्थ का समाचार दूर-दूर तक फैल गया था। आज फिर चीनी पण्डित युआन-च्वाग और माधव पण्डित ने एक दूसरे को नमस्कार किया और शास्त्रार्थ के लिये बैठ गये।

पहले चीनी पंडित बोलता रहा। उसके बाद निर्णायकों ने माधव को बोलने को इंगित किया। माधव पंडित संभल कर बैठ गया और बोलने लगा। धीरे-धीरे मध्याह्न हो चला।

माधव पंडित धारा प्रवाह बोलता चला जा रहा था। उसके मुख से तर्क पर तर्क निकल रहा था। लोगों के मुख से साधु साधु निकल जाता। माधव पंडित के भव्य मुख पर प्रकाण्ड गरिमा थी। वह गंभीर स्वर हठात् रुक गया।

एकाएक माधव के प्राण पखेरू उड़ गये। वृद्ध का हृदय एकदम बंद हो गया। वह क्षण भर झूमा और फिर वहीं बैठे से लेट गया। पहले तो लोग समझे कि वह मूर्छित हो गया है, परन्तु फिर जब उन पर प्रगट हुआ कि उसकी मृत्यु हो गई है तो ब्राह्मणों मे हाहाकार मच

गया। उन्हें ऐसा लगा जैसे प्रलय आ गया। एक वृद्ध सिर धुन कर पुकार उठा : धर्म ध्वग टूट गया। धर्म ध्वज खंडित हो गया।

सब चौंक उठे। अब क्या हो? ऐसा कोलाहल होने लगा जैसे पानी का कोई बांध टूट गया। किंतु तभी माधवपत्नी ने आकर पति के आसन पर बैठ कर कहा : आतुर न होवे भिक्षु। शास्त्रार्थ आगे बढ़ाओ।

युआन-च्वांग खड़ा हो गया। उसने कहा : मै हार गया देवी। क्षमा करो।

'नहीं,' माधवपत्नी ने कहा, 'अधर्म न करो।'

'अधर्म?' चीनी भिक्षु ने कहा, 'मैने संसार के असंख्य स्त्री-पुरुष देखे हैं। किंतु ऐसा कोई देश नहीं देखा। यह अधर्म नहीं देवी। धर्म क्या है? मनुष्य का चरम कर्त्तव्य को पहचानना मनुष्य का सर्वोत्कृष्ट धर्म है। मुझे क्षमा करो।' और भिक्षु ने सिर झुका कर कहा : देवी! मै पराजित हुआ। पति की मृत्यु को मृत्यु न समझ कर वज्र हृदय करके जो तुमने आज जीवन की अदम्य शक्ति का जयगान किया है, कौन सा है वह ज्ञान जो इसके सामने ठहर सके? मेरे पास आत्मसमर्पण है और कुछ नहीं।

कहते-कहते चीनी भिक्षु के नेत्र गीले हो गये।

महोत्सव समाप्त हो गया। तब माधवपत्नी रोई और अपने पति के शव के पास गई। युआन-च्वांग का सौहार्द्र देख कर उसके प्रति ब्राह्मणों का विद्वेष हट गया। सम्राट् भी शवयात्रा में आ गये। माधव पंडित की अंत्येष्टिक्रिया राजसी ठाठ से हुई। साम्राज्य में उसका नाम फैल गया। फिर माधव पंडित के विषय में ऐसे ऐसे संवाद और किंवदंतियाँ प्रचलित हो गईं कि सहसा उन पर विश्वास करना कठिन था। राज्यश्री की श्रद्धा चीनी पण्डित पर बढ़ गई।

अठारह दिन बीत चुके थे। महोत्सव का अन्तिम दिन आ गया था।

राज्यश्री ने कहा : विजया ! अब तक ऐसा दृश्य देखा था ?

'नहीं देवी !' विजया ने कहा, 'कभी नहीं।'

प्रातःकाल सम्राट् ने राज्यश्री से कहा : देवी ! आज जीवन सुफल हो गया। कितनी गरिमा, कितना पाण्डित्य ! मनुष्य का विकास बड़ा अद्भुत होता है।

जब वे युआन-च्वांग से मिले तो कहा : भिक्षु श्रेष्ठ ! कान्य-कुब्ज देखा ?

'देखा सम्राट् ! सुखावती है।'

'कहाँ भिक्षु श्रेष्ठ ! इसमें तो पंडितों का गर्व है।'

राज्यश्री ने मुस्करा कर कहा : और मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ धन ज्ञान ही तो है न ?

युआन-च्वांग ने कहा : परमभट्टारिका ! मैंने संसार के अनेक देश देखे हैं, किंतु कहीं राजकुल में यह महानता नहीं देखी।

'अत्युक्ति न करें भिक्षु श्रेष्ठ !'

'नहीं भिक्षुणी,' युआन-च्वांग ने कहा, 'मैं चाटुकार नहीं हूँ। राजा या तो खड्ग उठाते हैं, या पंडित होते हैं। दोनों बातें यहीं हैं। और फिर साधन भी !'

राज्यश्री प्रसन्न हो गई। उसने कहा : साधना ! भिक्षु श्रेष्ठ ! विवशता भी क्या साधना है ?

भिक्षु हँसा। कहा : विनम्रता की पराकाष्ठा है।

भिक्षु चला गया।

राज्यश्री थोड़ी देर इधर-उधर घूमती रही। और फिर वह शांत मन से जाकर बुद्ध प्रतिमा के सम्मुख खड़ी हुई। आज कोई बात मन में नहीं थी। निश्छल प्रतिमा, निस्तरंग हृदय। आत्मा मे जैसे दीपक

जल उठा और उसका आलोक कांपने लगा। वह हृदय के समस्त अंधकार को दूर कर देगा। नया प्रकाश, नया जीवन, राज्यश्री को लगा जो सब बहुत उलझा हुआ था, वह सब बहुत सुलझ गया है।

महाकवि बाणभट्ट जब प्रासाद में आया तब कंचुक से भेंट हुई। पूछा। उसने कहा : भीतर जायें।

सम्राट् हर्षवर्द्धन अत्यन्त प्रसन्न थे।

'महाकवि ?' सम्राट् ने कहा, 'क्या कहते हो ? कैसा रहा ?'

'अद्भुत ?'

'महाकवि !'

'महाराज !'

दोनों गद्गद्। कोई कुछ नहीं कह सका।

किंतु सामन्त अर्जुन ने क्रोध से अपनी दासी से कहा : वह पाखण्डी भिक्षु तो जीत ही गया।

दासी ने अपनी-अपनी नग्नजंघा को ढंकते हुए कहा : पराजित हो गये महाराज।

सामन्त ने फूत्कार किया : ऊँह।

दासी तरला ने चयनिका से कहा : देवी !

'क्या है री ? नहीं मागंधी क्या करेगी ?'

'मै वह नहीं कहती थी।'

'तो ?'

'सम्राट् से आप स्पष्ट करें ? उत्तराधिकारी कौन होगा ?'

चयनिका ने कहा : मैं कहूँ कैसे ?

'तो फिर कौन कहेगा ?'

'कोई नहीं।'

'आपको यह शोभा देता है ?'

'मैं नहीं जानती।'

'सामन्त अर्जुन को देखा है ? वह 'बड़ा कुटिल है देवी। आपकी दासी हूँ, आप माता हैं, कुछ नहीं छिपाऊँगी।'

'किंतु राज्यश्री तो सम्राट् को भिक्षु बनाये हुये है', परमभट्टारिका चयनिका ने उदास स्वर से कहा। सब कुछ था, किंतु भविष्य में क्या होने वाला है, राजवंश का क्या होगा, यही सब चिंता उनको व्यग्र करने लगी। सामन्त अर्जुन की धूर्तता से वे स्वयं परिचित थीं।

वह उठी और राज्यश्री के पास गई।

'भाभी !' राज्यश्री ने कहा, 'तुम तो इधर दिखाई भी दीं तो बात नहीं हो सकी।'

'मेरी नन्द तो पंडिता है। उसे मुझसे बात करने का अवकाश ही कहाँ था ?'

'यह क्या कहती हो भाभी ?'

'झूठ कहती हूँ ?'

दोनों हँस दीं। परमभट्टारिका चयनिका के मन में आया बात चला दे, किन्तु फिर जाने क्यों रुक गईं। राज्यश्री में अब परिवार का कुछ ऐसा नहीं था जो वह अब ममता की बात समझती। इधर-उधर की बातें होती रहीं। परन्तु मतलब की बात नहीं हुई।

तरला ने एक बार रहस्य भरी दृष्टि से चयनिका को देखा। चयनिका ने देखा और टाला। वह प्रसन्न थी कि राज्यश्री उससे इतना स्नेह करती थी। उसने हृदय की समस्त ममता से उसे भीतर ही भीतर आशीर्वाद दिया और फिर वह उठ खड़ी हुई।

३८

इस समय दक्षिण में पुलकेशिन द्वितीय की शक्ति ने अपनी भुजा फैला दी थी। उसकी अपार वाहिनी का यश दिगंतों मे व्याप्त हो चला

था। एक ही समय में दो टक्कर की शक्तियों का रहना एक भय की बात लगने लगी थी।

बहुत दिन से जो शांति छा रही थी उससे सेना के उच्च अधिकारी और सामंत ऊब गये थे। दक्षिण की अपार समृद्धि उन्हें ललचाने लगी थी। वे उस ओर ध्यान केन्द्रित कर रहे थे।

परमभट्टारक सम्राट हर्षवर्द्धन को अब दक्षिण की बातें सुनाई जाती थीं। दक्षिणापथ के विराट् मंदिर अत्यंत सुन्दर हैं। वहाँ देवदासियाँ अद्भुत नृत्य करती हैं। भरतनाट्यम जो भरतमुनि ने नन्दी से सीखा था, वहीं सर्वश्रेष्ठ होता है। उत्तरापथ के वीणावादकों पर शाही संगीत प्रणाली का प्रभाव पड़ गया है, दक्षिण में वैसा नहीं है और फिर कितना सुवर्ण है उधर ऋष्यमूक के उत्तर में?

'देव! आप खड्ग को भूल गये हैं,' महाबलाधिकृत भाण्डी ने कहा।

'हर्ष?' सम्राट ने कहा, 'खड्ग को भूल गया है?'

'सम्राट!' सेनापति स्कंदगुप्त ने कहा, 'दक्षिण!' फिर वह कह ही नहीं सका। 'सम्राट अशोक के बाद', उसने कुछ रुक कर धीरे-धीरे कहा, 'फिर नहीं, फिर नहीं।'

सम्राट समझ गये कि वह कहना क्या चाहता है। उसके बाद कोई सम्राट दक्षिण विजयी नहीं हुआ। स्कंदगुप्त ने ऐसे देखा जैसे वह गहरी चोट कर गया।

सम्राट हँसे। उन्होंने कहा: नहीं सेनापते! बीच में सम्राट समुद्रगुप्त ने पल्लवराज को पराजित किया था। काञ्चीपुर तक पताका फहराई थी। विष्णुगोप का जड़ाउ ध्वज लूटा था।

सेनापति स्कंदगुप्त सहम गया। सम्राट उठ खड़े हुए और टहलने लगे। दो बार उन्होंने अपने वक्ष को ठोंका, फिर अपने एक यवन

शिक्षक की भाँति उन्होंने अपनी जाँघों को बाहरी तरफ़ ठोंका। आवाज हुई।

परमभट्टारिका चयनिका ने व्यंग से कहा : तो सम्राट हर्षवर्द्धन गुप्त वंश मे तो नहीं हैं ? मामा के वंश का बहुत ध्यान है ?

सम्राट-आहत हुए। कहा : यह क्या कहती हो परमभट्टारिका ?

'कहती हूँ सम्राट भिक्षु हो जायें,' कह कर चयनिका चली गई।

दूसरे ही दिन से सेना मे जाग्रति फैल गई। सम्राट दक्षिण में पुलकेशिन द्वितीय के राज्य पर आक्रमण करेंगे यह संवाद फैल गया।

एक सैनिक ने दूसरे से कहा : तब तो फिर समय आ गया है ?

'सम्राट असल में तो सैनिक हैं।'

'किन्तु पुलकेशिन् बहुत सशक्त है।'

'निर्बल पर प्रहार ही क्या ?'

वे अपने अस्त्रों को माँजने लगे। नर्तकियाँ नाचने लगीं। उन्हें वो सेना के साथ यात्रा करनी पड़ती थी।

अब यह निश्चय होने को रह गया कि किस दिन प्रस्थान किया जाये।

राज्यश्री ने सुना तो कहा : क्यों ? यह आक्रमण क्यों ?

विजया ने कहा : सम्राट् को युद्ध किये बहुत दिन हो गये !

'तो यह भी क्या युद्ध करने का कोई कारण है ?'

'राजामहाराजा तो युद्ध किया ही करते हैं। यदि युद्ध ही न करें तो वे राजामहाराजा ही क्यों कहलायें।'

राज्यश्री संतुष्ट नहीं हुई।

मागंधी नामक दासी पुलकेशिन द्वितीय के यहाँ चली गई थी। गुप्त अनुचरों ने संवाद लाकर दिया था कि मागंधी सम्राट् पुलकेशिन की प्रिय दासी है।

महाबलाधिकृत भाण्डी ने कहा : वही तो नहीं ?

सामंत अर्जुन अरुणाश्व ने सिर हिलाया। जैसे वही।

'वहाँ है ?' स्कंदगुप्त ने शंका की।

सम्राट् ने सुन कर कहा : तो क्या है सेनापति ! वह स्त्री ही तो है।

'देव ! वह हमारे भेद देगी।'

'कितने भेद जानती थी वह ऐसे ?' सम्राट् ने मुड़ कर कहा।

'वह प्रासाद की दासी थी,' अर्जुन ने कहा।

सम्राट् ने एक बार घूर कर देखा। सामंत का सिर झुक गया। सम्राट चले गये। सामंत अर्जुन ने सेनापति स्कंदगुप्त से कहा : बड़ी सुन्दरी है वह। पुलकेशिन उसे क्यों त्याग देता ? वह तो भोगों से विरक्त नहीं है ?

स्कंदगुप्त ने उत्सुकता से देखा। फिर वह भी चला गया। महा-बलाधिकृत भाण्डी ने कहा : मागंधी नहीं सामंत, सामने आँधी आ गई है।

नर्मदा नदी के दोनों ओर दो विराट सेनाओं के शिविर आ गये और दोनों ओर से बचाव के प्रयत्न होने लगे। दूर से वे श्वेत शिविर ऐसे दिखाई देते थे जैसे बहुत से बड़े-बड़े बगुलों की पीठ दूर से चमक रही थी, जैसे वे कोई अतिविशालकाय बगुले थे। कभी कभी नदी के दोनों ओर जयगर्जन उठता और हवा पर नदी के ऊपर घहराता एक दूसरे से टकराता और फिर अपनी दिशा में लौट जाता। पुलकेशिन की सेना में पांड्य, दयिल, सिंहली, पल्लव तथा चेर और चोल राज्य तक के पराजित लोग थे। वे अत्यन्त वीर थे। उनका रंग काला था, देह सुगठित थी।

नाविक प्रयत्न करने लगे। डाँड़ों के चलने से पानी झाग उगलने लगा। सम्राट हर्षवर्द्धन की सेना नदी पार करने को बढ़ी। पुलके-शिन् की सेना ने गर्जन किया।

उत्तरापथ के सैनिकों ने प्रत्युत्तर मे भीम गर्जन किया, फिर हाथी

मदमत्त होकर अंकुश की चोट से सूँड़ उठा कर चिंघार उठे। दोनों ओर रणवाद्य बजाने लगे। हवा में उन्मत्त रणनाद छाने लगा।

पुलकेशिन की सेना के धनुर्द्धर सन्नद्ध हो गये। एक साथ अनेक धनुष पृथ्वी पर टिके और झुके, प्रत्यंचा कान तक खिंच गईं और अंगुलियों से ढँकी उंगलियों ने उन पर बाण चढ़ा लिये।

इधर से नावें एक दूसरे से मिल गईं और फिर वे अलग अलग दलों में बँट कर इस तीर पर फैल गईं और फिर मांझी आरपार होने को खेने लगे।

उधर से तीरों की बौछार आई। लक्ष्य सधे हुये थे। जिस प्रकार व्यूह रचना करके नौकाएं बढ़ रही थीं उसी प्रकार उधर व्यूह से रचनाकार प्रहार भी हुआ।

नौकाओं से चीत्कार उठने लगे। उत्तरा पथ की सेना के धनुर्द्धर पानी की हलचल में भूमि पर स्थित धनुर्द्धरों का उस समय उत्तर नहीं दे सके जब आग से, तेल भींगे कपड़े, जलते हुए आकर तीरों के साथ नावों पर गिरने लगे। व्यूह छिन्न हो गया।

हाथियों की सेना पीछे थी। वह चाल नष्ट हो गई कि नौकाओं की आड़ में हाथी उतर जायेंगे। आग की बौछार ने हाथियों की पाँति को बिखेर दिया। कुछ पीछे लौट चले और कुछ इधर उधर भागने लगे। जितना ही अंकुश का प्रहार, इधर बढ़ता, उधर से अग्नि की बौछार होती और सकल प्रयत्न विफल हो जाते।

सम्राट स्वयं सैन्य संचालन कर रहे थे। वे स्थान स्थान पर घोड़े पर चढ़ कर सबको उत्साहित कर रहे थे किन्तु इस समय जो भगदड़ मची वे नहीं रोक सके। वे पीछे हटने की आज्ञा देकर अपने शिविर की ओर लौट गये।

नदी! नदी कैसे पार की जाये?

सम्राट व्याकुल हो उठे। क्या यह नदी जीवन को सदा के लिये

पराजित कर देगी ? क्या सम्राट हर्षवर्द्धन को आज मुँह की खाकर हटनी पड़ेगी ? नहीं, नहीं, सम्राट का मन इसे स्वीकार नहीं कर सका।

रात हो गई। सब स्थलों पर उल्काओं का प्रकाश फरफराने लगा। नदी के दूसरी ओर भी अब उल्काएँ जल रही थीं। दोनों ओर शाति थी।

एक नाव आकर किनारे से अंधकार मे टकराई और उस पर से कोई धीरे से कूदा और अंधकार मे खो गया। नाव और दूर हटने लगी। मांझी की डाँड़ों का शब्द दो बार छपाक-छपाक करके सुनाई दिया फिर सब शात हो गया।

शिविर में नीरवता थी। सम्राट सोचते सोचते सो गये थे क्योंकि उनके पर्य्यंक पर चादर ऊपर तक तनी हुई थी। दीप जल रहा था उसके आगे धुँधले प्रकाश में कुछ भी स्पष्ट नहीं दिखता था।

शिविर के बाहर किसी के चलने की हल्की आवाज आई, फिर रात्रि-प्रहरी ने पुकारा : सावधान !

फिर नीरवता सनसनाने लगी। शिविर की कनात किसी ने छूरे से धीरे धीरे काट दी और कोई चुपचाप घुस आया। आगंतुक छिपता हुआ जब दीपक के पास पहुँचा उसने भयभीत दृष्टि से देखा और अपने उष्णीश के लटकते छोर को मुँह पर ढाँक लिया। उसके नेत्र बड़े-बड़े थे और वह गौरवर्ण था।

वह धीरे धीरे सम्राट के पर्य्यंक की ओर बढ़ने लगा। उसके हाथ मे हठात् एक चमकता हुआ छूरा दिखाई दिया। उसने दूसरे हाथ पर रखा और जैसे उसकी उंगलियों ने धार के पैनेपन को परखा।

एक क्षण रुक कर देखा। शिविर की कनात पर एक छाया सी डोली, आगंतुक काँप गया। देखा। कोई नही था। भ्रम ही था।

उसने घूर कर देखा। कुछ नहीं। उसके दाँतों ने नीचे के होंठ को काट लिया। वह बढ़ा और उसनें छुरे वाला हाथ वेग से उठाया !

अंधकार में किसी ने पीछे से हाथ पकड़ कर उसे ऐसे मोड़ दिया कि छुरा नीचे गिर गया और आगंतुक के मुख से एक हल्की और पतली चीख निकल गई। हाथ पकड़ने वाले से नवागंतुक कुछ देर संघर्ष करता रहा फिर हठात् उसकी दृष्टि उस पर पड़ी और भय से कह उठा : सम्राट्!

संघर्ष बन्द हो गया। आगंतुक काँपने लगा!

'तू कौन है?' सम्राट ने कहा।

आगन्तुक चुप रहा। डर के कारण बोल नहीं सका।

'मागंधी!' इसी समय शिविर के द्वार पर किसी ने पुकार कर कहा।

'कौन?' सम्राट ने गम्भीर स्वर में कहा।

सामंत अर्जुन ने नंगा खड्ग हाथ में लेकर भीतर प्रवेश किया। उसने कठोर स्वर से कहा : सम्राट! पुलकेशिन् ने गुप्त घातक भिजवाया है।

सम्राट पीछे हट गये। सामंत अर्जुन ने मागन्धी का हाथ पकड़ लिया।

'यह झूठ है', मागन्धी चिल्ला उठी।

'फिर सत्य क्या है?' सम्राट ने पूछा!

मागन्धी कुछ उत्तर नहीं दे सकी।

'सामत अर्जुन!' सम्राट ने सोचते हुए कहा।

'सम्राट!'

'यह स्त्री सत्य कहती है।'

'देव! प्रमाण?'

'सामन्त! योद्धा को युद्धकाल में अनुशासन और मर्यादा कभी नहीं भूलनी चाहिये। फिर तुम भीरु नहीं हो जो घबड़ा जाओ। आज्ञा पालन करना तुम्हारा कर्तव्य है, प्रश्न करना नहीं। इस स्त्री को ले

जाकर पुलकेशिन् के पास पहुँचा दो। यह स्त्री अपनी ही प्रतिहिंसा से आई है, इसे पुलकेशिन् ने नहीं भेजा है। सामंत !

'सम्राट् !' सामंत का स्वर भर्रा गया।

सम्राट् ने कहा, 'जानते हो न ? पुलकेशिन् वीर है।'

सामंत का सिर झुक गया। उसने स्त्री का हाथ पकड़ कर पग बढ़ाया। स्त्री रोने लगी। सामंत अर्जुन ले चला।

'सम्राट् ! मुझे मृत्युदंड दें', स्त्री ने रोते हुए कहा।

'जो माँगना है सामंत से माँग लेना', सम्राट् ने कहा।

किंतु सम्राट् तक यह समाचार न पहुँचा कि सामंत अर्जुन ने अत्यन्त कठोरता से उस स्त्री को अंधकार में घसीटा। और जब उसे उसने प्रकाश में देखा वह उसका रूप देख कर पागल हो गया और उसने उससे नितान्त बर्बर वासनामय अपराध किया और फिर जब उसे अपने किये का ध्यान आया उसने उसकी हत्या कर दी और अपने परम विश्वासी अनुचरों द्वारा मागंधी के शरीर में भारी पत्थर बँधवा कर उसके अंगों को काटकूट कर विकृतमुख बना कर उसे नर्मदा के जल में डुबवा दिया। इस प्रकार मागंधी का अन्त हो गया।

रात को ही हाथी जल मे उतर पड़े। अंधकार में हाथी चलाने वालों का स्वर उठा और फिर सैनिकों का कुछ कोलाहल उठा। नदी की दूसरी तरफ भी जाग पड़ गई। फिर उधर से आग के पलीते छूटे और इधर आ-आकर जल पर गिर कर जलने लगे।

फिर अंधकार मे शब्द भेदी बाण चले। इधर से भी प्रत्युत्तर दिया गया। सैनिक कट कट कर जल मे गिरने लगे। नौकाओं का अग्रदल बीच मँझधार जाकर मिला और सैनिक तलवारे खींच कर एक दूसरे पर टूटने लगे। नावें झपट में उलट कर डूबने लगीं। थोड़ी ही देर में मँझधार साफ हो गई। नावे डूब गईं। बाकी अपनी-अपनी ओर लौट गईं।

हाहाकार मच गया। सैनिकों का कोलाहल बढ़ गया। हाथियों की चिघार अब पुलकेशिन की ओर भी सुनाई देने लगी। घोड़े हिन-हिनाये। फिर दग दग दग दग करके भारी वाद्य बजने लगे। तब किसी ने विराट्रव करते हुए शंख बजाया।

सम्राट हर्षवर्द्धन ने महाबलाधिकृत भाण्डी से पूछा : प्रभात होने में कितनी देर है?

'सम्राट अब देर नहीं है।'

अभी वह अपनी बात कह भी नहीं सका कि एकदम भीषण कोला-हल हुआ। सेना लौटने लगी। हाथी भाग चले।

'सम्राट!' सेनापति स्कन्दगुप्त ने घबराये हुए प्रवेश किया।

'सेनापति!' सम्राट ने पूछा।

'देव! हमारी सेना भाग रही है।'

'सेनापति!' सम्राट ने फूत्कार किया।

'देव! शत्रुओं की नौसेना के एक दल ने भीषण आक्रमण किया। उस प्रचंड आघात को हमारी गज सेना सह नहीं सकी। खंड खंड हो गई।'

'सेनापति!' सम्राट ने फिर फूत्कार किया।

'देव!' भाण्डी ने कहा, 'पुलकेशिन के पास समुद्र संतरण में कुशल नौसेना है। उसके तामिल मांझी साधारण नहीं हैं।'

सब चले गये। सम्राट भी शिविर में लौट आये। बाहर कोलाहल था और भीतर सम्राट ने देखा। सामने राज्यश्री खड़ी थी।

'राज्यश्री!' उनके मुख से आश्चर्य से निकला।

'भैय्या!' चीवरधारिणी ने गंभीरता से उत्तर दिया।

'तुम यहाँ?'

'क्यों? तुम तो मुझे छोड़ आये थे न?'

'युद्ध था। जानती हो। तुम क्या करतीं!'

'मोक्ष परिषद् और मंगलोत्सव में जो साथ रहती है वह यहाँ साथ नहीं रह सकती ? तुम जानते हो ? मै कभी वीतराग नहीं हो सकी। तुम्हारे स्नेह ने मुझे कभी संसार से अलग नहीं होने दिया।'

सम्राट ने कुछ नहीं कहा। राज्यश्री कहती गई : वो राज्यश्री जहाँ नहीं ले जाई जाती, वह अवश्य अच्छा स्थान नहीं होता। मैं सम्राट को लौटा ले जाने आई हूँ।

सम्राट ने सिर झुका लिया। राज्यश्री के नेत्रों में उल्का का आलोक दीपित होकर सम्राट को छू गया।

३६

इसी समय संवाद आया वलभी के राजा ध्रुव भट्ट ने फिर सिर उठा ही दिया। मन्त्रणा होने लगी।

महाबलाधिकृत भाण्डी, सेनापति सिंहनाद, सेनापति स्कंदगुप्त और सामंत अरुणाश्व अर्जुन सब मिल कर परामर्श करने लगे। साम्राज्य में संकट काल के से लक्षण दिखाई दे रहे थे। सामने अखंड नर्मदा पड़ी थी। सेना ऊबने लगी थी। किन्तु राज्यश्री और ही चिंता में थी। उसने बाण को ढूँढ़ा।

राज्यश्री ने कहा : महाकवि !

'देवी !' महाकवि चौंका।

'विराजो, महाकवि', राज्यश्री ने हाथ से इंगित किया।

कवि बैठ गया।

'तुम कवि ही नहीं हो, बाणभट्ट ! यह मै जानती हूँ।'

'ऐं ?' कवि ने अचकचा कर कहा।

'ठीक कहती हूँ', राज्यश्री ने मन्दस्मित से कहा, 'एक विश्वसनीय कार्य है। वह तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता।'

महाकवि बाणभट्ट चला गया। उसने जाकर पहले अपने वस्त्र बदले। फिर अपना प्रिय तुरंग निकाला। कटि मे खड्ग लगाया और श्वेत तुरंग पर वह श्वेत वस्त्र जब चुपचाप निकल गया, तो किसी को मालूम भी नहीं हो सका।

महाकवि नदी तीर पर पहुँच कर रुक गया। फिर उसे ध्यान आया। वह किनारे-किनारे घोड़े पर चढ़ कर उत्तर नदी की धार के सहारे बढने लगा।

काफी दूर चलने पर रुक कर उसने देखा, एक छोटा-सा ग्राम था। एक माँझी एक नाव लिये रुका था। बाणभट्ट ने उसके हाथ पर दो दीनार रख कर कहा : घोड़े के साथ मुझे उधर पहुँचा दे।

माँझी के नेत्र फैल गये। उसने आश्चर्य और भय से देखा और स्वीकार कर लिया। दूसरे तीर पर उतर कर बाणभट्ट फिर अश्वारूढ हुआ और सीधा पुलकेशिन की सेना की ओर चल पड़ा। एक दंडधर ने रोका। बाणभट्ट ने कहा : मैं महाकवि रविकीर्त्ति से मिलना चाहता हूँ।

'तुम कौन हो?' दंडधर के पास खड़े एक साँवले आदमी ने पूछा।

बाण ने उतर कर कहा : बाणभट्ट!

उस व्यक्ति ने हाथ बढ़ा कर कहा : स्वागत! स्वागत!

बाणभट्ट चौंक गया। पूछा : तो क्या?

वह व्यक्ति हँसा। कहा : हाँ! मैं ही रविकीर्त्ति हूँ।

दोनों आतुर होकर गले मिले।

'कैसा आनंद है', बाण ने कहा, 'हम मिले भी तो रणभूमि में।'

'मैं तुमसे बहुत दिन से मिलने का इच्छुक था।'

'भाग्य बड़ा बलवान है', बाण ने कहा।

"स्वागत मित्र! चलो शिविर में बैठेंगे।'

"कोई बुरा तो न मानेगा?'

'सम्राट् पुलकेशिन् द्वितीय !' रविकीर्त्ति ने कहा, 'कवि का सम्मान करना जानते हैं। वे साधारण व्यक्ति नहीं हैं।'

'स्वयं कवि हैं?'

'नहीं, कवि हृदय हैं।'

बाण सोचता रहा।

'चलो महाकवि !' रविकीर्त्ति ने कहा।

बाण ने कहा : एक बात पहले कह दूँ?

'निश्चय।'

'मै एक दूत भी हूँ।'

'सम्राट् ने भेजा है?'

'नहीं।'

'फिर?'

'देवी, राज्यश्री ने।'

रविकीर्त्ति सोचता रहा।

बाण ने कहा : यह केवल कवि होने के नाते कवि से कह सका हूँ। और किसी से इस रूप में इस बात को मै स्वीकार नहीं कर सकूँगा।

रविकीर्त्ति सोचता ही रहा। बाणभट्ट ने उसके कंधे को पकड़ कर धीरे से हिलाया, फिर कहा : सम्राट् से मिल सकेंगे, कहाकवि?

रविकीर्त्ति जागा। कहा : देवी राज्यश्री !

'हाँ। क्यों?'

'वह महान् आत्मा है।'

'तुम जानते हो?'

'उसे कौन नहीं जानता? तपस्विनी !'

बाणभट्ट को प्रसन्नता हुई। कहा : सहृदया हैं।

'सुना है यह भी।' फिर कहा : सम्राट् पुलकेशिन् भी देवी की

यशगाथा से परिचित हैं। तुम्हारी भी यशःकाया से परिचय है। स्वागत महाकवि।

बाण साथ चला।

बीच के सुन्दर और सज्जित शिविर के बाहर अनेक दंडघर थे। रविकीर्त्ति के साथ महाकवि बाणभट्ट ने जाकर देखा सम्राट् पुलकेशिन् द्वितीय बैठे हैं। स्वर्णपीठ पर उनके बाँये हाथ के नीचे कुछ भूर्जपत्र हैं।

रविकीर्त्ति को देख कर सम्राट् ने प्रणाम किया। उसने आशीर्वाद देकर कहा : सम्राट्! युद्ध भूमि में उत्तरापथ का सरस्वती पुत्र मिला।

सम्राट् ने आँखें उठाईं। गम्भीर पुरुष था। आँखों में मुस्कराहट थी। सिर पर रत्नजटित किरीट था। रविकीर्त्ति कहता गया : कितना अद्भुत भाग्य है मनुष्य का सम्राट्! महाकवि बाणभट्ट आये हैं!

पुलकेशिन ने प्रसन्नता से कहा : स्वागत! कहाकवि! स्वागत! और प्रणाम किया। बाणभट्ट ने ब्राह्मण की भाँति आशीर्वाद दिया।

'सम्राट्!' रविकर्त्ति ने कहा, 'शत्रुपक्ष का आशीर्वाद ग्रहण करें।'

सम्राट् ने कहा : नहीं महाकवि! कवि तो मेरा कभी शत्रु नहीं होता। विराजें।

दोनों बैठ गये।

'कैसे कष्ट किया?' सम्राट् ने कहा, 'यहाँ क्या कोई महाश्वेता खींच लाई?'

वे मुस्कराये। रविकीर्त्ति भी। महाकवि बाण ने कहा : सम्राट्! यह हृदय अब उतना व्याकुल नहीं रहा। तभी उत्तर कादम्बरी लिखने की प्रेरणा ही नहीं होती।

'कवि हृदय!' सम्राट् ने कहा, 'सम्राट् हर्षवर्द्धन तो स्वयं कवि हैं। क्यों महाकवि?'

बाण का साहस बढ़ा। कहा : सुन्दर कविता करते हैं।

'युद्धभूमि में पहले खंड्गों का संगीत सुनना पडता है कविराज! भाग्य!' सम्राट् ने हाथ उठा कर आकाश की ओर इंगित किया। फिर पूछा : परमभट्टारिका देवी राज्यश्री तो सकुशल हैं?

'हॉ, देव उन्हीं की आज्ञा से आया हूँ। उन्होंने भेजा है।'

'देवी राज्यश्री ने?' सम्राट् चौंक उठा।

'हॉ सम्राट्', बाण ने धैर्य से कहा।

सम्राट् की जिज्ञासा नहीं मिटी। बाण ने फिर कहा : देवी! संसार में शाति चाहती हैं।

सम्राट् चिंतित हुए।

'युद्ध कौन चाहता है महाकवि? आर्यावर्त्त और दक्षिणपथ आज हर्ष और पुलकेशिन की भुजाओं के नीचे रक्षित हैं। क्या उन्हें लड़ना चाहिए?'

बाण जब लौटा तो रविकीर्ति ने कहा : महाकवि! देवी से मेरा प्रणाम कहना।

'अवश्य कहूँगा।'

'कहना युद्ध रोका जा सकता है।'

'कैसे?'

'देवी बतायेंगी। अहंकार को मिटाकर।'

'वह कहॉ नहीं है?'

'जहॉ मनुष्यता है।'

'और यश?'

'वह स्थायी तभी है जब कल्याणरत है।'

बाण ने कहा : साधु महाकवि!

तुरंग बढ गया। इस बार पुलकेशिन् के नाविक दिन में बाण को लेकर दूर उस किनारे पर चुपचाप छोड़ आये।

राज्यश्री आतुरता से महाकवि की प्रतीक्षा कर रही थी। बाण को देख कर आशङ्का से देखा।

'महाकवि !' स्वर रुक गया।

'देवी।'

'हो आये ?'

'हाँ देवी।'

'परिणाम ?'

'देवी ! कार्य सफल हुआ।'

'यह सत्य है ?'

'देवी ! बाण का भाग्य बहुत बली है।'

'जानती हूँ, तभी तुम्हें मैंने चुना था।'

'ठीक ही किया देवी। मैं गीता को मानता हूँ। ब्राह्मण हूँ। हम निमित्त हैं, और माध्यम के रूप में ही प्रयुक्त किये जाते हैं। सम्राट् पुलकेशिन् भी युद्ध नहीं चाहते।'

राज्यश्री उसी समय सम्राट् के शिविर में गई। महाबलाधिकृत भाण्डी, सेनापति सिंहनाद, सेनापति स्कंदगुप्त और सामंत अरुणाश्व अर्जुन खड़े थे। सम्राट् बैठे थे। गंभीर परामर्श और मंत्रणा हो रही थी। राज्यश्री को देख कर सबने उसको सिर झुका कर अभिवादन किया। सम्राट ने कहा : स्वागत परमभट्टारिका।

'मैंने व्याघात डाला ?' राज्यश्री ने बैठ कर कहा।

'नहीं,' सम्राट् ने कह कर सामंत अर्जुन की ओर देखा जैसे कहे चलो।

सामंत अर्जुन कहने लगा : सम्राट् ! यह असंभव है।

'महाबलाधिकृत की सम्मति प्रगट हो,' सम्राट् ने कहा।

'देव !' भाण्डी ने कहा, 'शुभ पग-पग पर सन्नद्ध है।'

'पुलकेशिन् स्वयं महावीर हैं।'

सेनापति स्कंद ने कहा : सम्राट् ! वीर तो हमारे यहाँ भी हैं किंतु उससे तो काम नहीं चलेगा ।

'सेना का प्रश्न है,' सामंत अर्जुन ने टोका ।

'नहीं,' राज्यश्री ने कहा, 'प्रश्न मन का है ।'

सब चौंक उठे । अरुणाश्व अर्जुन ने कहा : देवी !

'मै फिर कहती हूँ,' राज्यश्री ने कहा, 'सेना का नहीं है । मन का है ।'

सम्राट् ने राज्यश्री को चौंक कर देखा । भाण्डी पीछे हट गया । स्कंद कुछ झुक गया ।

'देवी !' सामंत चौंक उठा ।

'युद्ध हर्षवर्द्धन और पुलकेशिन् का है', राज्यश्री ने कहा, 'फिर ये दोनों परस्पर द्वंद्व युद्ध कर लें । व्यर्थ असंख्य प्राणियों का यह नाश क्यों किया जा रहा है ?'

सेनापति स्कंदगुप्त ने आगे बढ़ कर कहा : देवी ! यह शक्ति और राजनीति की बात है । साम्राज्य की मर्यादा का प्रश्न है । यह पुष्यभूति-वंश के गौरव की कहानी है ।

राज्यश्री हँसी । कहा : नहीं सेनापति यह सब कुछ नहीं है, यह एक प्रमाद है । पुरुष की बर्बरता है । लूट है, उत्पात है ।

बाकी सब विक्षुब्ध हुए ।

सम्राट् चिन्ता मे पड़ गये । कहा : परमभट्टारिका !

'सम्राट् !'

'यह मंत्रणा का समय है । मै स्वयं आपके पास उपस्थित होऊँगा ।'

राज्यश्री उठ कर चली गई । सेनापतियों की तनी हुई भृकुटियाँ झुक गईं । सम्राट् ने बात को सँभाल लिया ।

रात हो गई । सम्राट् व्याकुल थे । क्या राज्यश्री बुरा मान गई होगी । आज तक तो उससे ऐसा व्यवहार कभी नही किया गया । किंतु

यदि वे ऐसा न करते तो विद्रोह उठ खड़ा होता। साम्राज्य के पुराने स्वामिभक्त वे सेनापति कभी ऐसा अपमान नहीं सहते। सम्राट् ने पुकारा : भगिनी।

राज्यश्री ने कहा : भैय्या।

कोई भेदभाव नहीं। जैसे उसे कुछ भी याद नहीं। सम्राट् अचकचा गये।

'क्या है भगिनि ?'

'युद्ध रोक दो।'

'युद्ध ?'

'युद्ध का प्रसाद देखोगे ?'

'मैं जानता हूँ।'

'क्या ?'

'युद्ध में मृत्यु है।'

'मृत्यु ?' राज्यश्री हँसी।

'नहीं, मैं अशोक नहीं हूँ। नर्मदा मेरा कलिङ्ग नहीं होगा।'

'मेरी प्रार्थना मानोगे ?'

'अवश्य।'

'मेरे साथ चलो।'

सम्राट् को संग लेकर राज्यश्री अंधकार में नदी तीर की ओर ले चली। वहाँ शवों को देख कर हर्षवर्द्धन न जाने क्यों काँप उठा। अनेक शव बह-बह कर एकत्र हो गये थे, उन्हें शृगाल फाड़-फाड़ कर खा रहे थे।

'वह कौन है ?' राज्यश्री ने पूछा।

'मै नहीं जानता,' सम्राट् ने कहा।

'वह किसी राज्यश्री का हर्ष है', राज्यश्री ने गंभीरता से कहा।

'राज्यश्री !' सम्राट् के मुख से निकला, 'यह क्या कह रही हो ?'

'सम्राट् यह भी सत्य है। किंतु सेनापति और सामंत व्याघ्रों की भाँति रक्त के प्यासे हैं। युद्ध रोक दीजिये। आज मै भीख माँगती हूँ।'

हर्ष ने कहा : तुम जो कहती हो मुझे स्वीकार है।

राज्यश्री हर्ष से पागल हो गई। उसने हर्ष के पाँव पकड़ लिये। कहा : तुम महान् हो भैय्या।

'महान् नहीं हूँ', हर्ष ने कहा, 'मैं अधीर हूँ।'

'क्यों भैय्या ?'

'फिर सेनापतियों से क्या कहूँगा ?'

'क्या वे विरोध करेंगे ?'

'अकारण पराजय स्वीकार करना, सबसे बड़ा अपमान है। किन्तु मैं जानता हूँ, यह युद्ध हम कभी नहीं जीत सकेंगे। पुलकेशिन् की सेना ने हमारी गहरी हानि की है।'

'सम्राट् पुलकेशिन् युद्ध रोक देना चाहता है।'

सम्राट् चौंके, कहा : तुम कैसे जानती हो ?

राज्यश्री ने सब सुनाया। हर्ष चौंक-चौंक कर सुनता रहा।

राज्यश्री ने लौट कर बाणभट्ट से कहा : महाकवि !

'देवी !'

'एक बार फिर जाना होगा।'

'क्यों देवी ?'

'ऐसा पथ खोजना होगा कि अपमान किसी का भी न हो।'

बाण चिन्ता में पड़ गया।

'जाओगे न ?' राज्यश्री ने पूछा।

'देवी ! यह तो कठिन लगता है।'

'क्यों ?'

'एक को तो झुकना पड़ेगा ही।'

'क्यों ?'

'देवी ! मै कैसे कहूँ ।'

'यही तो महाकवि,' राज्यश्री ने कहा, 'उठते समय दोनों घुटनों को ऊपर की ओर सीधा होना पड़ता है । वह मनुष्य का उत्थान है ।'

बाणभट्ट उसी समय रविकीर्ति के पास चला गया । राज्यश्री ने मन ही मन शास्ता का स्मरण किया ।

४०

आज दोनों ओर नर्मदा के तीर पर विराट सेनायें खड़ी थीं । पंक्ति बाँधे जहाँ पदातिक समाप्त होते थे, उनके पीछे अश्वारोही प्रारंभ हो जाते थे । दोनों ओर यही सज्जा थी । बीच में हाथी देकर फिर सेना के पदातिक दीखते थे । दोनों सेनाओं के अगल-बगल मे धनुर्द्धर खड़े थे । सेनायें शांत थीं ।

सेनापति स्कंदगुप्त हाथी पर चढ गया । उस समय पीछे से मर्दल बजा । नदी तीरों पर श्वेत पताकायें फहराने लगीं । फिर दोनों ओर अपने-अपने सम्राट का नाम लेकर सैनिकों ने जयध्वनि की !

एक हाथी पर हर्षवर्द्धन थे । उनके पीछे राज्यश्री थी । और तीसरे पर महाबलाधिकृत भाण्डी और सेनापति स्कंदगुप्त । चौथे पर सामंत अर्जुन और सिंहनाद । दूसरी ओर एक पर पुलकेशिन् द्वितीय और बाकी तीन पर उसके उच्च पदाधिकारी । हाथी नदी की ओर बढने लगे । जब हाथी तीर पर पहुँच गये, वे रुक गये और तब नौकाओं पर वे लोग चढ़ गये ।

तूर्य्य निनाद हुआ । नौकाओं की भीर दोनों ओर से बढ़ी और मांझियों के डाँड़ छपाक-छपाक करने लगे । इस समय सौ-सौ नौकायें बाँध कर जैसे एक कर दी गई थी । दोनों ओर से लोगों ने इन दो दलों को समीप आते देखा ।

सैनिक फिर जयध्वनि करने लगे। नौकायें एक दूसरे के समीप पहुँच गई। उस समय दो पताकायें उठीं और दोनों को सबने एक दूसरी के पास जाते हुये देखा। दोनों सम्राट् अपने-अपने स्थान से बढ़े।

सम्राट हर्षवर्द्धन और सम्राट पुलकेशिन् एक साथ बढ़े और फिर गले मिले। फिर दोनों चार-चार पग पीछे हट गये। सम्राट हर्षवर्द्धन ने अपना खड्ग निकाल लिया, सम्राट् पुलकेशिन् ने अपना। फिर एक बार दोनो के खड्ग टकराये और फिर दोनों ने अपने-अपने खड्ग एक दूसरे को दे दिये और उस समय फिर मर्दल बजा।

दोनों ने अपने मित्र के खड्ग प्राप्त करके पीछे कर दिये जिसे पीछे खड़े महाबलाधिकृतियों ने लेकर अपने शिरस्त्राण से छुला लिया और वे अभिवादन करके पीछे हटे।

भेरी निनाद हुआ।

फिर दोनों सम्राटों ने हाथ मिलाये और इंगित किया। दिन में उल्का जला कर नौका पर लगा दी गई।

सैनिकों ने देखा और फिर जयनाद किया। अबकी बार सम्राट हर्षवर्द्धन की वाहिनी ने सम्राट् पुलकेशिन् का, सम्राट् पुलकेशिन् की वाहिनी ने सम्राट् हर्षवर्द्धन का जय निनाद किया।

नर्मदा काँप उठी। सैनिकों का जयनाद फिर माँझियों ने दुहराया और लहरे हिल उठीं।

सैनिकों के गर्जन ने उसे द्विगुणित किया। और तब आकाश, पृथ्वी, जल में निनाद गूँजा: सम्राट् पुलकेशिन् की जय! सम्राट् हर्षवर्द्धन की जय! इनके नाम मिट गये, फिर—'हर्ष पुलकेशिन् की जय' गूँजने लगी।

इस जयजयकार में काफी समय व्यतीत हो गया। तब तक दोनों सम्राट् बातें करने लगे थे। पुलकेशिन् और हर्षवर्द्धन परस्पर संस्कृत में बातें कर रहे थे। वे इस समय दोनों ही प्रसन्न दिखाई देते थे।

उस समय चीवर पहने राज्यश्री आगे बढ़ी। उसे देख कर हर्षवर्द्धन ने सम्राट् पुलकेशिन् से परिचय कराया : परमभट्टारिका देवी राज्यश्री !

राज्यश्री निकट पहुँच गई थी। पुलकेशिन ने उस भव्य मुख को देखा और वह मन ही मन प्रभावित हुआ। राज्यश्री के होठों पर एक कोमल मुस्कान थी। पुलकेशिन् ने प्रणाम किया।

भिक्षुणी राज्यश्री ने उसे आशीर्वाद दिया !

इस दृश्य को देख कर महाबलाधिकृत भाण्डी ने कहा : देवी ! तुम अपराजित हो।

सैनिकों ने जयजयकार किया। जब जयजयकार थम गया तब सूर्य की किरणों की तीक्ष्णता का कुछ अनुभव हुआ। छत्र लगे रहने के कारण सम्राट् तो छाया में थे। इस समय सम्राट् पुलकेशिन् ने इंगित किया। उस इंगित की पूर्ति के पहले ही हर्षवर्द्धन के छत्रछायी ने सम्राट् हर्षवर्द्धन का छत्र राज्यश्री पर लगा दिया। सम्राट् चतुरता से हट कर उसके नीचे खड़े हो गये।

राज्यश्री ने कहा : सम्राट् ! आज नर्मदा की लहरों पर जो इतिहास लिखा गया है वह उत्तरापथ और दक्षिणापथ कभी भी नहीं भूलेगा। आज युद्ध के स्थान पर शांति छा गई है। व्यर्थ की हत्या का अंत हो गया है। सहस्रों नारियाँ आपको आज हृदय से आशीर्वाद देंगी। प्रजा का स्नेह और सुख से पालन करें। कभी भी हिंस्र भावों को हृदय में न लायें क्योंकि उनसे मन में विनाश होता है। वह विनाश भय की सृष्टि करता है। स्वार्थ इस विनाश का केन्द्र है, अपहरण उसकी प्रवृत्ति है।

पुलकेशिन् ने मुस्करा कर कहा : देवी ! संसार त्यागिनी हैं। हम संसारी हैं। धर्म को उतना नहीं जानते, जितनी राजनीति हमारे जीवन में है।

राज्यश्री ने कहा : क्या सम्राट् ! युद्ध ही राजनीति है ?

सम्राट् हर्ष ने कहा : युद्ध दारुण तो है, पर क्या नितांत अनावश्यक है ?

राज्यश्री ने कहा : मैं स्वयं नहीं जानती। किंतु शास्ता ने कहा था मनुष्य की वासना युद्ध से बुझती नहीं।

'देवी ठीक कहती हैं,' पुलकेशिन् ने कहा। उसकी मुस्कराहट में एक विजय की आभा थी। सम्राट हर्षवर्द्धन ने उसे देखा, पर उधर से दृष्टि हटा ली।

दोनों ओर की नौकाएँ पीछे हटने लगीं और अपने अपने तीरों की ओर खिंचने लगीं। दोनों सेनाओं से फिर अब जयध्वनि होने लगी थी।

दोनों सम्राट् साथ-साथ पृथ्वी पर उतरे। फिर दोनों ओर से एक दूसरी सेना को सेनाओं ने सामूहिक अभिवादन किया। समाज विसर्जित हो गये।

राज्यश्री अपने शिविर में चली गई। आज मन जाने क्यों तृप्त-सा था। उसे लग रहा था उसके जीवन में आज कोई एक महान् घटना हो गई थी और वह अब उसकी शीतल छाया का प्रिय अनुभव कर रही थी।

सेनाओं में आमोद छा गया। फिर सैनिकों के टोल गाने लगे और मदिरा पान किये नर्त्तकियाँ नृत्य करती हुई निकलने लगीं। उनके मीठे सुरीले राग और सैनिकों के मोटे स्वर साथ साथ गूँजने लगे। उसके बाद संध्या समय जगह जगह खुलेआम भोजन पकने लगा। जगह जगह से धुँआ उठने लगा।

आकाश में नक्षत्र निकल आये। राज्यश्री ने देखा सामने हर्षवर्द्धन थे। दोनों ने कुछ कहा नहीं। पर दोनों न जाने रो उठे। वह आनन्द था।

सम्राट् जब अपने राज्य में लौट आये जीवन फिर पुरानी तरह से चलने लगा।

कई दिन व्यतीत हो गये। राज्यश्री के दान की गाथा अब धीरे धीरे और बढ़ चली।

महासेनापति भाण्डी ने गम्भीरता से प्रवेश किया। उसके पीछे पीछे सामंत अर्जुन, स्कदगुप्त और सेनापति सिंहनाद भी थे। दंडधर ने जाकर सम्राट् हर्षवर्द्धन को सूचना दी। सम्राट् ने उन्हें मंत्रणागृह की ओर भेज कर स्वयं भी उधर ही प्रस्थान किया। सबके बैठ जाने पर सम्राट् ने कहा : सेनापति! विशेष संवाद?

'देव! फिर बादल उठा है', सामंत अर्जुन ने कहा।

'काव्य नहीं सामंत!' सम्राट ने कहा, 'वास्तविकता का परिचय दो।'

सेनापति सिंहनाद अधीर था। लगा, वह बोल उठेगा। उसने सामंत की ओर देखा।

सामंत ने कहा : वलभी का राजा ध्रुवभट्ट सिर उठा रहा है, वह फिर विद्रोही हो गया है।

'सम्राट! वह कितनी स्वामिभक्ति प्रदर्शित कर चुका है?' भाण्डी ने व्यंग्य किया!

'अब वह स्वतंत्र हो गया है', सामंत ने अंत किया।

सम्राट सुनते रहे। फिर उठे।

कहा : और?

सामंत चुप रहा। महाबलाधिकृत भाण्डी उठा। सम्राट् को देखते हुए तब धीरे से भाण्डी ने कहा : सम्राट! दक्षिण की इस मूक पराजय ने भले ही प्रजा में धर्म का नाम उज्ज्वल किया हो किंतु खड्गों का व्यापार करने वाले इसकी वास्तविकता समझने में कोई भूल नहीं कर रहे हैं।

'महाबलाधिकृत!' सम्राट ने भौं उठा कर कहा।

'मगध में फिर विद्रोहाग्नि भड़क उठी है सम्राट!' भाण्डी ने कहा, 'उसके भुजदंड फड़क उठे।' सम्राट ने फिर कहा : महाबलाधिकृत!

'देव ! दास पुष्यभूतियों का पुराना सेवक है।'

'जानते हैं महाबलाधिकृत ! किंतु तुम देवी पर आक्षेप कर रहे हो ?'

'देव ! मै केवल निवेदन कर रहा हूँ।'

'और कुछ कहना है ?'

'आनन्दपुर, कच्च और सौराष्ट्र मे भी विद्रोह की ज्वाला फूट रही है।'

सामंत अर्जुन ने उठ कर कहा : सम्राट् ! सेवा में निवेदन 'करने की आज्ञा है ?

'कहो सामंत।'

'देव ! जिन्होंने साम्राज्य की सेवा की है, जिन्होंने अपने प्राणों के बल पर साम्राज्य की रक्षा की है। सम्राट् की छाया मे जो पले हैं और जिन्हें इसका गौरव है, वे आज्ञाकारी ही हैं।' सम्राट् टहलने लगे।

भाण्डी ने कहा : देव ! यदि मैंने अनुचित कहा है तो मुझे दंड दिया जाये। दास प्रस्तुत है।

सम्राट् ने देखा और फिर चुप हो गये।

स्कंदगुप्त ने कहा : आज्ञा दें सम्राट् !

'समय नहीं है सम्राट,' सेनापति सिंहनाद ने कहा, 'शत्रु सिर पर है।'

'पल पल बीत रहा है,' सामंत ने कहा, 'साम्राज्य देख रहा है।'

सम्राट् ने धीरे से कहा : दमन ! शत्रु का दमन !

भाण्डी चिल्ला उठा : सम्राट् की जय ! सम्राट् सम्राट् हैं, सैनिक हैं, पुरुष हैं।

सेना फिर तत्पर होने लगी।

'युद्ध होगा ?' चयनिका ने पूछा।

तरला ने कहा : सेना के नायक तक असंतुष्ट थे।

'भिक्षु ?' चयनिका हँसी।

तरला मुस्काई और कहा : देवी राज्यश्री जो प्रयाग में हैं।

'लौटने पर तो फिर युद्ध शरण होने लगी', चयनिका ने व्यंग्य किया।

सैनिकों में बातें होने लगेंगी।

'अबकी बार युद्ध भयानक होगा?' एक सैनिक ने कहा।

एक नर्त्तकी ने कहा : ध्रुव भट्ट क्या लड़ेगा?

'क्यों?' दूसरे सैनिक ने कहा, 'अबकी बार वह एक नई सेना ला रहा है।'

'कैसी?' पहले सैनिक ने पूछा।

'तू क्या जाने अश्मक?' दूसरे ने कहा, 'ऐसी कि सारी सेना एक प्रहार में ही मूर्च्छितों की भाँति झूमने लगे।'

'सच?' नर्त्तकी ने आश्चर्य से पूछा।

'नहीं तो क्या?' सैनिक ने कहा, 'सुन्दरियाँ लायेगा। वलभी की सुन्दरियाँ आगे होंगी, अगर उनके कटाक्ष होंगे, इधर सब......'

और उसने मूर्च्छा की मुद्रा दिखाई। सब ठठा कर हँसे।

नर्त्तकी रूठ गई। फिर उसे भी उसकी चपलता पर हँसी आ गई। सेना मे फिर हलचल व्याप्त हो गई। सम्राट् युद्ध के लिये चले गये। सेना नायक प्रसन्न हुए।

राज्यश्री कान्यकुब्ज लौट आई।

चयनिका ने देखा और कहा : भिक्षुणी लौट आई?

'हाँ भाभी!' राज्यश्री हँसी, 'अच्छी तो हो?'

'क्यों नहीं?' चयनिका ने कहा, 'भाई बहिन तो अब संसार छोड़ रहे हैं, मै तो तुम से सब से बड़ी हूँ, अब अच्छी क्या रहूँ?'

राज्यश्री फिर हँसी।

सम्राट् की विजय पताका उठी और देखते ही देखते समस्त आर्यावर्त्त में फहराने लगी।

राज्यश्री ने कहा : भाभी! सम्राट् तो फिर लड़ने लगे?

'सम्राट् क्या स्त्री हैं राज्यश्री ?'

'नहीं, मैंने कब कहा ?'

'तो प्रजा की रक्षा उच्छृङ्खल राजाओं से कौन कर सकता है ?'

'फिर भी भाभी, सोचती हूँ, यह सब क्यों होता है ?'

'कौन नहीं जानता कि स्त्री कितना दुख पाती है, फिर भी स्त्री जन्म लेती ही है और अपनी परतंत्रता में ही हँसती भी है, गाती भी है। मर तो नहीं जाती। यही तो संसार है राज्यश्री। कुछ उलझन है अवश्य, पर कोई इसे अब तक सुलझा पाया है ?'

राज्यश्री देखती रही। चयनिका की बात सुन कर उसे लगा वह अकेली ही दुखी नहीं थी, भाभी भी चिंतित थीं, विवश थी।

उपसंहार–४१

बीस वर्ष व्यतीत हो गये। हर्षवर्द्धन ने मगध भी जीत लिया, किन्तु शशांक फिर भी रह गया। भाई का हत्यारा और बोधिद्रुम को काटने वाला गुप्त साम्राज्य का अंतिम राजा था। उसके हृदय में अदम्य ज्वाला जल रही थी। जब हर्ष उसका पीछा करता था, वह भाग जाता था, किन्तु उसके लौटने पर वह फिर लौट आता था। अब अपने को वह महाराजाधिराज कहता था। अभी भी सम्राट् बने रह कर वह अपने लुप्त वैभव को याद कर लिया करता था। उसे कोई नहीं हरा सका।

राज्यश्री के अब झुर्रियाँ मुख पर अपना जाल तान चुकी थीं। उसकी तृष्णाएँ आयु ने धो दी थीं। वह अब सद्धर्म की सेवा में लग गई थी, यहाँ तक कि अब उसका अपना कुछ भी नहीं था। मन से भी वह अपने अहंकार का नाश कर चुकी थी। उसके नेत्रों में एक असाधारण ज्योति थी, जो करुणा भरी थी। जो उसके समीप जाता

उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। उसके सिर पर सिंघाड़े जैसे सफ़ेद बाल थे और वह अब थेरी गाथाएँ गाती, तो स्वर जैसे हृदय से निकलते।

अब वह अलिंदों में नहीं घूमती, बैठी रहती। उपदेश दिया करती। उसके स्वर में एक नम्रता थी। राज्यश्री, उसने वह जीवनकाल मे ही देवी के रूप में प्रसिद्ध हो गई। असंख्य प्रजा उसके दर्शन करने आती।

परमभट्टारिका चयनिका भी अब वृद्धा लगती थीं। उनके दाँत आगे से गिर गये थे। और वे कुछ झुक भी गई थीं, किन्तु फिर भी उनकी भ्रू अराल थी, वैसी ही जैसी यौवन मे, जैसे अभिमान अभी भी जीवित था।

आज सम्राट् बहुत दिन बाद राज्यश्री के प्रासाद में आये थे। भाई-बहिन मिले। सम्राट् के कानों के पास के बाल चाँदी की भाँति चमकते थे। मुख पर प्रगाढ गाभीर्य आ गया था। दोनों एक दूसरे से मिल कर अत्यंत प्रसन्न हुए।

विजया मर चुकी थी। उसके स्थान पर अब दो नई भिक्षुणियाँ आ गई थीं। वे दोनों भी वृद्धा थीं। उनके देह की खाल झुर्रियों से भर कर सिकुड़ गई थी और वे अत्यंत कृश थीं।

राज्यश्री उनसे अत्यंत स्नेह रखती थी। कभी-कभी उसे विजया की याद आती। फिर वह बीतशोकिनी उसे भी भूल जाती, जैसे एक निरंतर शून्य का प्रवाह चला जा रहा था।

सम्राट् को देख कर राज्यश्री ने कहा : सम्राट्। आज बहुत दिन के बाद आपको देख कर मुझे एक सांत्वना मिली।

'कैसे देवी ?' सम्राट् ने पूछा।

'अब युद्ध बंद हो गये।'

'देवी ! जीवन एक संग्राम है।'

'है तो सम्राट्! बाहर भी, भीतरी भी।'

'मैं इस भीतर को नहीं पहचानता। जिस ओर भी देखता हूँ, वहीं मुझे श्रद्धा होती है।'

'सम्राट्! मनुष्य की श्रद्धा उसकी शक्ति है अवश्य, किन्तु सम्यक् चिंतन ही वास्तविक शक्ति है, अन्यथा भावना में बह जाने का भय बना रहता है।'

'देवी! जिसे तुम चिंतन कहती हो, उसका बहुत कुछ ऐसे आधारों पर है जो वास्तव में अत्यंत असम हैं।'

'मैं जानती हूँ। राजा का कर्त्तव्य अत्यंत कठोर है।'

सम्राट् चुप रहे।

राज्यश्री ने फिर कहा : व्यक्ति जिस पद पर है वह पद उस पर अपना प्रभाव डालता है। व्यक्ति उससे छूटना चाहता है किन्तु नहीं छूट पाता। तब वह विषमता उसको आगे नहीं बढ़ाती।

सम्राट् ने सिर हिलाया।

राज्यश्री ने फिर कहा : महाभारत युद्ध समाप्त होने पर यही तो युधिष्ठिर की भी चिंता थी।

'तुमने महाभारत पढ़ा है?' सम्राट् ने आश्चर्य से पूछा।

'क्यों समाट्?'

'महाकवि अश्वघोष तो आख्यानों को सुनना भी पाप समझते थे।'

'मैं ब्राह्मण धर्म नहीं मानती, किन्तु वे तो मानते थे।'

'ओह!' सम्राट् गंभीर हो गये।

'फिर भी क्या मन की तृप्ति श्रद्धा में ही है? हो सकती है। जन साधारण में श्रद्धा ही आधार है।'

सम्राट ने स्वीकार किया। बात दूसरी ओर चल पड़ी। राज्यश्री प्रसन्न हुई।

दूसरे दिन कान्यकुब्ज में उत्सव होने लगा। फिर नगर में उन्माद

सा छा गया। देवी राज्यश्री ने सम्राट को जो मंत्रणा दी थी, उसकी घर-घर में बात चल पड़ी। देवी शांति के पक्ष में थीं। वे सम्राट अशोक प्रियदर्शी को संसार का सर्वश्रेष्ठ शासक मानने वाली थीं, और उसी को सम्राट पद का आदर्श समझती थीं। राज्यश्री के ही प्रभाव से, जन श्रुति फैली कि परमभट्टारक सम्राट ने शीलादित्य की उपाधि धारण की थी। शीलादित्य, विक्रमादित्य नहीं। जीवन केवल विक्रम नहीं है। शील भी है।

सामन्त अरुणाश्व अर्जुन ही इससे अप्रसन्न हुआ था। उसके साथ कई ब्राह्मण भी अब अत्यन्त असंतुष्ट हो गये थे। चयनिका ने सुना तो कहा: चलो सम्राट तो बने रहे!

राज्यश्री ने अपनी भिक्षुणी से कहा: क्यों भिक्षुणी! सम्राट् के शीलादित्य नाम से क्या सद्धर्म्म का प्राचीन गौरव फिर नहीं जाग उठा।

'क्यों नहीं देवी!' वृद्धा ने उत्तर दिया।

राज्यश्री अब उस आयुस्तर पर पहुँच चुकी थी जब व्यक्ति अपने विचारों को सुनने लगता है।

तरला अब अपनी पुत्री का विवाह कराना चाहती थी। वह उसके लिये उपयुक्त वर खोज चुकी थी। प्रासाद का ही एक दास-पुत्र था। वह उसकी पुत्री से विवाह नहीं करना चाहता था। तरला चिंतित थी।

उसने चयनिका से कहा: देवी! तारा का होने वाला वर तो बड़ा हठीला है।

'क्यों?'

'कहता है, दासी पुत्री का एक पति थोड़े ही होता है।'

'अच्छा तो वह भी अब कुलीन हो गया?'

तरला हँस दी। कहा: देवी! हम भी कभी यौवन में थे। पर हमारे यहाँ तो सनातन रीति चली आई, और हम निभाते गये। कुछ

और पहरा देने लगा। उसके बाद फिर दंडधरों का ही काम था। सेना एक ओर अपना पड़ाव डाले थी। गज सेना एक किनारे ही ठहरा दी गई थी। नित्य प्रातःकाल हाथी निकलते और फिर वे नदी के जल में स्नान करते, तैरते, अपनी सूण्ड से पानी भर भर कर अपने माथे पर डालते और मनोहर स्वर से चिंघारते।

परमभट्टारिका चयनिका, परमभट्टारिका राज्यश्री के अनुरोध से इस बार पंचवर्षीय सभा में-उपस्थित होने के लिये कान्यकुब्ज से प्रयाग आ गई थीं। राज्यश्री के प्रति उन्हें कितना स्नेह था यह अभी प्रगट हुआ। पहले कहा : तुम जाओ, सम्राट को ले जाओ। मैं क्या करूँगी। पर राज्यश्री नहीं मानी। कहा : अब तो चलना ही होगा भाभी।

भाभी शब्द में अटूट गरिमा थी। वही खींच लाया। सम्राट् को भी इस पर कुछ विस्मय हुआ अवश्य।

सेना का जयगर्जन कभी-कभी गूँज उठता था। विशेष प्रबंध इस समय चाटों के ही हाथ में था। वे स्वच्छता के ऊपर ध्यान देते। प्रजा लिये आयोजन करते। रेते में बहुत कुछ स्वच्छता तो उसे खोद कर पलट देने से ही हो जाती थी। घोड़ों को भी नदी में स्नान कराया जाता था।

एक भट तो नित्य ही प्रातः तुर्य्यनिनाद करने को था, दूसरा समय की जलघड़ी देख कर घंटा बजाने पर नियुक्त था। तीसरा प्रातः मध्याह्न, संध्या के समय शंख निनाद करता, इस प्रकार सब को काम बाँट दिया गया था।

आयुक्तक अत्यंत कार्यरत थे। उन्हें कभी साम्राज्य के कुलीन उच्चपदाधिकारियों के लिये प्रगट रूप से गंगा-जल भरवा कर भेजना पड़ता, तो छिपे तरीके से उन्हें अनेक सेना के गौल्मिकों के द्वारा सुंदरी स्त्रियाँ पहुँचानी पड़ती।

हाथियों की सेना का प्रधान कट्टुक मामल्ल संध्या समय समस्त

हाथियों को श्वेतमिट्टी आदि से लेपित कर के उन पर सुन्दर रेखायें बनवाता और उनकी नंगी पीठों पर कमल बनवाता और फिर बिना किसी प्रकार के बंधन के उन्हें वन प्रातर की ओर घुमाने ले जाता। प्रजा इन सब खेलों को देखती।

नट आ गये थे। वे अपनी कला दिखाते। एक बहुप्रचलित और प्रिय मनोरञ्जन था—कठपुतली का तमाशा। इस कठपुतलों के खेल में बहुत सी प्राचीन कहानियाँ दुहराई जातीं। कभी पर्दे की छाया पर खेल होता, कभी कठपुतलियाँ सीधे ही नाचतीं।

इधर-उधर के ग्रामों से अनेक नर-नारी आने लगे। अपने बच्चों को लेकर वे डेढ़-दो मास का भोजन साथ मे रख कर रथों, घोड़ों, या खच्चरों पर लाद कर ले आते। असंख्य भीड़ एकत्र हो गई। पुरुषों का वस्त्र मुख्यतया अधोवस्त्र तथा एक उत्तरीय और उष्णीश था, स्त्रियाँ नीचे एक हल्का लहँगा, अंचल और कंचुक पहनती थीं। बालकों और पुरुषों के हाथ में भी चाँदी के कड़े होते थे।

इनके अतिरिक्त असंख्य अपाहिज और भूखे भी थे।

दान के कोलाहल से दिशाएँ गूँजने लगीं। सम्राट् की आज्ञा से इन भूखों के रहने का प्रबन्ध किया गया था।

राज्यश्री ने कहा : देवी !

चयनिका ने देखा।

राज्यश्री ने फिर कहा : यह साम्राज्य का दूसरा गौरव है।

चयनिका का मन कचोट उठा।

'क्यों है इतना दारिद्रय ?' उसने पूछा।

'मैं नहीं जानती', राज्यश्री ने उत्तर दिया।

अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। प्रातः जयगान हुआ। फिर पंक्ति बना कर भिक्षु उपस्थित होने लगे। असंख्य चीवरधारिणियाँ आकर एकत्र होने लगे। फिर हाथी पर बुद्ध प्रतिमा लाई गई और उसकी प्रतिष्ठा

की गई। फिर उसके चारों ओर अगरुधूम की लहरियाँ डोलने लगीं।

वृद्ध भिक्षु ने घंटा बजाया। चीनी भिक्षुओं ने अपने अलग ढंग से मंत्र पाठ किया।

पहले दिन बुद्ध प्रतिमा की पूजा की गई। बुद्ध की प्रतिमा सुवर्ण की थी। सम्राट् हर्षवर्द्धन ने तन्मय होकर आराधना की। राज्यश्री ने भक्ति से भर कर देखा। सम्राट् ने उस दिन बैठ कर भिक्षुओं के साथ मध्याह्न तक त्रिपिटकपाठ सुनने में व्यतीत कर दिया। राज्यश्री गंभीर भाव से बैठी रही।

फिर सम्राट् ने भिक्षुसंघ को प्रणाम किया। बुद्ध प्रतिमा को साष्टांग दण्डवत् की।

राज्यश्री ने कहा : देव ! आज मेरे मन की इच्छा पूर्ण हुई।

'तुम्हें सुख हुआ राज्यश्री ?' राज्यश्री के नेत्रों में स्पन्दन देख सम्राट् ने पूछा।

राज्यश्री ने कहा : हाँ भैय्या। मुझे तुम इस समय अच्छे लगते हो। युद्धभूमि से मैं डरती हूँ।

बौद्ध सम्राट् को देख कर गद्गद् हो गये। जयजयकार किया।

'सद्धर्म के रक्षक की जय', दूर-दूर तक यह शब्द गूँज उठा।

संघस्थविर ने आशीर्वाद दिया। नालंद के विद्यार्थी सम्राट की महानता पर विवाद करने लगे।

त्रिवेणी पर जैसे फिर अशोक का समय लौट आया। यही तो संघस्थविर ने कहा। भिक्षुसंघ ने अपनी ओर से सम्राट् का गौरवपूर्ण अभिवादन किया।

बौद्ध-बौद्ध की इस पुकार से सामंत अरुणाश्व अर्जुन अब और भी अप्रसन्न हो गया। उसे यह सब अत्यंत अप्रिय था। उधर-इधर धर्मावलंबी शंकित हो चले थे।

ब्राह्मण उत्तेजित हो गये थे। प्रयाग के ब्राह्मण बड़े दम्भी थे।

अपने को अनादि काल से वेद का उत्तराधिकारी समझते थे। उनमें विवाद छिड़ गया।

'तो क्या मुण्डी ही रह गये हैं ?'

'यह राजा भी मुण्डी क्यों नहीं हो जाता ?'

'मुण्डी नहीं तो है ही क्या ?'

'इसने तो गुप्त साम्राज्य के बैर मे ब्राह्मणों का भी नाश कर दिया।'

'फिर ?'

यह प्रश्न टँगा रहा।

सामंत अरुणाश्व अर्जुन के गुप्तचर ब्राह्मणों से मिले, फिर परस्पर कुछ तय हुआ। गुप्तचरों ने सामंत से कहा।

कुटिल मन्त्रणा का फल निकला।

साँझ की धुधली बेला में एक व्यक्ति किसी से गुपचुप बात करता हुआ पकड़ा गया। छद्मवेष मे महाप्रतीहार घूम रहे थे। उन्होंने इतनी ही बात सुनी : सम्राट् को भी ! वह क्या मुण्डी से कम है !

दोनों को बाँध लिया गया। पूछने पर वे चुप हो गये। रात भर उनके मुख से बात उगलवाने को उन्हें कोड़ों से मारा गया। किन्तु वे कुछ भी नहीं बोले।

महाप्रतीहार क्रोध से पागल-से हो गये। उनकी इच्छा हुई कि वहीं दोनों का बध करा दे। किन्तु इससे रहस्योद्घाटन कैसे होगा। रात भर जाग कर भी वे कुछ नहीं कर सके। वे सम्राट् के पास चले।

अन्नसत्र के सामने जब प्रातःकाल भीख लेने लूले-लँगड़े एकत्र हुए, सम्राट् और राज्यश्री वहीं खड़े थे। महाप्रतीहार ने कहा : देव ! दो व्यक्ति आपके विरुद्ध षड्यंत्र करते पकड़े गये हैं। उन्हें प्राणदण्ड दिया जाये।

'क्यों ?' राज्यश्री ने सहजभाव से पूछा।

'देवी ! वे सम्राट् के विरुद्ध हैं।'

'तो भी क्या ? वे इसी से बली हैं ?'

महाप्रतीहार निरुत्तर हो गये। सम्राट् चल पड़े। महाप्रतीहार ने तुरंत अपने अनुचरों को इंगित किया और ब्राह्मणों ने देखा कि अब सम्राट् के चारों ओर गौल्मिक चल रहे थे। राज्यश्री साथ चली।

शिविर में बैठते ही सम्राट् ने पूछा : कौन हैं वे लोग ?

महाप्रतीहार ने कहा : यही तो ज्ञात नहीं हो सका।

सम्राट् सोचने लगे।

राज्यश्री ने कहा : कोई नहीं। वे सद्धर्म्म के शत्रु हैं।

'फिर ?' सम्राट् ने पूछा।

'उन्हें क्षमा कर दिया जाये', राज्यश्री ने दृढ़ता से कहा।

'देवी ! वे सम्राट् के ऊपर भी आक्रमण कर सकते हैं', महाप्रतीहार ने टोका।

'उनमें इतना साहस नहीं है महाप्रतीहार,' राज्यश्री ने कहा, 'सम्राट का कोई कुछ नहीं कर सकता।'

ब्राह्मणों की चाल असफल हो गई। महाप्रतीहार ने पहरा बढ़ा दिया। अब एक क्षण भी अवकाश नहीं था। सेना सदैव तत्पर थी। किन्तु उन दो बंदियों को छोड़ दिया गया। महाप्रतीहार ने अपनी ओर से इतना अवश्य किया कि उनके हाथ और पांव तुड़वा दिये और वे अपाहिज हो गये।

आज हर्षवर्द्धन ने आदित्य की आराधना की। सूर्य की मूर्त्ति काष्ठ की थी। सूर्य ऊँची टोपी लगाये था, पाँवों में शकों के-से ऊँचे जूते थे।

सौरों में हर्ष छा गया। सौर अब वैदिक हो गये थे। उनमें कुछ तंत्र समावेश भी हो गया था।

पूजा निर्विघ्न समाप्त हुई।

तीसरे दिन शिव पूजा हुई। शिवलिंग पर अजस्र बिंदु गिरकर गङ्गा के समान सिंचन कर रहे थे। विशाल घंटे ठम ठम करके बज रहे थे।

कभी कभी भस्म के त्रिपुण्ड लगाये ब्राह्मणों के दल त्र्यम्बक की स्तुति में गम्भीर स्वर से वेद मंत्रों का उच्चारण करते, कभी नर्त्तकियाँ नृत्य करतीं।

वेद बाह्य पाशुपत भी इस आराधना के समय उपस्थित थे। क्योंकि वे भी शिवभक्त थे, किंतु वे मन्दिर में भीतर प्रवेश नहीं पा रहे थे। जिस समय सम्राट हर्षवर्द्धन ने शिव पूजा की ब्राह्मण प्रसन्न हो गये, किन्तु फिर असन्तोष प्रारंभ हो गया।

चौथे दिन बौद्ध भिक्षुओं को दान दिया गया। उस दान को देख कर लगा कि अब बाकी कुछ रहेगा ही नहीं। किन्तु एक बात थी। भिक्षु केवल उतना ही दान ले सकता था जितना उसके पात्र में समा जाये। धन का दान तो सीधे भिक्षु संघ को होता था।

भिक्षुओं के बाद भिक्षुणियाँ आईं।

राज्यश्री ने कहा: मैं स्वयं दान दूँगी।

'आप थक जायेंगी देवी!' अनुचरों ने कहा।

'नहीं।' वह खड़ी रही।

जब थक गई तो अनुचर काम करते, वह दान पात्र को छू भर देती और आशीष पाती।

इसके उपरात बीस दिन तक ब्राह्मणों को दान दिया गया।

राज्यश्री ने कहा: मै ही रहूँगी।

महाप्रतीहार को भय था। कहा: देवी! वहाँ सैनिक रहेंगे।

'क्यों?'

'प्राणभय है।'

'होगा महाप्रतीहार, मुझे तो इन प्राणों का भय नहीं है।'

महाप्रतीहार क्या कहता। चुप हो गया। राज्यश्री आकर खड़ी हो गई।

ब्राह्मण दान लेते, आर्शीवाद देते।

'चतुर है यह मुण्डियों का उपासक,' अर्जुन अरुणाश्व ने कहा।

उसकी अर्द्धनग्नादासी जो यहाँ पूर्ण सज्जा में रहने को बाध्य थी, हँसी।

'क्यों ?' अर्जुन ने कहा।

'तुम मूर्ख हो,' दासी ने कहा, 'मैं पुरुष होती तो अब तक सम्राट् बन गई होती।'

अगले दस दिन जैन साधुओं की भीड़ रही।

अर्जुन अरुणाश्व को दासी की बात लग गई थी। वह उसकी दासी थी, प्रिया थी। अर्जुन उससे दबता भी था क्योंकि वह बहुत सुन्दर थी, बहुत हृदयहीन थी, बहुत निडर थी। वह कोई अवसर नहीं खोज सका।

फिर दस दिन साधुओं को दान दिया गया। साधुओं की भीड़ में अर्जुन ने अपने गुप्तचरों को भेजा। किन्तु सम्राट् के आगे वहाँ उन्हें राज्यश्री मिली। अर्जुन जानता था राज्यश्री की हत्या का अर्थ कितना भयानक है। सम्राट् हर्षवर्द्धन क्रोध से पागल हो जायगा।

युआन-च्वांग को अत्यन्त विस्मय हो रहा था भारतवर्ष भी क्या अद्भुत देश है। यहाँ जो होता है वह अजीब काम होता है। दान! और इस पराकाष्ठा का दान! जब वह अपने हृदय की भावनाओं से परास्त हो गया और उसका हृदय प्रशंसा से इतना भर गया कि उसे लगा वह पागल हो जायेगा तब वह राज्यश्री के पास गया।

राज्यश्री उसी समय लौट कर अन्नसत्र से आई थी।

एक दासी ने कहा : अभी आई हैं परमभट्टारिका। तनिक विश्राम करेंगी।

राज्यश्री ने सुन लिया। कहा : कौन हैं ?

दासी ने अप्रतिभ होकर कहा : देवी! चीनी पंडित हैं।

'आने दे।'

दासी ने कहा : स्वागत !

युआन-च्वाग आकर बैठ गया। राज्यश्री ने प्रणाम किया। चीनी भिक्षु ने आशीष दी। 'भन्ते ! आज्ञा दें,' राज्यश्री ने कहा।

'देवी ! तुम्हारा देश अद्भुत है,' चीनी पण्डित ने इतना ही कहा। उसके स्वर में वह आश्चर्य था कि आखिर मै कहूँ भी तो कैसे ?

'अद्भुत !' राज्यश्री हँसी, 'नहीं पंडितप्रवर ! यह तो स्वयं शास्ता की उपदेश भूमि है।'

'तभी तभी', पंडित ने कहा, 'यहाँ आप जैसे महान् व्यक्ति...

राज्यश्री ने काट दिया। कहा : पंडित और विद्वान सदैव दूसरे को महान् समझते हैं, क्योंकि ज्ञान के कारण उनकी वृत्तियाँ सत् की ओर प्रवृत्त हो जाती हैं।

राज्यश्री के व्यवहार ने उसे विमुग्ध कर लिया। वह प्रसन्न हुआ।

उसने कहा : आप विश्राम करें।

राज्यश्री ने कहा : फिर दर्शन देते रहें।

'अवश्य ! अवश्य !' चीना पंडित शिविर से बाहर आ गया। इसी प्रकार अधिवेशन चलता रहा, दान होता रहा और यों ही और भी एक मास हो चला था।

सामंत अर्जुन की महत्वाकांक्षा बढ़ चली। दासी ने रात्रि के समय दीपक के मंद प्रकाश मे अपने उसी अर्द्धनग्न रूप में जब उसके चषक में मदिरा ढाली सामंत ने कहा : स्वर्णाक्षी !

'देव !'

'तू साम्राज्ञी बनना चाहती है न ? कल तू भी जाकर दान लेना। और दान में राज्यश्री और सम्राट से कुछ अटपटी वस्तु माँगना।'

स्वर्णाक्षी हँसी। कहा : फिर वही बात ! अलभ्य तो कुछ रहा नहीं, न कुछ अदेय ही रहा।

'तो फिर ?'

'एक काम करना होगा।'

'क्या?'

उसने झुक कर कान में कुछ कहा। सामंत थर्रा गया।

कहा : अभी असम्भव है।

'क्यों?'

'सम्राट् सुरक्षित हैं।'

'सुयोग खोजना होगा।'

'तू कर सकती है?'

'हाँ,' उसने स्वयं चषक की मदिरा गटगट पी डाली।

'यह कैसे हो सकता है?' सामंत ने पूछा।

'मैं पुरुषवेश धारण कर सकती हूँ।'

'पर पकड़े जाने पर?'

'मृत्यु,' वह हँसी।

'मै फिर क्या करूँगा? मैं किसके सहारे जियूँगा? नहीं स्वर्णाक्षि जीवन में तू ही है,' सामंत अर्जुन ने कहा, 'तेरा त्याग मै नहीं कर सकता।'

'तो इतना बड़ा स्वप्न मत देखो। स्वप्न देखने के लिये भी पहले अपनी जागृति की चेतना खोनी पड़ती है।'

'भय लगता है।'

'तो मेरे अंक में छिप जाओ।'

सामंत आहत हुआ। पूछा : तो?

'मैं मन की करूँगी।'

'फिर?'

दासी की भुजा सामंत की ग्रीवा में उलझ गई। उसने मदविह्वल स्वर में कहा : कल की कल देखूँगी। आज रात आनन्द करने दो।

प्रातःकाल प्रयाग के उस तीर्थस्थान में विराट् भीड़ एकत्र हुई।

आज सम्राट् के दान का अंतिम दिन था। आज अधिवेशन समाप्त होने का दिन था।

सम्राट् एक ऊँचे मञ्च पर राज्यश्री, चयनिका तथा चीनी भिक्षु के साथ अनेक उच्चकुलीन व्यक्तियों के साथ खड़े दान कर रहे थे। एक के बाद एक व्यक्ति आता था और सम्राट् अपने हाथ से दान देते जा रहे थे। राज्यश्री चुपचाप खड़ी देख रही थी। प्रसन्न थी। चयनिका भी अनमने भाव से प्रसन्नता प्रकट कर रही थी। इसी समय भीड़ में कुछ धक्का-मुक्की हुई। कोई कुछ समझ नहीं सका। हठात् भीड़ में से किसी ने पीछे से भल्ल फेंका।

कोई हँसा, कोई जोर से चिल्ला उठा। और उस शब्द को सुन कर भी सम्राट् अडिग खड़े रहे। उन पर जैसे कोई प्रभाव ही नहीं पड़ सका। सब पर आश्चर्य छा गया। एक दंडधर ने पुरुषवेश में एक स्त्री को पकड़ लिया।

सेनापति स्कंदगुप्त की ढाल से भल्ल टकरा कर गिर गया और उससे एक बार झन्न की सी आवाज़ हुई।

स्कंदगुप्त ने आज फिर सम्राट् की प्राण-रक्षा की थी। सम्राट् ने उसकी ओर कृतज्ञ दृष्टि से देखा।

महाप्रतीहार आगे आ गया। परमभट्टारिका चयनिका ने क्रोध से देखा। उस समय अत्यंत आवेग से हाथ में खड्ग लिये हुए सम्राट् उठ खड़े हुए।

स्कंदगुप्त ने वह भल्ल सम्राट् को लाकर दिखाया।

'देव! गुप्त घातक यही है।'

सम्राट् भल्ल देख रहे थे। तब स्त्री सामने लाई गई। वह डर से काँप रही थी। अनुचर को महाप्रतीहार ने कुछ इंगित किया। स्त्री बाँध ली गई।

महाबलाधिकृत सिंहनाद ने गरज कर कहा : सम्राट् पर जिसने प्रहार किया है, उसे जीवित पकड़ कर जला दिया जाये।

एक इहर मच गई। सब काँप उठे।

सेनापति सिंहनाद और स्कंदगुप्त घोड़ों पर चढ गये और जब उन्होंने वेग से वल्गा को खींचा, घोड़े ज़ोर से हिनहिना उठे।

सैनिकों ने सम्राट् को घेर लिया।

राज्यश्री ने कहा : सम्राट्! दान पूरा कीजिये।

चयनिका चिढ़ी : दान ? तो क्या प्राण दान देना है ?

'हाँ भाभी! आज दान है।'

'क्या कहती हो ?' सम्राट् ने चौंक कर पूछा।

राज्यश्री ने मुस्करा कर कहा : सम्राट्! नागानंद क्या व्यर्थ ही रचा था।

एक वाक्य और एक इतिहास। आँखों के सामने से जाली-सी फटी। उजाला हुआ। नये रूप जाग उठे।

पराजय मनुष्य को तो जीतना है। मनुष्य को तो आज विजयी होना है। शत्रु दण्ड से पराजित होंगे या स्नेह से ?

सम्राट् के नेत्रों का क्रोध हट गया।

उन्होंने कहा : महाबलाधिकृत! मेरे चारों ओर से यह रक्षा हटा दो। इस स्त्री को छोड़ दो।

महाबलाधिकृत चौंका।

'मैं कहता हूँ भाण्डी!' सम्राट् ने कहा, 'जो मैंने कहा, उसे आज्ञा समझो।'

'जो आज्ञा', कह कर महाबलाधिकृत ने इंगित किया। सम्राट् के चारों ओर से सैनिक हट गये। स्त्री छोड़ दी गई। वह भाग कर भीड़ में खो गई। चयनिका के नेत्र आश्चर्य से विस्फारित हो गये। वह कुछ भी समझ नहीं सकी।

उस समय परमभट्टारक सम्राट हर्षवर्द्धन सबके सामने वस्त्र खोलकर खड़े हो गये। और उन्होंने उच्चस्वर से कहा : आओ! तुम अपने हृदय की आग को मिटा लो। जिसकी ज्वाला हर्ष के रक्त से तृप्त हो सकती है, वह आगे बढ़े।

चयनिका भय से चिल्ला उठी। राज्यश्री ने आश्वासन दिया : भयभीत न हो भाभी। हर्षवर्द्धन शीलादित्य हैं।

चयनिका चुप हो गई। फिर भी नेत्रों में शंका झाँक रही थी। सम्राट् उसी प्रकार खड़े थे। उन्होंने फिर कहा : यदि कोई हर्ष की हत्या करना चाहता है तो आज हर्ष प्राणदान के लिये भी प्रस्तुत हैं।

कोई नहीं आया। सुनने वालों के नेत्रों से जल बहने लगा। उन्होंने भर्राये स्वर से कहा : सम्राट्! क्षमा! क्षमा!

असंख्य भीड़ ने दंडवत की जैसे समुद्र की प्रचण्ड लहरों ने सिर झुका कर प्रणाम किया। सम्राट पीछे हट गये। भीड़ फिर सीधी खड़ी हो गई।

कोषाध्यक्ष का मुख काला पड़ गया था। वह अब चिंता में था कि आगे दान कैसे होगा?

उसने फुसफुसा कर अपने अधीन आयुक्तक से कहा : गीर्वाण! कोष तो समाप्त हो गया।

आश्चर्य से गीर्वाण का मुँह फट गया और वह बोला : अब क्या होगा?

'मैं क्या जानूँ?' उसने कहा, और पंख की कलम धर दी। जिन भूर्जपत्रों पर वह लिख रहा था, वे उसने एक मसिपात्र के नीचे दबा दिये।

सम्राट् इस समय कह उठे : यदि कोई शेष रह गया हो तो आये और मुझसे अपनी बात कहे।

एक बालक लिये एक युवती आगे आ गई।

उसने कहा : देव ! मुझे भी कुछ दान दें।

'तू अभी तक कहाँ थी ?' एक दंडधर ने कहा।

'देव ! मैं ज्वर पीड़ित हूँ। आ न सकी।'

'तो जा अब', दंडधर ने कर्कश स्वर से कहा।

हर्ष ने देखा। फिर देखा राज्यश्री को जो गम्भीर आहत-सी खड़ी थी।

हर्ष ने कहा : दंडधर !

'सम्राट !' दंडधर ने सिर झुका कर कहा।

भाण्डी ने दंडधर को पीछे हट जाने का इंगित किया। वह हट गया।

'तुम्हें कुछ नहीं मिला ?' सम्राट ने फिर कहा।

'नहीं देव !' याचना का स्वर पुकार उठा।

'तो मै तुम्हें निराश नहीं जाने दूँगा', हर्ष ने कहा, 'कोषाध्यक्ष ?'

'देव !' उसने हाथ जोड़ कर पूछा।

'इसको कुछ ?' किंतु कोषाध्यक्ष की निराश मुद्रा ने वाक्य रोक दिया।

तब हर्ष ने अपने आभूषण उतार दिये और कहा : स्त्री ! दुर्भाग्य से इससे अधिक मेरे पास कुछ नहीं।

युवती सहस्र आशीर्वाद देकर अभी पीछे हट कर भीड़ मे मिल भी न सकी थी, उसी समय एक बहुत बूढ़ा व्यक्ति बढ़ा और बोला : सम्राट् ! कुछ मुझे भी। उसकी गिड़गिड़ाहट अत्यन्त द्रावक थी।

चयनिका ने पुकारा : सम्राट् ! यह यादव श्रीकृष्ण का-सा दान देते समय यह न भूल जायें कि यह कलियुग है। इस युग में सुदामा वैसे ही नहीं रह गये।

सम्राट् ने सिर उठा कर उन्हें देखा। फिर मुस्कराये।

राज्यश्री ने कहा : आतुर न हो भाभी। आज सम्राट् वास्तविक विजय प्राप्त कर रहे हैं। जीवन में ऐसे क्षण कभी-कभी आते हैं जब

मनुष्य अपनी महत्ता का त्याग करके अपनी लघुता के माध्यम से उच्चता की ओर अग्रसर होता है।

राज्यश्री के शब्द चयनिका के हृदय पर गहरा प्रभाव कर गये। वह अडिग थी। हर्ष ने हाथ बढ़ाकर कहा : भिक्षुणी !

उस शब्द को सुन कर आस पास के लोग चौंक उठे। किंतु राज्यश्री का मस्तक उठ गया। उसके होठों पर एक नया उत्साह, एक नयी स्फूर्ति फैल गई। 'परमभट्टारिका !' उसने गद्गद् कंठ से कहा।

सम्राट् हर्षवर्द्धन ने कहा : भिक्षुणी ! मेरे पास कुछ नहीं रहा। मेरे आभूषण चले गये। मेरे वस्त्र भी चले गये। यह धोती भी दान देनी है, मुझे चीवर दो जिसे ओढ कर मै अपने शरीर को ढँक सकूँ।

सम्राट् की बात कानों से अविश्वास बन कर टकराई और कौतूहल बन कर आँखों में झलकी।

सब स्तंभित रह गये। चयनिका के नेत्रों में आँसू आ गये। उसने कहा : धन्य हो सम्राट् ! तुम धन्य हो !

'भाभी ! तुमने कहा !' राज्यश्री ने कहा, 'मैं जानती थी, तुम्हारे अतिरिक्त और कोई इस सत्य को पहचानने मे इतनी शीघ्र समर्थ नहीं हो सकेगा।'

और राज्यश्री ने प्रसन्न मुख बढ कर कहा : यह लो भिक्षु ! यह चीवर है। ग्रहण करो। धारण करो।

सम्राट् आगे बढ़े।

युआन-च्वांग का मुँह आश्चर्य से खुल गया। बड़े-बड़े सामंत स्तंभित से खड़े रहे। सम्राट् ने आगे बढ कर चीवर हाथ में ले लिया और सहर्ष धारण कर लिया। भाई और बहिन ने एक दूसरे की ओर देखा और विजय से मुस्कराये। अधोवस्त्र वृद्ध को दे दिया जो भूरि-भूरि आशीर्वाद देने लगा।

दोनों खड़े रहे। लक्ष-लक्ष प्रजा, महासामंत, महापुरोहित, सेना और भिक्षु तथा साधुओं मे एक बार एक हहर सी छा गई और फिर न जाने क्या जादू सा छाया कि परमभट्टारिका चयनिका ने आनन्द से विह्वल होकर पुकारा : सम्राट् हर्षवर्द्धन की जय ! देवी राज्यश्री की जय!

और जैसे बाँध टूट गया। त्रिवेणी के समान प्रशस्त वक्ष, गम्भीर रव करता हुआ विराट् जयघोष बार-बार दिगंतों को कँपाने लगा। दर्शक जैसे इस अपूर्व दृश्य को देख कर जो कुछ समझ नहीं सके, जब उनको बोध हुआ, वे अपने आपको सँभाल सकने में असमर्थ से बार-बार पुकार उठे और फिर शब्द उठा—भिक्षु सम्राट् की जय ! भिक्षुणी राज्यश्री की जय !

युआन-च्वांग ने देखा। विभोर होकर साष्टांग दण्डवत किया और पुकार उठा : बुद्धंशरणं, सद्धमंशरणं, संघशरणं गच्छामि।...

———

लेखक की अन्य रचनायें

१. घरौंदे (उपन्यास)
२. विषादमठ ,,
३. मुर्दों का टीला ,,
४. सीधासाधा रास्ता ,,
५. साम्राज्य का वैभव (कहानियाँ)
६. तूफानों के बीच ,,
७. देवदासी ,,
८. समुद्र के फेन ,,
९. अधूरी मूरत ,,
१०. जीवन के दाने ,,
११. अँगारे न बुझे ,,
१२. इंसान पैदा हुआ ,,
१३. स्वर्गभूमि का यात्री (नाटक)
१४. महामाई : भारतीय चिंतन
१५. भारतीय पुनर्जागरण की भूमिका
१६. मेधावी (काव्य)
१७. अजेय खंडहर ,,
१८. राह के दीपक ,,
१९. पिघलते पत्थर ,,